Volume -5 , Issue 3 (March 2024)

Special Issue - II

on

समकालीन हिंदी साहित्य के अस्मितामूलक विमर्श

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology

ISSN 2582-7359

Peer Reviewed Journal

Impact Factor 6.325

Published By

Taran Publication

New Delhi

Special Issue - II

समकालीन हिंदी साहित्य के अस्मितामूलक विमर्श

विशेषांक सम्पादक मंडल

मुख्य सम्पादक

प्रधानाचार्य डॉ. शिवदास शिरसाठ

कार्यकारी सम्पादक

डॉ. अरविंद घोडके

डॉ. रमेश शिंदे

प्रा. सुनिल शिंदे

सम्पादकीय मंडल

डॉ. एम.एस. राजपंखे

डॉ. ए.बी. बरुरे

डॉ.ए. डी. मरकाळे

प्रा. बी. व्ही. पल्लेवाड

प्रा.एस. टी. भोसले

डॉ. डी.एम भारती

डॉ.डी.डी. भिसे

डॉ.एस. जी. सुरेवाड

डॉ. पी. एस. लोखंडे

JOURNAL DETAILS

Name of Journal	**International Journal of Multidisciplinary Research and Technology**
e-ISSN	**2582-7359**
Subject	**Multidisciplinary**
Publisher	**Taran Publication**
Impact Factor	**6.325**
Website	**www.ijmrtjournal.com**
Contact Number	**8950448770, 9996906285**
Country of Publication	**India**
Editor-in-Chief	**Dr. Mandeep Kaur & Dr. Indrajeet Ramdas Bhagat**

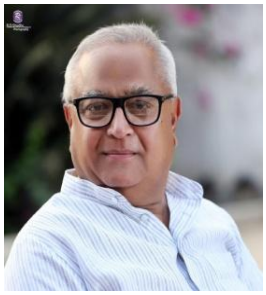

मा. आ. श्री. प्रकाश सोळंके
अध्यक्ष
मराठवाडा शिक्षण प्रसारक मंडळ,
छत्रपति संभाजीनगर

मा. आ. श्री. सतिश चव्हाण
सरचिटणिस
मराठवाडा शिक्षण प्रसारक मंडळ,
छत्रपति संभाजीनगर

शुभकामना संदेश

हमें बडी प्रसन्नता हो रही है कि सांस्कृतिक कार्य विभाग, **महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी, मुंबई** तथा **हिंदी विभाग, यशवंतराव चव्हाण महाविद्यालय, अंबाजोगाई, जिला-बीड़** के संयुक्त तत्वावधान में **'समकालीन हिंदी साहित्य के अस्मितामूलक विमर्श'** विषय पर एक दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन सोमवार, दि. 4 मार्च 2024 के सुअवसर पर संपन्न कर रहे हैं। साथ में राष्ट्रीय संगोष्ठी के विचार-विमर्श पर गवेषणात्मक विशेषांक भी प्रकाशित हो रहा है। प्रस्तुत विशेषांक में हिन्दी के विद्वतजनों के अपने विचार तथा साहित्यिक मान्यताओं के आकलन का समावेश हुआ है, जो नयी सदी के हिन्दी साहित्य की प्रासंगिकता और साहित्यिक सरोकार दर्शता है।

यह संगोष्ठी सामाजिक समानता प्रस्थापित करने की दिशा में मददगार साबित होगी । हाशिए पर होनेवाले समाज की भाषा, संस्कृति, सभ्यता, साहित्य तथा उनकी समस्याओं और समाधान से संबंधित अपनेज्ञान, अनुभव और विचारों को साझा करने के लिए प्रख्यात प्रोफेसरों, शोधार्थी, अकादमीक क्षेत्र से जुडे विद्वानोंकेबीच बातचीत के लिए मंच प्रदान करनेका एक उत्कृष्ट अवसर प्रदान कर रही है।

हम, मराठवाडा शिक्षण प्रसारक मंडल, छत्रपति संभाजीनगर, शिक्षासंगठन की ओर से एकदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी और विशेषांक की सफलता और सार्थक परिणाम हेतु शुभकामनाएँ देते हैं।

मा.प्रधानाचार्य का अभिमत....!

डॉ. शिवदास शिरसाठ

प्रधानाचार्य

मुझे यह जानकारी देते हुए ख़ुशी महसूस हो रही है कि सांस्कृतिक कार्य विभाग,महाराष्ट्र राज्य हिन्दी साहित्य अकादमी, मुंबई तथा हिन्दी विभाग, यशवंतराव चव्हाण महाविद्यालय, अंबाजोगाई के संयुक्त तत्वावधान में **'समकालीन हिंदी साहित्य के अस्मितामूलक विमर्श'** विषय पर एक दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन सोमवार, दि. 4 मार्च 2024 के सुअवसर पर संपन्न होने जा रहा है। संगोष्ठी में आप सभी उपस्थित विद्वतजनों का महाविद्यालय की ओर से स्वागत करता हूं।

किसी भी राष्ट्र की भाषा, साहित्य,समाज और संस्कृति की पारस्परिकता से राष्ट्रीयता की भावना प्रगट होती है। भारतीय स्वतंत्रता का इतिहास प्रमाणित करता है कि हिन्दी भाषा के माध्यम से ही राष्ट्रीय एकता की संरचना का निर्माण हुआ है। उसने आजादी आंदोलन में सभी भारतियों को आपस में जोडकर **'हम सभी भारतीय एक हैं!'** को दर्शाया है। स्वतंत्रोतर भारत में संविधान द्वारा सभी को सामनाधिकार प्राप्त हुए , फिर भी समाज के कूछ समुदाय उपेक्षित रहे।यही से अस्मितामूलक विचार का प्रारंभ हुआ। यह वैचारिक आंदोलन अनेक मान्यताओ को अपने में समेटकर विकसित होता गया। उत्तरशति के युग में उन्होंने अपनी चेतना को विश्व प्रभाव के साथ जोडकर अभिव्यक्त किया। आज समकालीन हिन्दी साहित्य में चित्रित भारतीय समाज की अस्मितामूलक संवेदना पर विचार हो रहा है।

इस विचार-विमर्श के बहाने मानव जाति के संरक्षण के लिए मानवीय प्रयासों को जागृत करने की एक महत्वपूर्ण पहल हो रही है। मुझे उम्मीद है कि यह संगोष्ठी नयी विचारधारा के लिए एक व्यापक साहित्यिक मंच प्रदान करेगी और कुछ सकारात्मक उपलब्धियाँ लाने में काफी मददगार साबित होंगी।

प्रस्तुत विषय की कल्पना को मूर्त रूप देने में महाराष्ट्र राज्य हिन्दी साहित्य अकादमी, मुंबई के कार्याध्यक्ष मा. डॉ. शीतलाप्रसाद दुबे, सहनिदेशक मा. श्री. सचिन निंबाळकर तथा मराठवाडा शिक्षण प्रसारक मंडळ, छत्रपति संभाजीनगर के अध्यक्ष मा. आ.श्री. प्रकाश सोळंके, सरचिटणीस मा. आ. श्री. सतीश चव्हाण,महाविद्यालय विकास समिति के मा.श्री. दत्तात्रय पाटील,मा.डॉ.नरेंद्र काळे तथा सभी पदाधिकारियो की सहायता और मार्गदर्शन रहा है। अतः आपके प्रति धन्यवाद ज्ञापित करता हूं।

मैं, प्रस्तुत संगोष्ठी और उस पर आधारित विशेषांक के प्रकाशन हेतु शुभकामनाएं देता हूं!

डॉ. शिवदास शिरसाठ

प्रधानाचार्य

संपादकीय.....

कार्यकारी सम्पादक

डॉ. रमेश शिंदे **डॉ. अरविंद घोडके** **प्रा. सुनिल शिंदे**

हिन्दी विभाग

यशवंतराव चव्हाण महाविद्यालय, अंबाजोगाई, जिला-बीड़

भारतीय साहित्य की विशाल परंपरा में अस्मितामूलक साहित्य का निर्माण उत्तराधुनिक युग की उपलब्धि है। भारतीय समाज के हाशिए पर माने जाने वाले वर्गों ने अपने अस्तित्व को सामाजिक अस्मिता के रूप में देखने का प्रयास किया। बहुसंख्य जनता का अभय स्वर जो आज तक मौन रहा था उसमें वाणी भरने का काम उत्तर शती के वैश्विक प्रभाव ने किया। भारतीय समाज और साहित्य में मुख्य धारा के माने जाने वाले वर्गों ने साहित्य तथा संस्कृति को अपनी विरासत के रूप में समझा था किंतु युगीन प्रभाव ने साहित्यिक परंपरा में अस्मितामूलक विचारधारा का नवाचार प्रस्तुत किया। साहित्य निर्माताओं ने इसका स्वागत किया और नवीन रूपों का साहित्य निर्माण किया,जिस कारण सर्वहारा वर्ग की भावना तथा संवेदना की साहित्यिक अनुगूंज सार्वभौमिक अभिव्यक्ति का मुख्य आधार रही। इतिहास के अनेक सदियों तक उपेक्षित जीवन जीने वाली अनेक जनजातियां अपनी आत्माभिव्यक्ति के लिए संवेदनशील रही। भारतीय समाज के दलित, आदिवासी और नारी ने अभिव्यक्ति के क्षेत्र में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और अपने जीवन सच्चाई को पाठकों के सामने प्रस्तुत किया। साहित्यिक समाज ने नई संवेदना और विचारधारा के साहित्य का एक ओर स्वागत किया, तो दूसरी ओर लेखक की ऊर्जा को बनाए रखा। परिणाम स्वरूप प्रेरणा स्रोत पाठक तथा समाज ही रहा। समाज में पनपती हुई विषमता तथा शोषण की दर्दनाक संवेदना साहित्य निर्माण की भूमिका निभाती रही। मानव समाज में धर्म, जाति, वंश, वर्ण, लिंग आदि के आधार पर उपेक्षित दृष्टि का जीवन यापन करती हुई अनेक सामाजिक इकाइयां अभिव्यक्ति के सामाजिक खतरे उठाने के लिए तैयार रही। वे अब अपना सामाजिक अस्तित्व तलाशती हुई स्वतंत्र अस्मिता उजागर कर रही है। अपनी अभिव्यक्ति के लिए साहित्य जगत में विविध रूपबंधों का आधार ग्रहण करते हुए विविध आयाम की रचनाधर्मिता निर्माण कर रही है।

भारतीय स्वतंत्रता और संविधान के निर्माण से समाज के प्रत्येक वर्गों को व्यापक सामाजिक मान्यता प्राप्त होती रही। जिससे सार्वजनिक चेतना का निर्माण हुआ। पत्रकारिता तथा साहित्य ने समाज को अधिक जागरूक

बनाया। इसी में वैश्वीकरण का प्रभाव अभिव्यक्ति के क्षेत्र में नया निखार और आत्म सम्मान की दिशा में नई पहल दर्शाता रहा। अपनी भाषा, समाज, सभ्यता तथा संस्कृति की अनुगुंज वैश्विक धरातल पर स्वीकारी जाने लगी। वर्तमान मीडिया तथा अनुवाद के द्वारा भाषागत सीमाएं समाप्त होने लगी और विचारशीलता का पारस्परिक लेन-देन होता रहा। दलित आदिवासी तथा नारी स्वर के नूतन साहित्य का अनुकरण करते हुए अन्य वर्ग भी अपनी कलम चलते रहे हैं। जिसमें भारतीय समाज के अल्पसंख्यक, किन्नर, कृषक, अपाहिज- विकलांग, बालक, खेतिहर, मजदूर आदि आदि प्रमुख हैं। अपने जीवन की निजी अनुभूतियांअब व्यापक रूप से सामाजिक अभिव्यक्ति का आधार बनने लगी और समकालीन कलमगार अपनी अपनी अस्मिता की खोज करने लगे।

समकालीन हिंदी साहित्य के अस्मितामूलक विमर्श विषय के विशेषांक निर्माण में महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी,मुंबई के कार्याध्यक्ष मा. डॉ. शीतलाप्रसाद दुबे तथा सह निदेशक मा. श्री. सचिन निंबाळकर का विशेष योगदान रहा है। अकादमी के सदस्य मा. डॉ. सतीश यादव तथा मा. डॉ. भारती गोरे ने बड़ी सहायता दर्शाते हुए अपना योगदान दिया। आप सभी विद्वत जनों के प्रति हिंदी विभाग धन्यवाद ज्ञापित करता है।

मराठवाड़ा शिक्षण प्रसारक मंडल, छत्रपति संभाजीनगर के अध्यक्ष मा. आ. श्री. प्रकाश जी सोलंके तथा सरचिटणीस मा. आ. श्री. सतिश जी चव्हाण के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करता हूं। जिनकी ऊर्जा तथा निर्देशन से साहित्यिक सेवा का शुभ अवसर प्राप्त हुआ। केंद्रीय कार्यकारिणी तथा महाविद्यालय विकास समिति के सदस्य मा. श्री. दत्तात्रय जी पाटिल,मा. डॉ. नरेंद्र जी काळे सर तथा महाविद्यालय विकास समिति के सभी मान्यवर पदाधिकारी के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करता हूं। महाविद्यालय के प्रधानाचार्य तथा प्रस्तुत विशेषांक के अतिथि सम्पादक मा. डॉ. शिवदास जी शिरसाठ का धन्यवाद ज्ञापित करना आवश्यक है क्योंकि आपने विभाग के हौसले को बनाए रखा। विषय की रूपरेखा तथा गरिमा को बढ़ाने में श्रद्धेय मा. डॉ. चंद्रदेव कवडे, मा. डॉ. नारायण शर्मा, मा. डॉ. माधव सोनटक्के, मा. डॉ. गणेश राज सोनाळे, मा. डॉ. सुधाकर शेंडगे का विशेष योगदान रहा है। सभी गुरु जनों के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करता हूं। मित्रवर मा. डॉ. गोविंद बुरसे, मा. डॉ. रमा नेवले, मा. डॉ. सुषमा देवी, मा. डॉ.एस.जे. जहागिरदार, मा. डॉ. मुरलीधर लहाडे, मा. डॉ. गोपाल भोसले, मा. डॉ. प्रकाश खुले, मा. डॉ. अविनाश कासण्डे, मा. डॉ. माणितकुमार वाकळे, मा. डॉ. वीरश्री आर्य, मा. डॉ.बायजा कोठुले का सहयोग मिलता रहा है। अस्तु, हिन्दी विभाग के सहयोगी मा. डॉ.अरविंद घोडके तथा मा. प्रा.सुनिल शिंदे एक मेधावी तथा होनहार सहयोगी हैं जिनकी कडी मेहनत तथा संपर्क सूत्र से विशेषांक प्रकाशित हो सका।

प्रस्तुत विशेषांक के सम्पादक मा. श्री.मनदीप कौर तथा मा. डॉ. इंद्रजीत भगत, तरण प्रकाशन, नई दिल्ली का विशेष आभार प्रकट करता हूं, जिन्होंने कल्पना के मूर्त रुप दिया। अकादमीक स्तर के विद्यार्थी, शोधार्थी, प्राध्यापक तथा सुधि पाठकों के सामने विचार- विमर्श हेतु विशेषांक प्रस्तुत करता हूं।

INDEX

Sr.No.	Title	Page No.
1.	पुरुष वर्चस्वादी संस्कृति में शोषित नारी जीवन *डॉ. शिवदास शिरसाठ, डॉ. अरविंद अंबादास घोड़के*	1
2.	नारी विमर्श के परिप्रेक्ष में हिंदी गजल *डॉ.अविनाश कासांडे*	5
3.	हिंदी कथा साहित्य में किन्नर विमर्श *विद्या काळुसे*	8
4.	जहीर कुरेशी की गजले और घुमंतू जीवन *प्रा.डॉ.निवृत्ती एस. भेंडेकर*	12
5.	ममता कालिया के 'अँधेरे का ताला' उपन्यास में चित्रित शिक्षित नारी जीवन *डॉ. आर.एम. शिंदे*	15
6.	किसान जीबन की अस्मिता और रेहन पर रग्घू *डॉ.ज्ञानेश्वर गणपतराव रानभरे*	18
7.	भारतीय समाज में बालविवाह एक सामाजिक अभिशाप *डॉ. माधव माणिकराव मोरे*	22
8.	केदारनाथ सिंह की कविता में 'पर्यावरण' संवेदना *डॉ. मनोहर जमधाडे*	26
9.	समकालीन हिंदी उपन्यास साहित्य में कृषक जीवन *प्रा. सुनील सोपानराव शिंदे*	30
10.	समकालीन हिंदी साहित्य में बाल विमर्श *वर्षा दिगंबर असोरे*	33
11.	केदारनाथ अग्रवाल के कव्य में किसान की यथार्थ अभिव्यक्ति *डॉ. रेविता बलभीम कावळे*	36

12.	**समकालीन साहित्य में विविध विमर्श** *सहा. प्रा.डॉ. अमर आनंद आलदे*	39
13.	**समकालीन हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श** *डॉ. विजय पाटिल*	46
14.	**अस्मितामूलक विमर्श : एक वैचारिकी संदर्भ** *डॉ. युवराज राजाराम मुळये*	51
15.	**समकालीन हिंदी उपन्यासों में दिव्यांग (विकलांग) विमर्श** *शशिकांत चिन्नेश्वर सैबे*	56
16.	**समकालीन बाल साहित्य का स्वरूप एवं बाल मनोविज्ञान** *डॉ॰ शिल्पा दादाराव जिवरग, सोनाली युवराज चित्ते*	59
17.	**समकालीन हिंदी साहित्य में किन्नर की अस्मिता** *प्रा. डॉ. सुरेखा एस. लक्कस*	63
18.	**jkth lB dh miU;kl¨ e ukjh pruk** *nRrk=; vklkjke fdVkG*	68
19.	**समकालीन आत्मकथाओं में अस्मितामूलक विमर्श** *डॉ.अलका नारायण गडकर*	70
20.	**समकालीन हिन्दी कविता में मज़दूर वर्ग का जीवन यथार्थ** *डॉ .प्रिया ए*	75
21.	**अनामिका की कविताओं में अभिव्यक्त स्त्री विमर्श** *प्रोफे.डॉ.अनिल ढवळे*	79
22.	**SELF-DISCOVERY: A STUDY OF GEETANJALI SHREE'S TOMB OF SAND** *Dr. Ahilya B. Barure.*	86
23.	**समकालीन हिंदी साहित्य में बाल विमर्श** *डॉ. सुजाता जगन्नाथ रगडे*	88
24.	**रमेश कुरे की कहानियां और वर्तमान अस्मितामूलक विमर्श** डॉ.मुकुंद राजपंखे	92

25.	**अस्तित्व से अस्मिता तक विमर्श का दौर** *डॉ. राजश्री कल्याणकर*	**97**
26.	**समकालीन हिंदी कहानियों में नारी अस्मिता** *डॉ. गंगा एकनाथ शेळके, (गायके)*	**100**
27.	**सविता सिंह की कविताओं में नारी विमर्श** *डॉ.मृणाल शिवाजीराव गोरे*	**104**
28.	**हिंदी बाल कहानी साहित्य : मनोरंजन एवं व्यक्तित्व विकास** *डॉ. अमोल पालकर*	**109**
29.	**हिंदी साहित्य मे नारी अस्मिता** *शफीक लतीफ चौधरी*	**113**
30.	**हिंदी स्त्री कहानीकारों के कहानियों का स्त्री विमर्श दृष्टि में अध्ययन** *डॉ. साईफूल इस्लाम*	**116**
31.	**CASTEISM IN THE NOVELS OF RAJA RAO AND ARAVIND ADIGA** *Dr. Vasant Bhivaji Gaikwad*	**120**
32.	**हिन्दी कविता में किसान विमर्श** *डॉ.गंगाधर बालन्ना उपमवार*	**123**
33.	**समकालीन हिंदी कविता में स्त्री, दलित एवं आदिवासी विमर्श** *संतोष नागरे*	**126**
34.	**समकालीन हिंदी कहानी में स्त्री विमर्श** *डा. मानितकुमार अमृतराव वाकळे*	**129**
35.	**मराठी दलित साहित्य की प्रतिनिधि आत्मकथाएं** *डॉ. गोरख प्रभाकर काकडे, डॉ. शेख अफरोज फ़ातेमा*	**134**
36.	**समकालीन हिंदी साहित्य में मजदूर तथा कृषक जीवन** *नितिन सुभाषराव कुंभकर्ण*	**142**
37.	**हिंदी कविता में कृषक विमर्श** *डॉ. गोविंद बुरसे*	**147**

38.	**हिंदी के दलित उपन्यासकारों में जगदीशचंद्र का स्थान** *शीतल भास्कर धनेधर*	**153**
39.	**हिंदी साहित्य मे बाल साहित्य का महत्व** *डॉ. शिल्पा डी. जीवरग, पांडव मनिषा प्रकाश*	**159**
40.	**मधु कांकरिया कृत 'सेज पर संस्कृत' में चित्रित स्त्री जीवन** *रेश्मा वसीम मणेर*	**165**
41.	**महिला लेखिकाओं के कथा-साहित्य में स्त्री-विमर्श** *डॉ. राठोड संजीवनी जनार्धन*	**169**
42.	**उर्दू शायरी पे गालीब मिरज़ा असदउल्लाह खाँ गालीब** *प्रा.महेजबीन फारुखी*	**172**
43.	**हबीब तनवीर के नाटकों में अभिव्यक्त आदिवासी अस्तित्व और अस्मिता के स्वर हिरमा की अमर कहानी नाटक के विशेष संदर्भ में** *डॉ. केशव माधवराव मोरे*	**176**
44.	**मृदुला गर्ग की कहानियों में स्त्री विमर्श के विविध आयाम** *डॉ.सुरेश शेळके*	**180**
45.	**ममता कालिया के साहित्य में नारी चेतना** कोमल बालकिशन तापडिया, *डॉ. सुरेखा एस. लक्कस*	**187**

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

पुरुष वर्चस्वादी संस्कृति में शोषित नारी जीवन

डॉ. शिवदास शिरसाठ
प्रधानाचार्य
यशवंतराव चव्हाण महाविद्यालय, अंबेजोगाई

डॉ. अरविंद अंबादास घोड़के
हिंदी विभाग, सहयोगी प्राध्यापक
यशवंतराव चव्हाण महाविद्यालय, अंबेजोगाई

भूमिका / प्रस्तावना :

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम एवं महान संस्कृति में से एक है। ज्ञान, भक्ति और कर्म का सुंदर समन्वय भारतीय संस्कृति में दिखाई देता है। भारतीय संस्कृति गतिशील संस्कृति है, जो अन्य संस्कृति के खान-पान, वेशभुषा आदि का परिवेश को अनुरूप स्विकार करती है। आर्य, मूगल, पोतुर्गिज, आंग्रेज, डच आदि विदेशी संस्कृति का स्वागत एवं स्वीकार किया है। समाज जीवन की गतिशिलता पर संस्कृति की गतीशिल निर्भर होती है। भारतीय संस्कृती में काल के अनुरूप बदलाव किया है। कुछ अन्य संस्कृति नियमों को अपनाया है तो कुछ कालानुरूप नियमों का नवनिर्माण किया है। भारतीय संस्कृति समय के साथ गतिशिल है। प्राचीन कालीन भारतीय संस्कृति में विद्यमान उदारता, परोपकार, त्याग, दया, क्षमा, शान्ति, मानवता, अहिंसा, सत्य, आदि तत्य विश्व के पथदर्शक बन चुके है।

दुनिया को मार्गदर्शन करनेवाली भारतीय संस्कृति सर्वगुण संपन्न नहीं है, उसमें अनेक दोष विद्यमान है। वर्णव्यवस्था, जातिप्रथा, भेदभाव, पुरुषप्रधान वृत्ति, स्त्री– शोषण, दलित-स्वर्ण, छूत-अछूत आदि सांस्कृतिक दोषों के कारण भारतीय समाज के नीति नियम, परंपरा, रीति रिवाज सर्वमान्य दिखाई नहीं देते। भारतीय संस्कृति के आधारस्तंभ रामायण, महाभारत, चार वेद-ऋगवेद, सामवेद, अथर्ववेद और वर्जुववेद, आठरहा पुराण और भगवदगीता में भले ही वर्णव्यवस्था का अधार कर्म सिध्दांत माना हो, किंतु ऐतिहासिक जानकारी के अनुसार भारतीय समाज में चर्तुवर्ण व्यवस्था का आधार जाति व्यवस्था में ही दिखाई देता है। आज भी स्त्री और दलित समाज जीवन शोषण मुक्त नहीं है। भारतीय संस्कृति में त्याग, समर्पन, एकनिष्ठता, परोपकार, उदारता, संयम आदि को स्त्री कर्तव्य के साथ जोडकर स्त्री जीवन को सदियों से सामाजिक मान्यता ने बंदी बनाया है। मैत्रेयी पुष्पा कहती है कि "पुरूष ने सदा अपनी पसंद की स्त्री चुनी है. भले उसके लिए खून खराबे से लेकर अपहरन और अत्याचार से क्यों न गुजरना पड़े, लेकिन अपनी पसंद दिखाने का अधिकार स्त्री की हरगिज नहीं देता।"[१] नारी विरोधी, दलित विरोधी, किन्नर विरोधी परंपरा के विरोध में प्रदर्शन, अंदोलन वर्तमान भारतीय समाजव्यवस्था और संस्कृति की पहचान बन रहे है।

बीज शब्द :

सामाजिक मान्यता, परंपरा, संस्कृति, इलेक्ट्रानिक, सोशल मीडिया ,प्रतिष्ठा, एकांगी, यातना, संघर्ष, सशक्तिकरण, मॉडर्न, मातृ व्यवस्था, पितृ सत्तात्मक व्यवस्था, , गुनहगार, बेचैनी, ।

मुख्य अंश :

स्त्री-पुरुष समानता की चर्चा गल्ली-नुकड से लेकर इलेक्ट्रानिक और सोशल मीडिया में बड़े जोर-शोर से जारी है। भारतीय समाज व्यवस्था में पुरुषों की मानसिकता स्त्री को अपने बराबरी का मानने के लिए तैयार नहीं

है। आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक हर क्षेत्र में स्त्री को पुरूष के समान सर्वाधिकार मिलने की माँग कई दशकों से हो रही है, किंतु आज भी पिता की आर्थिक संपत्ति में कितने प्रतिशत लडकियों को अधिक संपत्ती का समान अधिकार मिला है ? परिवार और समाज में पुरुषों के बराबर स्त्री का स्थान सन्मानजनक एवं समाधान कारक है ? धार्मिक पुजा-अर्चा, मंदिर-मस्जिद, गिरजाघर गुरुद्वारा, चर्च आदि धार्मिक स्थलों में महिलाओं को प्रवेश भी नहीं मिलता। तो यहाँ स्त्री-पुरुष समानता के अधिकारों की वास्तविकता क्या है ? भारतीय महिला की तुलना में कितनी प्रतिशत महिलाए भारतीय संसद का प्रतिनिधीत्य करती है ? इन सवालों के जवाब खोजने पर भारतीय समाज और संस्कृति में स्त्री जीवन का यथार्थ रूप सामने आता है। शिक्षा और आर्थिक आत्मनिर्भरता के कारण नारी अपने अधिकारों को पहचान पाई तथा संस्कृति के बहाने अपने ही ऊपर अन्याय करने वाले नारी विरोधी सामाजिक व्यवस्था को समझ पाई। इसलिए आज अपने अधिकारों के लिए संघर्ष कर रही है। सदियों से हो रहे अत्याचार का विरोध कर पुरुषों के समान स्वच्छंद जीवन जीवन जीने की कोशिश कर रही है। अपने अधिकारों के प्रति सचेत भारतीय महिला, नारी विरोधी सामाजिक, सांस्कृतिक मान्यताओं का विरोध कर रही है।

अहार , निद्रा और मैथुन किसी भी जीव की जैविक अथवा नैसर्गिक जरूरते है। तीनों में से किसी एक अभाव उस जीव के लिए शारीरिक, भावनिक दृष्टि से हानिकारक होता है। भारतीय समाजिक व्यवस्था में सेक्स को नैतिकता के दायरे में तोला जाता है। समाजिक स्वास्थ बनाए रखने के लिए लैंगिक स्वैराचार, उन्मुक्त काममावना को नियमों में बांधकर उसका नियमन करना जरूरी है। भारतीय समाजिक व्यवस्था में सेक्स को लेकर पुरुषों से अधिक महिलाओं को घेरा है। पुरुषप्रधान सामाजिक व्यवस्था में स्त्री द्वारा सेक्स संबंधी चर्चा भी पाप समझी जाती है। इसीलिए नैसर्गिक कामभावना की पीड़ा में भारतीय नारी सदियों से घुटन भरी जिन्दगी जीने के लिए मजबूर है। मैत्रेयी पुष्पा कहती है कि "स्त्री को शरीर के अधार पर ही घेरा जाता है और यदी वह कुछ बोले तो अश्लील, अमर्यादा का लान्छन तैयार है। सारा कुछ पुरुष सत्ता का किया घरा है, किसी विदुषी नारी से पूछकर शास्त्र नहीं रचे गये न नैतिकता के मानदंड बने।"[२]भारतीय समाजव्यवस्था में पुरूषी वर्चस्व के कारण स्त्री द्वारा सेक्स के लिए उठाए गये कदम को व्याभिचार कहा जाता है। किंतु दिन-रात अपनी हवस का शिकार बनाकर जंगली प्राणी की तरह नारी शरीर को नोच-नोच कर खाने वाली पुरुष आज भी अपने समाज में दिखाई देते है। भारतीय समाज में स्त्री को सेक्स के कटघरे में बांधकर पुरुष को उन्मुक्त सेक्स की जैसे अनुमति दी हो ऐसा प्रतीत होता है। बीमार कहानी की नायिका रीमा पति के समागम के समय में भी पत्नी के शरीर को छीनने और नोच कर खाने वाले व्यवहार से घबरा जाती है। रीमा पति शशांक को समझाते हुए कहती है कि, भावनाओं के साथ सेक्स की पूजा की जाती है। किंतु आप मेरी भावनाओं की परवाह किए बगैर छिन झपटकर शरीरिक सुख लुटना चाहते हो, यह अच्छा नहीं है। किंतु शशांक पर पत्नी रीमा की बातों का कोई प्रभाव नहीं होता है, वह उसके शरीर को नोच-नोच कर खाने में आनंद लेता है।

बार-बार समझाने पर भी पति के के बर्ताव में बदलाव नहीं आता। हर रोज पति द्वारा होनेवाले बलात्कार से दुःखी रीमा उससे अलग होकर अलग जीवन जीने की बात अपनी मों रेखा से कहती है। रीमा की माँ समाज प्रतिष्ठा के कारण उसके पति से अलग होने के फैसले फैसले का विरोध करती है। उस समय रीमा अपनी माँ रेखा से कहती है कि "बोलो मम्मी, क्या हम सिर्फ दुनिया के लिए जी रहे है ? दुनिया दिखावे के रिश्ते को क्या मैं सिर्फ इस तर्क पर ढोऊ की समाज क्या कहेगा ? तुम्हारी रीमा का अपना सुख कुछ नही है ?"३ समाज के डर से रीमा अपनी जिन्दगी को शशांक के हवस का शिकार होने नहीं देना चाहती है। रीमा आधुनिक भारतीय नारी का प्रतिनिधीत्व करती है, जो अपनी खुशी के लिए परंपरागत सामाजिक मान्यताएँ तोड़ने से पीछे नहीं हटती है। हर पल पाशवी अत्याचार करने वाले पति के साथ पल-पल मरने से बेहतर उससे अलग होकर हर पल को जिया जाए,

भोगा जाए। माँ रेखा के मन में समाज क्या कहेगा इस बात का डर होने के कारण रीमा को शशांक से अलग होने से मना करती है। सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए दर्दभरी जिन्दगी जीना रीमा को सही नहीं लगता। इसीलिए वह शशांक से अलग होकर अकेली जीवन जीने का फैसला करती है। रीमा अपनी माँ रेखा से कहती है कि "विवाह कितनी गलत और गैर जरूरी संस्था है, मम्मी, रीमा के चेहरे पर एक ठहराव था, उसके आँसू सूख चुके थे और निर्णय की दृढता से उसकी आँखे निश्चिन्तता से चमक रही थी. दो जुन रोटी और एक रात का सेक्स का जुगाड बैठाने के लिए इतना बड़ा झंझट ? "४ बीमार कहानी की नायिका रीमा पुरुषप्रधान व्यवस्था के हाथों होनेवाले शोषण का विरोध करती है। पुरुषों द्वारा होनेवाले शोषण का विरोध करनेवाली रीमा नारी शोषण के लिए जिम्मेदारी विवाह और परिवार संस्था का ही विरोध करती है। पुरुषप्रधान सामाजिक व्यवस्था में विवाह, परिवार, बच्चे, और नैतिकता के बधनों में बांधकर नारी जीवन का हर मार्ग से शोषण किया जाता है। स्त्री शोषण के लिए जबाबदार विवाह, परिवार जैसी संस्थाओं का विरोध 'बीमार' कहानी के माध्यम से मनिका मोहिनी जी ने किया है।

भारतीय समाज व्यवस्था में पुरुषों की मानसिकता स्त्री को अपने बराबरी का मानने के लिए तैयार नहीं है। 'कोई सजा नहीं' कहानी का पुरुष पात्र पुरुषप्रधान वर्चस्ववादी सामाजिक व्यवस्था और संस्कृति का सजीव और यथार्थ पात्र है। जो बात-बात पर पत्नी पर पति आधिकार जताने की कोशिश करता है। कहानी में चित्रित पुरुष पात्र की पत्नी मीरा पति के शोषण से बेचैन होकर बहन शुभा के पास चली आती है। पत्नी मीरा छोड़कर जाने के बाद इस पुरूष का दैनदिन जीवन प्रभावित होता है। रोटी खाने से लेकर सेक्स की पूर्ति के लिए पत्नी मीरा को अपने घर ले जाने के लिए शुभा के पास आता है। मीरा को समझाकर वह घर वापस ले जाना चाहता है। पत्नी मीरा से कहता है कि "मीरा, तू भारतीय नारी है, तुझे इस प्रकार घर छोड़ना शोभा नहीं देता, पति परमेश्वर समान होता है। धैर्य और सहनशीलता ही नारी का प्रमुख धर्म है। तू अपनी मर्यादा मत खोना। मैं तेरा पति हूँ, तेरे लिए परमेश्वर समान हूँ, मैंने तुझे एक घर दिया है, एक नाम दिया है. बच्चे दिए हैं।अगर मैंने तुझे कभी कुछ कह भी दिया हो क्या हो गया ? क्या तूने देखा नहीं कि हमारी घर में औरतें ऐसे ही पिटती आगी है, आखिर औरत औरत है। मर्द की गुलामी नहीं करेगी तो क्या सिर पर चढ़ेगी? पति को हर तह खुश रखना पत्नी का धर्म है।"५ पति के विचारों के माध्यम से भारतीय पुरुष मानसिकता का यथार्थ एवं सजीव चित्रिण किया है। पति अपनी पत्नी मौरा को समझा-बुझाकर अपने घर वापस ले जाता है। भारतीय संस्कृति, समाज में मान –सम्मान, स्त्री मर्यादा, समर्पण आदि के बहाने स्त्री का किस तरह से शोषण किया जाता है । इसका सजीव चित्रण 'भागीदार' कहानी के माध्यम से मानिका जी ने किया है।

परिणाम / निष्कर्ष :

स्त्री पृथ्वी की भांति धैर्यवान है' यानी नारी का धर्म है कि गम खाय! उपन्यास सम्राट प्रेमचंद जी ने अपने गोदान उपन्यास में नारी के प्रति भारतीय संस्कृति के विचारों का आईना अपने उपयुक्त वाक्य में प्रस्तुत किया है। त्याग, प्रतिष्ठा, नैतिक अनैतिक, सहनशीलता, परोपकार आदि आदर्श स्त्री के साथ चिपकाकर, स्त्री के साथ जोड़कर भारतीय संस्कृति में सदा ही स्त्री का शोषण किया गया है। आधुनिकता का दिखावा दिखाने वाले इस भारतीय समाज व्यवस्था में आज भी नारी की स्थिति दयनीय दिखाई देती है। स्त्री के प्रति एक और पुरुष की प्रति एक न्याय इस संस्कृत में विद्यमान दिखाई देता है। नारी को सुंदरता की मूर्ति बनाकर उसमें समर्पण का भाव ठोस ठोस कर भरकर आदर्श नारी और त्याग समर्पण एक सिक्के के ही दो पहलू है ऐसा भारतीय संस्कृति में चित्रित किया है यह सब कुछ पुरुष प्रधान मानसिकता द्वारा बनाया गया है। विश्व की महान समझने वाली इस भारतीय संस्कृति में कम अधिक रूप में भारतीय स्त्री का शारीरिक, मानसिक, लैंगिक, भावनिक, धार्मिक, आर्थिक रूप में शोषण

किया जाता है। संस्कृति परंपरा रीति रिवाज प्रथा आदि की बहने स्त्री शोषण का विरोध आधुनिक युग की अनेक महिला रचनाकारों ने अपनी रचनाओं में किया है। तथा संस्कृति के बहाने किस तरह पुरुष प्रधान मानसिकता स्त्री का शोषण करती है इसका सजीव चित्रण अपनी रचनाओं में करती हुई दिखाई देती है।

संदर्भ:

1. नैतिकता के नए सवाल- अस्तित्व की नैतिकता मैत्रीय पुष्पा-पृष्ठ 136
2. नैतिकता के नए सवाल -अस्तित्व की नैतिकता मैत्रीय पुष्पा-पृष्ठ 138 से -139
3. अन्वेषी मनिका मोहिनी बीमार- पृष्ठ 124
4. अन्वेषी मनिका मोहिनी बीमार- पृष्ठ 128
5. अन्वेषी मनिका मोहिनी कोई सजा नहीं -पृष्ठ 74

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

नारी विमर्श के परिप्रेक्ष में हिंदी गजल

डॉ.अविनाश कासांडे
हिंदी विभागाध्यक्ष
श्री पंडितगुरु पार्डीकर महाविद्यालय
सिरसाला, तह. परली, जि. बीड.

हिंदी साहित्य का इतिहास इस बात का साक्षी है कि आदिकाल से लेकर वर्तमान समय तक साहित्य में समय सापेक्ष परिवर्तन अधिक मात्रा में होते रहे हैं। यह परिवर्तन साहित्य की हर एक विधा में हुआ है। यह बात भी दृष्टिगत होती है कि आदिकाल से लेकर वर्तमान काल तक हिंदी साहित्य में अनेकविध विधाओं का आविष्कार और विकास होता रहा है। गद्य और पद्य साहित्य में इस विकास की निरंतरता को सहजता से देखा जा सकता है।

साहित्य का वर्तमान कालीन दौर विमर्शों का दौर है। वर्तमान समय तक हिंदी साहित्य में अविरत रूप से होते रहे समय सापेक्ष परिवर्तनों के फलस्वरुप आज दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, बाल विमर्श, वृद्ध विमर्श, किन्नर विमर्श, विकलांग विमर्श आदि विमर्शों का प्रचलन दिखाई देता है। नारी विमर्श भी इन्हीं वीमर्षों में से एक है जिसमें नारी जीवन की विडंबना समस्याओं और दशा - दिशा का चित्रण हो रहा है। नारी विमर्श भी इन्हीं विमर्शों में से एक है जिसमें नारी जीवन की विडंबना, समस्याओं और दशा - दिशा का चित्रण हो रहा है। उल्लेखित सभी विमर्श साहित्य की कथा, कविता, उपन्यास, नाटक आदि अनेकविध विधाओं में व्याप्त है। हिंदी साहित्य की ग़ज़ल विधा भी इन विमर्शों से अछूती नहीं रही है।

हिंदी साहित्य में गजल एक आगत विधा है। अरबी फारसी उर्दू से होकर इसका अवतरण हिंदी साहित्य में हुआ है। आदि मध्य और आधुनिक काल में इसके विकास की धारा क्षीण रही है किंतु आधुनिक काल में इस विधा ने अपने विकासात्मक सोपानो को पर कर अपना स्वतंत्र रूप धारण किया हुआ दिखाई देता है। हिंदी साहित्य में जब इस विधा का अवतरण हुआ तब यह विधा कथ्य और शिल्प की दृष्टि से विशिष्ट मर्यादाओं में व्याप्त थी। आधुनिक काल में होने वाले समय सापेक्ष परिवर्तनों के साथ-साथ इस विधा में भी अमूल्य परिवर्तन हुए हैं। इस काल में गजल अपनी कथ्य और शिल्पगत मर्यादाओं को लांघकर सामान्य जनमानस के साथ जुड गई है। आम आदमी के जीवन, उसकी समस्याएं, उसका संघर्ष, आशा, निराशा, सुख-दुख गजल के विषय बनकर आने लगे और गजल आम आदमी के जनजीवन जीवन से जुडकर उसके जीवन संघर्ष को अभिव्यक्त करने वाली एक सशक्त विधा बन गई।

साहित्य में होने वाले परिवर्तनों के साथ-साथ इस विधा में भी साहित्यागत परिवर्तन होने लगे जिसके फल स्वरुप गजल में भी अनेकविध विमर्शों का प्रचलन होना प्रारंभ हुआ दिखाई देता है। तात्पर्य यह कि हिंदी ग़ज़ल में नारी विमर्श इसी स्वाभाविक परिवर्तनों की देन है। हिंदी ग़ज़ल में चित्रित नारी विमर्श नारी जीवन की विडंबना, समस्याएं, उपेक्षितता तथा वेदना, त्रासदी और जीवन संघर्ष को चित्रित करता है। पुरुष प्रधान एवं पितृसत्तक पद्धति का प्रचलन हमारे समाज में होने के कारण जन्म से ही स्त्री को दोयम स्थान प्राप्त होता है। वास्तविक रूप से देखा जाए तो समाज में स्त्री और पुरुष दोनों का समान महत्व है परंतु सदियों से स्त्री को यह समान स्थान और सम्मान नहीं मिला है। महाश्वेता चतुर्वेदी जी के शब्दों में -

"बन अगर की बत्तियां जलती रही है बेटियां,

इस नीठूर संसार को खलती रही है बेटियां।

चाहती मां बाप को है भाइयों से भी अधिक,

भेदभाव के बीच क्यों पलती रही है बेटियां।

रूढ़ियों का पाश है बढ़ने नहीं देता इन्हें,

हाथ अपने मुक्ति को मलती रही है बेटियां।" ०१

उपरोक्त शहरों में स्त्री जीवन की इसी वेदना को अभिव्यक्ति मिली है कि इतना महत्वपूर्ण होकर भी स्त्री के जीवन में दोयम स्थान की विडंबना भरी है। जन्म से ही उसके नसीब में भेदभाव और उपेक्षितता व्याप्त है। हमारे समाज में व्याप्त रूढ़ियों और परंपराएं भी स्त्री को अपने मजबूत पाश में बंधे हुए हैं जिनसे वह छुटकारा एवं मुक्ति पाना चाहती है।

हमारे समाज में व्याप्त दहेज की समस्या भी नारी जीवन के लिए बहुत बड़ा अभिशाप बनकर उपस्थित हुई है। आज तक न जाने कितनी स्त्रियां इस दहेज प्रथा का शिकार होकर जीवन से हाथ धो बैठी है। माता-पिता की आर्थिक व्यवस्था और इस प्रथा के बीच नारी जीवन पिसता हुआ दिखाई देता है। निरंजन जैन के शब्दों में-

"बेटी हुई सयानी ब्याहूँगा कैसे उसको,

मुफलिस का जिसम उसकी चिंता में गल रहा है।" ०२

कुंवर बेचैन भी अपनी गजलों में दहेज के कारण होते हुए नारी शोषण एवं नारी प्रताड़ना को अपने शेरों के माध्यम से सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान करते हुए लिखते हैं-

"कल भी एक दुल्हन को लपटों ने लापटा कुंअर,

आज भी एक द्वार पर बारात बैठी रह गई।" ०३

समाज में व्याप्त स्त्री भ्रूण हत्या की समस्या भी नारी जीवन का एक अभिशाप ही है। कुलदीपक की चाह में आज भी समाज में गर्भ में ही स्त्री भ्रूण की हत्या की जा रही है। आज बदलते हुए परिवेश में भले ही इस दृष्टिकोण में बदलाव आ रहा है परंतु यह वैचारिक परिवर्तन अपेक्षाकृत कम है। जहीर कुरैशी इस संदर्भ में लिखते हैं-

"लिंग निर्धारण समस्या हो गई,

कोख में ही कत्ल कन्या हो गई।" ०४

स्त्री की इस दुर्दशा, अवहेलना, प्रताड़ना का कारण हमारी समझ व्यवस्था में स्त्री के प्रति प्रचलित दृष्टिकोण भी है। सदियों से हमारा समाज उसे द्वितीयं स्थान देता आया है और साथ ही उसे केवल भोग की वस्तु मानता रहा है। स्त्री के प्रति रूढ इस संकुचित दृष्टिकोण में पूर्णतः परिवर्तन होना आवश्यक है। कुंवर बेचैन इसी बात को अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं-

"यह बीवी ही नहीं, मां है, बहन है और बेटी है,

यह किसने कह दिया औरत तो बिस्तर का खिलौना है।" ०५

सांसारिक जीवन में तो पति और पत्नी का समान महत्व होता है परंतु प्रचलित समाज व्यवस्था में पुरुष प्रधान संस्कृति के चलते यहां भी उसकी सदैव उपेक्षा ही की हुई है। पुराणों में आख्यायित सावित्री की कथा से सब परिचित ही है। नारी के इसी महत्व को प्रतिपादित करते हुए महाश्वेता चतुर्वेदी लिखती है -

"एक नारी जब भी सावित्री बनी,

सामने से मौत को टलना पड़ा।" ०६

संक्षेप में कहा जाए तो आज नारी की सामाजिक स्थिति में भले ही बदलती समसामायिकता के साथ परिवर्तन हो रहे हैं किंतु आज भी हमारे संकुचित दृष्टिकोण के कारण नारी अपने आप को और असुरक्षित एवं भय ग्रस्त महसूस करती हुई दिखाई देती है। नारी की दशा और दिशा में परिवर्तन के लिए उसके प्रति देखने के दृष्टिकोण में परिवर्तन अपेक्षित है। इस बात को नारी जीवन से संबंधित हर पहलू एवं समस्याओं को हिंदी ग़ज़ल में चित्रित किया हुआ दिखाई देता है।

संदर्भ :-

०१) गजल गरिमा, संपादक भानुमित्र, अप्रैल - जून 2018 , पृष्ठ १०,

०२) गजल के बहाने, संपादक दरवेश भारती, अंक 15 , पृष्ठ 18,

०३) तो सुबह हो, कुंवर बेचैन, पृष्ठ ०९,

०४) गजलकार जहीर कुरैशी की काव्य दृष्टि , डॉ. मधु खराटे, पृष्ठ 65,

०५) तो सुबह हो, कुंवर बेचैन, पृष्ठ 22,

०६) गजल गरिमा, संपादक भानुमित्र, अप्रैल - जून 2018, पृष्ठ ०४.

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

हिंदी कथा साहित्य में किन्नर विमर्श

विद्या काळुसे
पीएच.डी., शोधार्थी
डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर मराठवाडा विश्वविद्यालय
छत्रपति संभाजीनगर (महाराष्ट्र)

शोध-सारांश :

हिंदी साहित्य के अंतर्गत वर्तमान सदी विमर्शों की सदी है। साहित्य जगत में विभिन्न विमर्शों का प्रचलन बढ रहा है। नारी विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श तथा किन्नर विमर्श आदि अस्मितामूलक विमर्शों के माध्यम से संपूर्ण साहित्य जगत में हाशिए पर रह रहे विषयों को न्याय दिलाने का प्रयास किया जाने लगा है। रीतिकाल में दरबारों की शान-ओ-शौकत बढानेवाला साहित्य आधुनिक काल के आरंभ में ही आम लोगों की बात करने लगा। प्रकृति के सानिध्य में निवास करने के बाद फिर से विविध 'वादों' के चलते जनता के हक में अपनी उपस्थिति दर्ज करानेवाला साहित्य हिंदी जगत में व्याप्त हो गया। इक्कीसवीं सदी में आते-आते हिंदी साहित्य उन लोगों की हक की बात करने लगा जो हाशिए पर रह रहे है। व्यवस्था द्वारा दबाए गए समाज की आवाज बनने लगा। इससे ही हिंदी साहित्य जगत में 'विमर्शों' का जन्म हुआ। अस्मितामूलक विमर्शों के अंतर्गत नारी, दलित, आदिवासी, किन्नर, किसान, प्रवासी साहित्य, अल्पसंख्याक आदि अनेक विमर्शों की चर्चा होने लगी। इन्हीं विमर्शों के चलते समाज में उपेक्षित यह 'हिस्सा' अपना स्थान बनाने में बहुत-कुछ अंश में कामयाब हुआ है।

संकेत शब्द : किन्नर, हिजडा, हाशिया, उपेक्षा, पीडा, मानसिकता

प्रस्तावना :

अपनी अस्मिता की तलाश में मारा-मारा फिरता एक 'हिस्सा' ऐसा भी है जिन्हें समाज स्वीकार करने से कतराता है। वह हैं – हिजडा। 'हिजडा' शब्द सुनते ही हमारे मन में एक अजीब-सा डर उभरकर आता है और नजरों के सामने आता है रेल्वे में, सिग्नल पर, बाजार-हाटों में तालियाँ बजाते पैसे मांगते लोग जिन्हें समाज `हिजडा' नाम से संबोधित करता है। सामान्यतः `हिजडा' उन्हें कहा जाता है जो न तो स्त्री है और न पुरुष। `स्त्री' एवं `पुरुष' लिंग से भिन्न `अन्य' लिंगधारी व्यक्ति को हिजडा के अलावा अनेकविध नामों से संबोधित किया जाता है।

`किन्नर' को पारिभाषिक शब्दावली में Third Gender (थर्ड जेंडर) कहा गया है। `हिजडा' या `किन्नर' को विविध भाषाओं में अलग-अलग नामों से जाना जाता है। `हिजडों' को रोमन में `यूनक' (Eunuch) कहा जाता है। `यूनक' अर्थात, लिंग-परिवर्तन के बाद पुरुष से बनी हुई स्त्री। इस शब्द का उल्लेख `बाइबल' में आता है। साहित्य और समाज में `किन्नर' शब्द को लेकर विविध नामों की चर्चा होती रही हैं। जिसमें `किन्नर', `हिजडा' एवं `थर्ड जेंडर' का प्रयोग अधिक रूप में दिखाई देता है। कुछ साहित्यकार उन्हें `हिजडा' नाम से संबोधित करते है तो कुछ प्राचीन ग्रंथों एवं पुराणों के आधार पर `किन्नर' शब्द का प्रयोग करना उचित मानते है। हिंदू परंपरा में मंगलकार्यों में किन्नरों से आशीर्वाद लेकर उन्हें `नेग' देने की प्रथा है इसीकारण उन्हें `मंगलमुखी' नाम से भी संबोधित किया जाता है। `किन्नर' और `हिजडा' शब्दों के प्रयोग के बारे में नीरजा माधव का कहना हैं कि, ''एक तथाकथित

प्रचलित-सा नाम `किन्नर' कहीं से क्या उछला कि सभी लेखक, आलोचक, प्रोफेसर और शोध छात्र देखा-देखी उसका प्रयोग हिजडा समुदाय के लिए करने लगे। बिना किन्नर शब्द का वास्तविक अर्थ शब्दकोशों में ढूँढ एक ताना-बाना बुना जाने लगा – किन्नर विमर्श। जबकि शब्दकोशों के अनुसार किन्नर एक जाति विशेष के लोगों का संबोधन है जो देव योनि के माने जाते हैं। उनके भीतर हिजडों की भाँति कोई लैंगिक विकृति नहीं पाई जाती है।''[1]

स्त्री-पुरुष लिंग से `इतर' समुदाय ने खुद के लिए `किन्नर' शब्द को स्वीकार किया है। भारतीय पुराणों, ग्रंथों आदि में भी किन्नरों-हिजडों आदि का उल्लेख मिलता है। `रामायण' में किन्नर शब्द का प्रयोग देखने को मिलता है। मुरारी बापू की कृति `मानस किन्नर' में किन्नर के बारे में कहा गया हैं कि, ``जिन किन्नरों के बारे में मेरे गोस्वामी ने मैदान में डिम-डिम-डिम घोष करते हुए सोलह बार रामचरितमानस में `किन्नर' शब्द का प्रयोग किया। और गोस्वामी के अन्य संदर्भ-ग्रंथों का यदि विवरण आपको दूँ तो और किन्नर शब्द आपको मिलेंगे। कुल मिलाकर छब्बीस बार तुलसी ने किन्नर को साधु हृदय से याद किया है।''[2] इसके अलावा लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी ने अपनी आत्मकथा में `हिजडा' शब्द को स्वीकार करते हुए `किन्नर' शब्द को स्वीकार किया है।

लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी के अनुसार, ``उर्दू और हिंदी में `हिजडा' शब्द है। इसके साथ ही उर्दू में `ख्वाजासरा' भी कहा जाता है। हिजडों को अपने प्राचीन धर्म ग्रंथों में `किन्नर' शब्द की संकल्पना है। इस वजह से हिजडों को हिंदी में `किन्नर' भी कहते हैं। मराठी में `हिजडा' और `छक्का', पंजाबी में `जनखा', तेलुगु में `नपुंसक्कुड', `कोज्जा', `मादा' कहा जाता है तो तमिल में `थिरुरनागाई', `अली', `अरवन्नी', `अरावनी', `अरूवनी' इत्यादि शब्दों का इस्तेमाल किया जाता है।''[3]

हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श :

`विमर्श' को अंग्रेजी में ` Discourse' कहा जाता है। उसी तरह हिंदी में सामान्यत: `विचार-विनिमय' करना आदि अर्थ में प्रयोग किया जाता है। हिंदी कोश में विमर्श का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा गया हैं कि, ``सोच-विचार कर तथ्य या वास्तविकता का पता लगाना, किसी बात या विषय पर कुछ सोचना, समझना, विचार करना, गुण-दोष आदि की आलोचना या मीमांसा करना, जाँचना और परखना, किसी से परामर्श या सलाह करना।''[4]

`किन्नर विमर्श' के अंतर्गत किन्नरों की मूलभूत समस्याओं को जानने-समझने के अलावा उनकी मानसिक स्थिति एवं समाज में उनका स्थान आदि का अध्ययन करना आवश्यक होता है। जैसे ही किसी परिवार में लैंगिक रूप से विकलांग बालक का जन्म होता है तो सर्वप्रथम परिवार के सदस्य ही उस बालक को `अलग' नजर से देखते है। फिर उसे बार-बार उसके `विकलांग' होने का एहसास कराया जाता है, जिससे उस बालक की मानसिकता पर असर पडता है। उस छोटे बालक को यह तक नहीं पता होता है कि उसमें ऐसा क्या दोष है जो उसके साथ इस तरह का व्यवहार किया जा रहा है। ऐसे लैंगिक बालक को परिवार-समाज वाले `किन्नरों' के हवाले कर देते है। तब उसकी सारी परवरिश किन्नरों-सी होती है। हिंदी साहित्य की विविध विधाओं में किन्नरों की इसी मानसिकता को दर्शाने का प्रयास साहित्यकारों ने किया है। विशेषता हिंदी कथा-साहित्य में किन्नर विमर्श को लेकर बहुत अधिक मात्रा में लिखा गया है। प्रो. ऋषभदेव शर्मा के अनुसार, ``शिवप्रसाद सिंह की `बहाववृति' तथा `बिंदा महाराज' जैसी कहानियों के चरित्र में तृतीय लिंगी विमर्श की आरंभिक आहट देनेवाले किन्नर चरित्र है जो समाज की मूलकथा में पुनर्वास के लिए जूझ रहे हैं।''[5] इसके बाद हम देख सकते है 1980 में `सारिका' में प्रकाशित सुभाष अखिल की `दरमियाना' कहानी लिखी गई थी। जिसमें किन्नरों के बारे में लिखा गया है। इसके बाद कुछेक छुटपूट रचनाओं के अलावा किन्नरों को केंद्र में रखकर अधिक नहीं लिखा गया। परंतु इक्कीसवीं सदी की शुरुआत में ही यह विषय

`किन्नर विमर्श' के रूप में उभरकर आया तब से हिंदी साहित्य में किन्नरों को केंद्र में लिखकर काफी कुछ लिखा जाने लगा है।

किन्नरों की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा मानसिक स्थिति का चित्रण करनेवाले उपन्यास और कहानियां इस काल में अधिक मात्रा में लिखी जाने लगी। नीरजा माधव का `यमदीप', महेंद्र भीष्म का `किन्नर-कथा', `मैं पायल', प्रदीप सौरभ का `तिसरी ताली', निर्मला भुराडिया का `गुलाम मंडी', `मैं भी औरत हूँ', सुभाष अखिल का `दरमियाना', चित्रा मुद्गल का `पोस्ट बॉक्स नं. 203 नालासोपारा', राजेश मल्लिक `आधा आदमी', डॉ. विमल मल्होत्रा `किन्नर मुनिया मौसी', भगवंत अनमोल `जिंदगी 50-50', गिरिजाभारती `अस्तित्व', हरभजनसिंह मेहरोत्रा `ऐ जिंदगी तुझे सलाम', भुवनेश्वर उपाध्याय `हॉफमैन', नरेंद्र कोहली `शिखण्डी', डॉ. मानिका शर्मा `अस्तित्व की तलाश में सिमरन', रेनू बहल `मेरे होने में क्या बुराई'. डॉ. लता अग्रवाल `मंगलमुखी', शरद सिंह `शिखण्डी स्त्री देह से परे', डॉ. मुक्ति शर्मा `श्रापित किन्नर', अर्चना कोचर `किन्नर कथा – एक अंतहीन सफर' इत्यादि उपन्यास किन्नर विमर्श को केंद्र में लेकर लिखे गए है।

वर्तमान सदी में मनुष्य अंतरिक्ष की सैर कर रहा है। उसने चाँद और मंगल ग्रहों पर अपनी विजय पताका लहराई है। परंतु वही मनुष्य अपने ही समाज के दूसरे मनुष्य जो कि शारीरिक रूप से विकलांग है उसे देखना तक पसंद नहीं करता। समाज में ऐसे कई लोग है जो दो वक्त की रोटी के लिए संघर्ष कर रहे है। उनमें से एक है किन्नर। परिवार एवं समाज से ठुकराए गए यह लोग अपने ही जैसे लोगों का समुदाय बनाकर रहते है। उपजीविका एवं आय का कोई साधन उपलब्ध न होने के कारण उन्हें रास्ते पर, चौक-चौराहों पर, रेल्वे स्टेशन आदि पर भीख मांगकर अपना गुजारा करना पडता है। रोटी, कपडा और मकान के लिए उनका संघर्ष प्रतिदिन जारी रहता है। साहित्यकारों ने उनके इसी समस्याओं को जानने समझने की निरंतर कोशिश की है। उनकी समस्याओं को समझने के साथ-साथ साहित्यकारों ने उनकी संवेदनाओं को भावनिक स्तर पर जान-पहचाना है और उसी रूप में उसे कलम से कागज पर उतारा है। शिक्षा के अभाव के कारण उनके रीति-रिवाज, आचार-विचार, रहन-सहन आदि मुख्यधारा के लोगों से भिन्न है। उनके यही रीति-रिवाज आदि का चित्रण किन्नर केंद्रित हिंदी उपन्यासों में हुआ है।

जिस तरह किन्नर विमर्श पर आधारित हिंदी में उपन्यासों को हमने देखा उसी प्रकार हिंदी कहानियां भी सैंकडों की संख्या में लिखी हुई देखने को मिलती है। किन्नरों के जीवन को केंद्र में रखकर कहानियां लिखने का आरंभ आधुनिक काल से ही हुआ है। शिवप्रसाद सिंह के `बिंदा महाराज' और `बहाव वृत्ति' कहानियों से किन्नर विमर्श की कहानियों का आरंभ हुआ है ऐसा माना जाता है। तदोपरांत इक्कीसवीं सदी में अधिक लेखन हुआ देखने को मिलता है। जिनमें से कुछ उदाहरण निम्न रूप में हैं – राकेश शंकर भारती `जिंदगी के उस पार', डॉ. फीरोज खान (संपा.), `थर्ड जेंडर : हिंदी कहानियाँ', `हम भी इंसान हैं', डॉ. विजेंद्रप्रताप सिंह और डॉ. रविकुमार गोंड (संपा.), `कथा और किन्नर', विमन ग्यारोबाराव सूर्यवंशी (संपा.), `थर्ड जेंडर चर्चित कहानियाँ', पुरोबी ए. भंडारी (संपा.) `दास्तान-ए-किन्नर' आदि कहानी संग्रहों में किन्नर विमर्श पर कहानियां संकलित की है। इन संकलनों में संकलित कहानियां किन्नरों के न्याय हकों की बात करती दिखाई देती है। समाज द्वारा नकारे गए इन लोगों के सामाजिक न्याय और मानवाधिकार के संदर्भ में लेखन हुआ है।

किन्नर केंद्रित हिंदी कथा साहित्य के केंद्र में किन्नरों की पीडा और उनका संघर्ष ही मुख्य रूप से रहा है। साहित्यकारों ने अपने विवेक से किन्नरों की संवेदनाओं को पाठकों तक पहुँचाने का कार्य किया है। हाशिए पर रखे गए इस समाज को जितनी बारिकी से जानने-समझने का प्रयास किया जाए उतना भी कम है। आज भी किन्नर समाज दो वक्ता की रोटी के लिए ताली बजाने, नाचने-गाने, भीख मांगने यहाँ तक की वैश्यावृत्ति जैसे हीन कार्य

करने के लिए मजबूर है। उन्हें परिवार एवं समाज में घृणा की नजर से देखा जाता है और हर कदम पर तिरस्कार, दुत्कार एवं अवहेना की पीडा को सहने के लिए किन्नर समुदाय विवश है। इनकी धार्मिक मान्यताएँ भी मुख्य समाज की धार्मिक मान्यताओं से अलग है। प्रत्येक किन्नर पूरी श्रद्धा भाव से बहुचरा माँ और अरावन देवता की पूजा करता है। किन्नरों को शिक्षा-दीक्षा मिले इस लिए सरकार और एन.जी.ओ. आदि द्वारा प्रयास किए जा रहे है। साथ ही अखिल भारतीय किन्नर शिक्षा सेवा ट्रस्ट के द्वारा किन्नरों के लिए देश का पहला विश्वविद्यालय निर्माण किया जा रहा है। इसके अलावा भी किन्नरों को शिक्षा से वंचित रखा गया है। यदि कोई किन्नर शिक्षा ग्रहण करने का प्रयास करता है तो उसे अनेक कष्टों का सामना करना पडता है। `तीसरी ताली' उपन्यास में इस तरह की घटना का निम्न रूप से चित्रण हुआ हैं। स्कूल की प्रिंसिपल कहती हैं, ``जेंडर स्पष्ट न होने के कारण हम दाखिला नहीं दे सकते... यह स्कूल सामान्य बच्चों के लिए है बीच वाले बच्चों को दाखिला देने से स्कूल का माहौल खराब हो जाता है।''[6]

शैक्षिक स्थिति के साथ ही किन्नरों की राजनीति से संबंधित रूचि को कुछ ही कृतियों में चित्रित किया गया है। `मैं भी औरत हूँ', `मैं पायल', `जिंदगी 50-50', `दरमियाना', `अस्तित्व' और `ऐ जिंदगी तुझे सलाम' आदि कुछ ऐसे उपन्यास है जिसमें राजनीतिक संदर्भ दिखाई देते है। उदाहरण रूप में `दरमियाना' उपन्यास का संदर्भ ले सकते हैं। उपन्यास की चरित्र दयारानी को राजनीति और सामाजिक कार्यों की समझ है। वे नि:स्वार्थ रूप से यह कार्य करती है। उपन्यास की पात्र दयारानी का चुनाव लडने के संदर्भ में उपन्यासकार का कहना हैं कि, ``दया रानी को राजनीति में रुचि, सामाजिक कार्यों में आगे बढकर योगदान करने और किन्नर समाज के हितों की लडाई लडने के उनके साहस ने मुझे जोडे रखा।''[7] वर्तमान में भी राजनीति में किन्नरों की उपस्थिति को हम देख सकते है।

सारांश :

हिंदी कथा साहित्य में विविध अस्मितामूलक विमर्शों के अंतर्गत किन्नर विमर्श इक्कीसवीं सदी में आरंभ हुआ एक नव विमर्श है। अत्यंत कम समय में ही `किन्नर' को केंद्र में रखकर उपन्यास, कहानियाँ, कविताएँ, आत्मकथाएँ तथा आलोचना आदि विपूल साहित्य में निर्माण हुआ है। उपन्यासों में लगभग दो दशकों से अधिक उपन्यासों की रचनाएँ हुई है, साथ ही कहानियां भी सैंकडों में लिखी गई है जो विभिन्न संग्रहों में संकलित है। कुल मिलाकर हम यह कह सकते हैं कि लेखन की दृष्टि से हिंदी कथा साहित्य में किन्नर विमर्श को उचित न्याय मिला है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. नीरजा माधव, किन्नर नहीं हिजडा समुदाय, पृ. दो शब्द से
2. मुरारी बापू, मानस किन्नर, पृ. 5
3. लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी, अनु. डॉ. शशिकला, मैं हिजडा... में लक्ष्मी, पृ. 157
4. https://www.scptbzz.org, विमर्श का अर्थ एवं परिभाषा by Bandey 16 Feb. 2021
5. प्रो. ऋषभदेव शर्मा, किन्नर विमर्श साहित्य और समाज, सं. मिलन बिश्नोई, पृ. भूमिका
6. प्रदीप सौरभ, तीसरी ताली, पृ. 42
7. सुभाष अखिल, दरमियाना, पृ. 116

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

जहीर कुरेशी की गजले और घुमंतू जीवन

प्रा.डॉ.निवृत्ती एस. भेंडेकर
सहयोगी प्राध्यापक-हिंदी विभाग
कला, वाणिज्य व विज्ञान महाविद्यालय, गंगाखेड.

घुमंतू ऐसे लोग होते हैं जो किी एक जगह टिक कर नहीं रहते बल्कि रोजी-रोटी की तलाश में यहाँ से वहाँ घूमते रहते हैं। देश के कई हिस्सों में हम घुमंतूओं को देखा जा कता है। इन लोगों की जंगलों में आवाजाही, जड़ी-बूटियों की खोज तथा जानकारी, परंपरागत तरीके से चिकित्सा पद्धती से रोगों का इलाज, कला और मनोरंजन के प्रति झुकाव आदि महत्वपूर्ण पहलु इन लोगों के पाये जाते है। घुमंतू लोगों में प्रायः नट, भाट, बंजारा, पेरा, कंजर, पेरना, सिंगीवाल, तेली, कोली आदि समुदाय आते है। हिंदी के अनेक साहित्यकारों की पैनी नजर इन लोगों के जीवन पर गई और उन्होंने इसे साहित्य में अंकित भी किया है। हिंदी गजल के क्षेत्र में आधुनिक हिंदी गजलको एक नये पायदान पर स्थापित करने वाले एक श्रेष्ठ गजलकार जहीर कुरेशी जी की गजलो में भी इन घुमंतू लोगों के जीवन पर प्रकाश डाला गया है।

जहीर कुरेशी ने अपनी गजलेके द्वारा जीवन के विभिन्न पक्षों को यथार्थ की धरातल पर उजागर किया है। आज हम इक्कीसवीं सदी में होने के बावजूद भी हमारे राष्ट्र में कुछ ऐसी जन-जातियाँ भी पाई जाती है, जो एक स्थान से दूसरे स्थान जीवन यापन की द्रष्टी से घूमती है। ऐसे लागों को सामान्यतः 'घुमंतू' कहा जाता है। इनकी अपनी एक संस्कृति तथा प्रथाएँ होती है, जिनका निर्वहण वे प्रमाणिकता के साथ करते हुए दिखाई देते हैं। इन जातियों की संस्कृति के संबध में 'सुनिल गोयल तथा संगीता गोयल लिखते हैं, ''सभी प्रकार की प्रथाएँ यह बाताती है कि एक समुह में किस व्यवहार का क्या अर्थ है तथा समुह में किन मूल्यों को अधिक महत्वपूर्ण समझा जाता है ? इसके फलस्वरूप व्यक्ति अचेतन रूप से उन्हीं नियमों के अनुसार कार्य करता रहता है जो उसकी संस्कृति के अंग रहे हैं।''[1] इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि इनका जीवन अपनी संस्कृति के मूल्यों के अनुरूप घूमते हुए ही व्यतित होता है। जहीर कुरेशी ने घुमंतू लोगों के संबंध में 'जिन्दगी से बड़ा जिन्दगी का समर' में कहा है-

''खुशबू से मिलता-जुलता है घुमंतुओं का सोच
दोनों के ही सुभाव में आवारगी रही''[2]

गजलकार ने इस स्थिति को 'निकला न दिग्विजय को सिकंदर' में इस प्रकार प्रकट किया है,

''किसी भी वक्त चल देती है चढ़कर वायु के रथ पर,
निडर घुमंतू ओं-सी गंध में आवारगी पाई।''[3]

[1] भारतीय समाज, सुनलि गोयल-संगीता गोयल, पृ. 44
[2] जिन्दगी से बड़ा जि+न्दगी का समर, जहीर कुरेशी, पृ. 97
[3] निकला न दिग्विजय को सिकंदर, जहीर कुरेशी, पृ. 18

आम तौर पर खुशबू हवा के बहाव के साथ फैलती चली जाती है, ठीक उसी प्रकार घुमंतू लोगों का भी जीवन है। वे एक स्थान पर टिक कर नहीं रहते। जीवन की उपजीविका के लिए जो सामने राह मिलती है, उसी दिशा में निडर होकर वे आगे बढ़ते जाते हैं। इसलिए गजलकार ने 'खुशबू' और 'घुमंतू ' लोगों के बीच के साम्य को आवरगी के रूप में प्रस्तुत किया है।

देश के घुमंतू जनजातियों में बंजारा नामक एक प्रमुख जनजाति पायी जाती है। वे एक स्थान से दुसरे स्थान पर घुमते हुए ही अपनी आजीविका चलाते हैं। साथ ही इन बंजारों के पास जड़ी-बूटि संबंधी महत्वपूर्ण जाणकारी भी मिलती है। हमेशा भ्रमण करने के कारण धरती पर कहाँ क्या मिलता है तथा कौनसे स्थान की कौनसी विशेषता है, यह बंजारों से अधिक कोई नहीं जान सकता। जहीर कुरेशी की यह पंक्तिया 'बंजारों' की जीवन "शैली के साथ उनकी प्रवृत्ति पर भी प्रकाश डालती है,

''हम लोगों ने बंजारों-सा,

धरती का विस्तार न जाना।"[4]

बंजारों की घुमंतू वृत्ति पर प्रकाश डालते हुए गजलकार ने उनके जीवन प्रवाह पर को भी प्रकट किया है।

बंजारा लोग एक स्थान पर चार-पाँच या अधिक से अधिक दस-बारह दिन से अधिक नहीं रहते। जहाँ कहीं ये जाते हैं उनके साथ इनका परिवार, खान-पान की चीजें, विश्राम के लिए टेंट आदि सभी तैयारी के साथ वे जाते हैं। जहीर कुरेशी की गजलके एक शेर में बंजारों का जीवन इस प्रकार प्रतिबिंबित हेाता है,

''अपना तो बंजारों-सा जीवन है,

संग-संग आवास लिए फिरते हैं।''[5]

इसी प्रकार का दृष्य 'समंदर ब्याहने आया नहीं है' में कुछ इस प्रकार साकार हो उठा है,

''वे बंजारे है, उनकी गाड़ियों पर

हमेशा साथ उनके घर रहेंगे'' [6]

आज इन लोगों की जीवन शैली में जिस मात्रा में परिवर्तन अपेक्षित था, वह नहीं आ पाया है। आज भी ये लोग अपना पांरपारिक व्यवसाय करते हुए दिखाई देते हैं। इसके लिए वे एक स्थान से दूसरे स्थान भटकते फिरते नजर आते हैं।

'रास्तों से रास्ते निकले' इस गजलसंग्रह की गजलेमें घुमंतू लागों की जीवन शैली को लेकर कई शेर मिलते हैं। जिस प्रकार वे एक स्थान से दूसरे स्थान घूमते रहते हैं, ठीक उसी प्रकार गजलकार ने आम आदमी से यह कहा है कि उन घुमंतूओं की शैली तुम्हे तभी रास आएगी, जब तुम्हे उनके समान कठोर परिश्रम की आदत पड़ जाएगी। क्योंकि बीना मेहनत के इस जीवन में कुछ भी प्राप्त नहीं होता। एक शेर दृष्टव्य है,

---

[4] भीड़ में सबसे अलग, जहीर कुरेशी, पृ. 53

[5] एक टूकड़ा धूप, जहीर कुरेशी, पृ. 29

[6] समंदर ब्याहने आया नहीं है, जहीर कुरेशी, पृ. 33

''घुमंतुओं की शैली तभी रास आएगी

पहले तू हिम-शिखर की शिलाओं-सा गल के देख''[7]

व्यक्ति जीवन में प्रेरणा के स्त्रोत अनेक रूपों में मिलते हैं। घुमंतू लोगों की जीवन शैली भी आम व्यक्ति के लिए किसी प्रेरणा से कम नहीं है। अभावग्रस्त स्थितियों में भी कठोर परिश्रम करने की उनकी वृत्ति यकिनन आम जन के लिए प्रेरक है।

हमारे रा'ट्र में विविध प्रकार के जाती-धर्मों के लोगों का बसेरा है। आज भी समाज में कुछ जन-जातियाँ ऐसी है, जो मुख्य समाज प्रवाह में नहीं आ पाई है। इनकी जिवन शैली तथा उपजिविका के साधन आज भी प्रकृति पर निर्भर दिखाई देते हैं। दूसरी ओर कुछ ऐसी भी जन-जातियाँ है, जो वर्तमान में लुप्त होने के कगार पर खड़ी दिखाई देती है। इन लुप्त होती जन-जातियों पर प्रकाश डालते हुए जहीर कुरेशी कहते हैं-

''इधर कुछ लुप्त सी जनजातियों को

निजी पहचान का संकट रहा है।''[8]

पहचान किसी भी व्यक्ति या समाज को स्थैर्य प्रदान करती है परंतु एक संपूर्ण जाति अगर अपनी पहचान खो रही होगी तो उसके अस्तित्व का संकट उसे झेलना पडता है। गजलकार ने स्पष्टतः इस बात को प्रकट किया है कि जो लुप्त होने के कगार पर है, उन्हें उनकी पहचान बनाएँ रखने हेतु प्रयासों की आवशकता है, उन्हें मुख्य समाज प्रवाह के साथ जोड़ने की आवशकता है। अन्यथा ऐसी जन-जातियाँ यकिनन लुप्त हो जाएँगी।

सारतः घुमंतू लोगों के जीवन के संबंध में हम यह कह सकते हैं कि, भारत वर्ष में घुमंतू जन-जातियाँ अनेक पाई जाती है। इन लोगों के जिवन मे स्थिरता नहीं पाई जाती। एक स्थान से दूसरे स्थान पर भ्रमण करते-करते ये लोग लगभग पूरे देश में भ्रमण करते हुये पाये जाते है। इन लागों की विशेषत यह कि, इनको भौगोलीक, सामाजिक, प्राकृतिक स्थितियों की जानकारी अधिक मात्रा होती है। अभावग्रस्त स्थितियों में मेहनत करने का जज्बा उल्लेखनीय होता है। मूलतः इन लोगों का जीवन आज भी प्रकृती पर निर्भर होता है। आज समाज के इस प्रवाह को मूख्य धारा में जोड़कर राष्ट्रविकास में इनका योग लिया जा सकता है। जो निश्चय ही लाभकारी होगा।

संकेत शब्द- **आवारगी**-घूमना-फिरना, घुमक्कडी, **शिखर**- चोटी, **आवास**- रहने की जगह, **शिला**- पत्थर, पाषाण, **दृष्टव्य-** दिखाई पडनेवाला

संदर्भ :

[7] रास्तों से रास्ते निकले, जहीर कुरेशी, पृ. 101

[8] पेड़ तन कर भी नहीं टूटा, जहीर कुरेशी, पृ. 64

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

ममता कालिया के 'अँधेरे का ताला' उपन्यास में चित्रित शिक्षित नारी जीवन

डॉ. आर.एम. शिंदे

उपप्रधानाचार्य तथा हिंदी विभागाध्यक्ष
यशवंतराव चव्हाण महाविद्यालय, अंबाजोगाई

स्वतंत्रता के बाद के भारतीय समाज में उच्च शिक्षा की दशा और दिशा का वास्तविक चित्रण अंधेरी का ताला उपन्यास में बखूबी से तथा रोचकता से उपन्यासकार ममता कालिया द्वारा चित्रित हुआ है। दौड़ उपन्यास के बाद चर्चा में आई ममता कालिया अपनी रचनाओं में अपने समय की सच्चाई और परिवेशगत जीवन दृष्टि की संवेदनशीलता का यथार्थ चित्रण करने में सक्षम रही है। भारतीय समाज सभ्यता और संस्कृति की वास्तविकता का समय सापेक्ष शब्दांकन आपके साहित्य की उपलब्धि है। मानवीय जीवन अभिषेक दृष्टिकोण की मौलिकता तथा दैनिक जीवन की अभिव्यक्ति में मानवीय सौंदर्य बोध का चित्रण सृजन की विशेषता रही है। कला को कल की दृष्टि से नहीं बल्कि सौंदर्य की दृष्टि से देखने समझने की परख आपके साहित्य की मूल्यवत्ता होता है। प्रस्तुत उपन्यास महाविद्यालयीन जीवन की सच्चाई को उजागर करते हुए परिवेशगत बदलते हुए शैक्षिक सरोकार उजागर करता है। महाविद्यालय अध्यापक तथा छात्रों के आपसी व्यवहार अपने आप में पठानिय हैं। शिक्षा जैसे पवित्र स्थान पर भी समकालीन परिवेश में किस प्रकार से उतल-पुथल हो रही है जिसका प्रमाणित चित्रण उपन्यासकार ने एक दस्तावेज के रूप में प्रस्तुत किया है।

भारतीय समाज में नारी रिती-रिवाजों तथा परम्पराओं को तोड़ते हुये आगे बढ़ रही है। पहले नारी का जीवन मर्यादाओं से भरा हुआ था, अब नारी अपने जीवन में संघर्ष करती हुई आगे बढ़ना चाहती है। समकालीन उपन्यासों में नारी को संघर्ष करते हुये देखा गया हैं। इसलिए इससे स्पष्ट होता है कि"नारी में जो गुण हैं, कोशल हैं उन्हें भुलाकर मात्र उसके रुप और रंग को देखा जाता है। जिस दिन नारी के गुण को देखा जाएगा, उसी दिन उसे एक व्यक्ति का स्थान प्राप्त हो जाएगा। इसलिए स्त्री-विमर्श स्त्रियों के लिए किया गया एक आन्दोलन है।"1

समकालीन विमर्श के माध्यम से नारी के स्वतन्त्र अस्तित्व की पहचान भी कराई जाती हैं। आज के दौर में नारियाँ अपना अस्तित्व सिध्द करती हुई दिखायी देती है। वह उच्च पदों पर आसीन है। वह पुरूषों से कंधे से कंधा मिलार हर क्षेत्र में काम करती हुई नज़र आती है। अस्पतालों में डॉक्टर, विभिन्न कार्यालयों में क्लर्क तथा शिक्षा-संस्थाओं, स्कूलों और विश्वविद्यालयों के पद पर भी नारीयों को दखेा गया हैं। नारी शिक्षित होना आवश्यक है, क्योंकि वह आगे की पीढ़ी को सही मार्गदर्शन कर सकती है।

ममता कालिया ने उनके उपन्यास 'अँधेरे का ताला' में भी नारी संघर्ष का चित्रण किया है। ममता कालिया का जन्म 2 नवम्बर 1940 में मथुरा, वृंदावन उत्तरप्रदेश में हुआ है। ममता जी की माता का नाम इन्दुमती तथा पिता का नाम विद्याभूषण अग्रवाल हैं। पिता एक साहित्य के प्रेमी होने के कारण उन्हे स्वंय भी लेखन करने में आनंद का अनुभव होता हैं। ममता कालिया जी की प्रारंभिक शिक्षा गाजियाबाद के कॉन्वेंट स्कूल से आरंभ हुई। इंदौर के विक्रम विश्धिद्यालय से सन 1961 में बी.ए. की परीक्षा उच्च श्रेणी में उत्तीर्ण की है। दिल्ली विश्वविद्यालय में सन 1963 में अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. की उपाधि भी प्राप्त की है।

ममता जी को एम.ए. की उपाधि प्राप्त करते ही दौलतराम कॉलेज, दिल्ली में प्राध्यापक की नौकरी भी मिली है। ममता कालिया जी का विवाह रवीन्द्र कालिया जी से हुआ हैं। ममता जी ने अपने वैवाहिक जीवन में संघर्ष और कष्ट का सामना किया हैं। उनके पति रवीन्द्र जी लिखते है, "ममता के लिए लेखन सबसे बड़ा प्यारा पलायन भी है। वह किसी बात से परेशान होगी तो लिखने बैट जायेगी। उसके बाद एकदम संतुलित हो जाएगी।"2

ममता जी ने उनके साहित्य में कहानी, नाटक, उपन्यास, निबंध, कविता और पत्रकारिता आदि साहित्य की लगभग सभी विधाओं में रचनाकार्य किया है। ममता जी का 'अँधेरे का ताला' इस उपन्यास में कॉलेज की अध्यापिकाओं, छात्राओं और अन्य कर्मचारियों के साथ-साथ ही उपन्यास की नायिका नन्दिता कॉलेज की प्रधानाध्यापिका के जीवन को भी चित्रित किया गया है। नारी कितनी भी आधुनिक तथा शिक्षित क्यों ना हो समाज में उसे नौतिक मूल्यों का आचरण करना ही पड़ता है। नारी कई संघर्षो से जूझ रही है, लेकिन फिर भी वह स्वतंत्र अस्तित्व पाने के लिए जागरूक भी है। उपन्यास में किसी ना किसी समस्याओं से नारी संघर्ष करती हुई नज़र आती है।

उपन्यास की शुरूआत में ही कॉलेज में बी.ए. की छात्रा के अभिभावक भाई के द्वारा अचानक हमले से घायल नन्दिता का संघर्ष वर्तमान शिक्षा जगत में फैले भ्रष्टाचार का खुलासा भी करता है। नारी के इसी शिक्षा जगत में आये हुये संघर्षो को दर्शाया गया है। नन्दिता चक्रवर्ती कॉलेज की प्रधानाध्यापिका होने के नाते किसी भी छात्र के ऊपर अन्याय नहीं होने देती हैं। शिक्षा विभाग की बैठक में नये नियम बनाये जाते है। चालीस प्रतिशत से नीचे अंक पाने वाले छात्रों को प्रवेश नहीं दिया जाएगा। 31 अगस्त के बाद भी प्रवेश नहीं दिया जायेगा तथा 75 प्रतिशत के नीचे उपस्थिती वाले छात्रों को भी परीक्षा में बैठने नहीं दिया जायेगा।

लड़की को प्रवेश न मिलने के कारण उस अभिभावक ने भारी पेपरवेट नन्दिता के सिर पर मारते हुये उसे घायल कर दिया है। नन्दिता की गलती न होने के बावजूद भी उसे उस परिस्थिति का सामना करना पड़ता है। घायल नन्दिता के दुर्घटना की पुलिस रपट भी लिखना नहीं चाहती हैं। ऊपर से पुलिस चौकी का प्रभारी निरीक्षक नन्दिता को ही बार-बार प्रश्न पूँछकर परेशान करता हुआ नज़र आता है। नन्दिता चिढ़कर कहती है कि"एक तो आप अपना काम नहीं कर रहे हैं, दूसरे आप फिजूल की तोहमत लगा रहें।"3

हमलेवर को ढूंढने के बजाय नन्दिता को ही परेशान किया जाता है। नन्दिता उसके कॉलेज में विषय के अनुरूप ही सात प्राध्यापिकाओं की माँग रख लेती है। जिसे की विषय को पढ़ाने में आसानी हो जायें तथा छात्राओं को भी अच्छे अंक प्राप्त हो सकें। नन्दिता को भला बुरा कहने वाले अग्रवाल जी को नन्दिता की बातें पसंद नहीं आती हैं। उतने में ही अग्रवाल जी नन्दिता से कहते है-"कहो, इतनी टीचरों का क्या करोगी? अचार डालोगी? प्राइमरी में अस्सी रुपये पर एक टीचर आठ घण्टी पढ़ाती है। तुम्हारे वहाँ चार सौ में दो घण्टी पढ़ाएगी, बाकी छः घण्टी डण्डे बजायगी। और तुम एम.ए., पीएच.डी. पास क्या करोगी? प्रिंसिपली का मतलब यह नहीं है कि बैठी-बैठी राज करो। पढ़ाना तुमको भी पड़ेगा।"4

अग्रवाल जी प्रिंसिपल नन्दिता चक्रवर्ती का अपमान कर देते हैं। कॉलेज का भला चाहनेवाली नन्दिता को प्राध्यापिकाओं की माँग करते हुये संघर्ष करना पड़ता हैं। प्रबन्धक अपनी मनमानी करते हुये कॉलेज को चलाना चाहता है। वही तय करते है कि, अध्यापिकाओं को कितना वेतन देना है। अचानक से वह नोटिस निकालते हुये उन्हें नौकरी छोड़ने के लिए भी कहते है। नन्दिता चक्रवर्ती इसके विरोध में खड़ी हो जाती है। वह समझाने की कोशिश तक करती है लेकिन अग्रवालजी उसे कहते है, "अब तुम मुझे कानून पढ़ाओगी। तुम्हें तो तनखा मिलती है न? बस, चुपचाप तनखा लेती रहो। नौकरी के साथ नेतागिरी नहीं चलती।"5

अग्रवालजी की बातों का नन्दिता को बहुत बुरा लग जाता है। अग्रवालजी अपना वर्चस्व कायम रखना चाहते है। अध्यापिकाओं की फिक्र करनेवाली नन्दिता को उनके सामने चुप बैढना पड़ता हैं। कॉलेज में काम करनेवाली कर्मचारी महिला ननंकी को भी आधा ही वेतन मिलता हैं। वेतन के लिए संघर्ष करनेवाली ननकी को भी कॉलेज की अध्यापिकाओं द्वारा भला बुरा सुनना पड़ता हैं। उन्हें ऐसा लगता है कि, एक काम करनेवाली महिला को उनके आगे-पीछे ही घूमना चाहिए। समाज में ऐसी मानसिकता हो गई है कि, उच्च पद पर काम करनेवालों लोगों को कर्मचारियों से बातचीत नहीं करनी चाहिए बल्कि उनको आदेश देते हुये उनकी जगह पर ही रखना चाहिए। यह तो समाज में परम्परा ही बन चुकी है। इसी परम्परा का ज्वलंत उदाहरण तिवारी मॅडम जो कि, कॉलेज की अध्यापिका है। तिवारी मॅडम ननकी को देखते ही कहने लगती है "यह मेज़ साफ की है तुमने? मेज़ के नीचे जाले ही जाले लगे हैं, कुर्सी पर इतनी धूल है। मेरी सारी साड़ी खराब हो गयी। सफाई का काम मेरा है या तुम्हारा?"6

कर्मचारी होने के कारण महिला अध्यापिकायें भी ननकी की भावनाओं को समझने की कोशिश नहीं करती हैं। उल्टा ननकी को ही भला बूरा कहा जाता है। नन्दिता ने बिटोला नामक लड़की का अंकपत्र प्राध्यापक मानिक वर्मा को दिया हैं।

बिटोला को संस्कृत में अच्छे अंक प्राप्त हो चुके है। लेकिन संस्कृत विषय में प्रवेश देने के लिए वर्मा जी मना करते हैं। वर्मा जी चाहते है कि, आप अपना कौटा पूरा कीजिए लेकिन संस्कृत विषय को न दीजिएगा क्योंकि वह अछूत हैं। नन्दिता अपने मत से टस से मस न हुई। वह चाहती है कि, बिटोला जैसी होनहार लड़की को उसका विषय चुनने का हक है। चाहे कुछ भी हो जाय वह बिटोला की मदत करेगी। उसने कहा,"हम समाज सुधार की कोरी बातें करते हैं, जब कोई चुनौती आती है तो पीछे हट जाते हैं।"7

नन्दिता बिटोला की जिम्मेदारी लेती है। वह सोचती है कि, समाज में चल रही कुरीतियों तथा कुप्रथाओं के कारण बिटोला जैसी लड़कियों को इनका सामना करना पड़ता है। बिटोला को भी पढ़ाई के लिए संघर्ष करना पड़ता हैं। नन्दिता चक्रवर्ती उसका सहारा बन जाती है।

अधिकतर स्त्रियाँ भी दूसरी स्त्रियों को अलग नजरिये से देखती है, जैसे की कर्मचारी महिलायें। उनसे अलग व्यवहार करती हुई पाई जाती है। जैसे की उपन्यास में काम करनेवाली ननकी। ननकी को कॉलेज की अध्यापिकाओं द्वारा अलग व्यवहार का सामना करना पड़ता हैं।

निष्कर्षत : यह स्पष्ट होता है कि, वर्तमान भारत में शिक्षित नारी आर्थिक रूप से स्वावलम्बी तो हो गई है लेकिन परम्पराओं से बाहर न निकलने के कारण उन्हें कई तरह के संघर्षों का सामना करना पड़ता हैं। नन्दिता जैसी शिक्षित नारी का आज के वर्तमान युग में भी अपने विचारों को रखने का अधिकार नहीं दिया जाता हैं। और ना ही बिटोला जैसी होशियार लड़कियों को पढ़ाई में अडचण पैदा की जाती हैं। 'अँधेरे का ताला' उपन्यास की नन्दिता, बिटोला तथा कर्मचारी ननकी को उपन्यास में संघर्ष करते हुए पाया जाता हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :

1. आधुनिकता : स्त्री-विमर्श, डॉ. ललिता एन. राठोड, पृ. 51
2. हिंदी लेखिकाओं के कथा-साहित्य में नारी-जीवन, डॉ. मनीषा, पृ.77
3. अँधेरे का ताला, ममता कालिया, पृ. 22
4. अँधेरे का ताला, ममता कालिया, पृ. 29
5. अँधेरे का ताला, ममता कालिया, पृ. 46
6. अँधेरे का ताला, ममता कालिया, पृ. 63
7. अँधेरे का ताला, ममता कालिया, पृ. 70

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

किसान जीबन की अस्मिता और रेहन पर रग्घू

डॉ.ज्ञानेश्वर गणपतराव रानभरे

सहाय्यक प्राध्यापक
हिंदी विभाग
यशवंतराव चव्हाण कला,वाणिज्य व विज्ञान महाविद्यालय
सिल्लोड जि.छ.संभाजीनगर पिन-431112

सारांश :-

काशीनाथ सिहं हिंदी साहित्य के एक सफल रचनाकार रहें है। उन्होंने अपनी लेखनी से हिंदी साहित्य की अनेक विधाओं को समृद्ध किया है। रेहन पर रग्घू के लिए उन्हे सन 2011 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मनित किया गया है। रेहन पर रग्घू वस्तुतः बीते दो दशकों का यथार्थ का सशक्त चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में हुआ है। इस उपन्यास में रचनाकार ने भारतीय किसान जीवन की तमाम विषमताओं और विसंगतियों को खुलकर अभिव्यक्त किया है। रघुनाथ इस प्रतिनिथि पात्र के माध्यम से भूमंडलीकरण के प्रभाव को गाँव और शहर के भौगोलिक,सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में आये परिवर्तन को अभिव्यक्त किया है।

बीज शब्द:-

गरिमा, भूमंडलीकरण, मनुष्यता, महत्वाकांक्षा, मानवीय मूल्य, लाभ और स्वार्थ, धर्मशाला, अमेरिका,बॉयफ्रेंड, धरोहर, डालर, सामूहिकता, परिवर्तन, पुकार।

प्रस्तावना:-

हिंदी साहित्य में काशीनाथ सिहं एक सफल रचनाकार माने जाते है। उनकी इस सफलता में समय के साथ काफी निखार आया है। उन्होंने साहित्य क्षेत्र में कई प्रकार की रचनाओं का निर्माण किया जैसे कहानी, उपन्यास. संस्मरण, नाटक तथा आलोचना आदि। अन्य विधाओं की अपेक्षा उपन्यास विधा में उन्हे सर्वाधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई है। अपना मोर्चा,काशी का अस्सी.रेहन पर रग्घू,महुआ चरित,उपसंहार आदि उपन्यास काफी चर्चित रहें हैं। रेहन पर रग्घू एक ऐसा उपन्यास है,जिसमें बीते हुए दो दशकों का यथार्थ चित्रण मिलता है। साथ ही हिंदी उपन्यास और काशीनाथ सिहं दोनों को एक नई गरिमा प्रदान करता है। रेहन पर रग्घू के लिए उन्हे सन 2011 में साहित्य अकादमी का पुरस्कार मिला था। रेहन पर रग्घू में रचनाकार ने भूमंडलीकरण,वैश्वीकरण,तथा बाजारीकरण के यथार्थ विद्रूपताओं पर कठोर प्रहार किया है। प्रस्तुत उपन्यास में आधुनिक भारतीय समाज की तमाम विसंगतियों का चित्रण किया है। जिसमें बदले हुए समाज की सच्ची तस्वीर देखने को मिलती है। गांवों की सच्ची तस्वीर के साथ उस पर भूमंडलीकरण का प्रभाव,किसान अस्मिता,दलित समस्या,बुजुर्ग की समस्या तथा आज के युवकों का चित्रण किया है। जिनका अपने गाँव घर और समाज से कुछ भी लेना देना नहीं है। समाज और राष्ट्र के प्रति उनके मन में कोई जिम्मेदारी का एहसास नहीं है।

किसान जीबन की अस्मिता और रेहन पर रग्घू:-

भूमंडलीकरण और बाजारीकरण ने जहाँ एक ओर महानगरों एवं शहरों को तो प्रभावित किया है। दूसरी ओर गाँव भी इससे अछूते नहीं रहें हैं। गांवों के भौगोलिक,पारिवारिक तथा सामाजिक सम्बन्धो में आया परिवर्तन बखूबी

देखा जा सकता है। उपन्यास का परिचय करते हुए स्वयं काशीनाथ सिहं लिखते है, अगर काशी का अस्सी मेरा नगर था तो रेहन पर रग्घू मेरा घर है -और शायद आपका भी। 1 इससे यह स्पष्ट होता है की प्रस्तुत उपन्यास घर की चारदीवारी से शुरू होकर वैश्विक यथार्थ तक पहूंच जाता है। नामवर सिहं लिखते है, रेहन पर रग्घू सच पूछिए तो एक गाँव की कहानी नहीं है, बल्कि पहाडपुर से लेकर बनारस तथा कैलिफोर्निया तक यानी भारत के एक गाँव से अमरीका तक फैली हुई कहानी है। इसके जरिये इस बीच में जो बदलाव आया है, उसका जायजा लिया गया है। जिसको हम भूमंडलीकरण या बाजारवाद कहते हैं, उसके चलते गावों में रहनेवालों की जिंदगी पर क्या प्रभाव पड़ा है। रिश्तें बदलें है,इन्सान बदला है। 2 उपन्यास का प्रमुख पात्र रघुनाथ की व्यवस्थित और सफल जिंदगी चल रही थी। सबकुछ उनकी इच्छा और सपनों के मुताबिक ही था। किन्तु ऐसा यथार्थ जिसमें महत्वाकांक्षा,आक्रमकता और हिंसा आदि ने मनुष्यता की तमाम् आत्मीय और कोमल चीजे टूटने,बिखरने और बरबाद होने लगती है। प्रेमचंद के गोदान में होरी और काशीनाथ सिहं के रेहन पर रग्घू में रघुनाथ दोनों में अंतर मिलता है। होरी जो एक गाय पालने की इच्छा के लिए कर्ज लेता है। और काश्तकार से मजदूर हो जाता है। किन्तु रघुनाथ शिक्षित और सुविधाभोगी व्यक्ति है। रघुनाथ किसान होने के साथ साथ पड़ोस के कस्बे के कॉलेज में अध्यापक है। उनके परिवार में पत्नी शीला,बेटी सरला तथा दो बेटे संजय और धनंजय है। रघुनाथ इस उपन्यास के नायक और भारतीय किसान संस्कृति के प्रतिनिधि चरित्र है। बेटी सरला पढ़ लिखकर मिर्जापुर में नोकरी करती है। बड़ा बेटा संजय कंप्यूटर इंजिनिअर है,जो सोनल के साथ शादी करके अमेरिका चला जाता है। तथा छोटा बेटा धनंजय नोएडा से एम.बी.ए कर रहा है। भूमंडलीकरण और बाजारवाद के प्रभाव के कारण आज गांवों में भी काफी परिवर्तन हो रहें हैं। आम्बेडकर गाँव हो जाने के बाद पहाडपुर तेजी से बदल रहा है। गाँव में बिजली आ गई थी,केबुल की लाइने बिछ गई थी,अख़बार लेकर हाकर आने लगे थे। छोरे पर खडंजा बिछा दिया गया था। खपरेलों के कुछ ही मकान रह गए थे,बाकी सब पक्के थे। जो पक्के नहीं थे,उनके आगे ईटें गिरी नजर आती थी। 3 मतलब गाँव के भौगोलिक और औदयोगिक सुविधाओं में परिवर्तन आ रहा है। साथ ही मानवीय मूल्यों में भी यह परिवर्तन स्पष्ट दिखाई दे रहा है। आधुनिकता की चाह में हमसे अपनी ज़मीन भी छुट गई,सम्बन्ध छुट गए,गाँव छुट गया,परम्परा एवं संस्कृति सबकुछ छुट गया है। काशीनाथ सिहंजी ने इन तमाम विसंगतियों की अभिव्यक्ति अपनी रचनाओं में की है।

भारतीय संस्कृति में मानवीय रिश्तों और मूल्यों का बहुत महत्व है। किन्तु इस भूमंडलीकरण के प्रभाव के कारण रिश्तों और मूल्यों में काफी दरारें पड़ी हैं। जिसके कारण मनुष्य अकेला और असहाय जिंदगी जीने के लिए मजबूर हो रहा है। रघुनाथ अपनी पत्नी से कहते है कि, मेरी औरत बाँज है और मैं निसन्तान पिता हूँ। माँ और पिता होने का सुख नहीं जाना हमनें, न बेटे की शादी देखी,न बेटी की, न बहु देखी न होनेवाला दामाद। हम ऐसे अभागे माँ बाप है,जिसे उनका बेटा अपने विवाह की सूचना देता है और बेटी धौंस देती है,कि इजाजत नहीं दोगे,तो न्योता नहीं दूंगी। 4 बड़ा बेटा संजय जब अपने पिता से जमींन बेंचकर बटवारा करने की बात करता है। तो रघुनाथ कहते है, यह पाप मैं अपने हाथों नहीं करूँगा इसलिए की पुरखों की जमींन है,उनकी धरोहर है, दुसरे की चीज बेचने का मुझे हक़ नहीं। 5 महानगरों के चकाचौंध ने मानव मूल्यों की परिभाषा को पूरी तरह बदल दिया है। हमारे समाज में व्यक्ति के भौतिक सुख और सम्बन्धों में दिन प्रतिदिन यह परिवर्तन स्पष्ट दिखाई देता है। आज भावना और संवेदना की जगह लाभ और स्वार्थ ने ली है। लाभ और स्वार्थ के लिए आज सभी मानवीय मूल्य बेमाने हो गए है। इसका ज्वलंत उदहारण इस उपन्यास में मिल जाता है। जब संजय और सोनल का तलाक़ होता है,तो सोनल रघुनाथ को कहती है, भई आप तभी तक मेरे ससुर थे,जब तक आप का बेटा मेरा पति था। जब वह पति नहीं, तो आप ससुर कैसे,किस बात के। यह कोई सराय या धर्मशाला है की पड़े-पड़े रोटी तोड़ रहें है मुफ्त

की,चलिये यहाँ से अपना रास्ता नापिये। 6 भारतीय समाज में मूल्यों का इतना पतन तीव्र गति से हो रहा है,जिसके कारण कई सवाल पैदा हो रहें है। बदलते हुए जीवन मूल्यों को अमेरिका के समाज की पृष्ठभूमि में देखा जा सकता है। अमेरिका में बसने की योजना बना रहा संजय अपनी पत्नी सोनल से कहता है कि,'मैं तो डियर,परदेस को ही अपना देस बनाने की सोच रहा हूँ। तुम क्यों नहीं ढूँढ लेती एक बॉयफ्रेंड।' रघुनाथ जिसने अपने खून पसीने से एक एक ईंट को जोड़ा था, अपने परिवार के रिश्तों को मजबूत बनाने की कोशिष की थी,आज सबकुछ बिखर गया है। भौतिक सुख और सुविधा के कारण समाज में अपनापन और प्यार नष्ट हो रहा है। इतना ही नहीं बल्कि व्यक्ति अपने सगे माता-पिता को भी विकास के रास्ते में रोड़ा मानने लगे है। यह आज के समाज की सबसे बड़ी समस्या है। यहाँ पर खून के रिश्तों में इतना टूटापन और दरार पड़ी हो वहाँ अन्य रिश्ते और मूल्यों की कल्पना कैसे की जा सकती है। प्रत्येक माता-पिता अपनी संतान की अच्छाई के लिए सोचते है। मगर व्यक्ति की महत्वकांक्षी इतनी बढ़ गई है,जिसके आगे कुछ देखा ही नहीं जाता। ला औफ ग्रेपिटीशन का नियम केवल पेड़ों और फलों पर नहीं लागु होता,मनुष्यों और उसके सम्बन्धों पर भी लागू होता है। आज का व्यक्ति सुविधाभोगी हो गया है,जहाँ उचित हो परम्परा और आधुनिकता को भूमंडलीकरण की शर्तो पर ग्रहण करने को तयार है।

भारत कृषिप्रधान देश है,यहाँ पर पारम्परिक रूप से खेती होती थी। परन्तु आज आधुनिकता के दौर में मशीनों का ज्यादा उपयोग किया जा रहा है। बैल की जगह पर आज ट्रक्टर ने ली है । सबको यह लगने लगा है कि बैल सिरदर्द और बोज है,फालतू है। दुआर गन्दा करते है। इसलिए खेती से बैलों को हटाया जा रहा है। उनके गोबर किसी काम के नहीं है,उससे उपजाऊ तो यूरिया है। आजकल की युवा पीढ़ी केवल आराम फरस्ती के चलते कम समय में ही अमीर बनने की महत्वकांक्षा पालने में लगी है। पैसे की लालसा में मानवीय सम्बन्ध टूट गये है। जितना इस जमींन की कीमत है,उतनी तो आज एक महीने की तनख्वा मिलने लगी है। इसलिए जमींन में अपनी ताकद और श्रम करना व्यर्थ माना जा रहा है। लेकिन हम यह भूलते जा रहें है कि,जमींन उपजाऊ होती है,जिसके कारण हमारी भूख मिटती है। पैसे या डालर से कभी भूख मिटती सुनी है किसी ने। युवा वर्गे की मानसिकता ने अनेक सवाल हमारे समने रखे है जैसे आपने खेती करके क्या किया। आपने कौन सा तीर मार लिया है। खाद महंगी,बीज महंगा,नहर में पानी नहीं,मौसम का भरोसा नहीं,बैल नहीं रहें,भाड़े पर ट्रक्टर समय पर मिले न मिले,हलवाहे और मजूर रहे नहीं,किसके भरोसे खेती की जा सकती है। और खेती भी तभी की जा सकती ह,जब बाहर से चार पैसे आए। क्या फायदा ऐसे खेती से। आज गाँव में सामूहिकता नष्ट किस तरह हो रही है। इसको उपन्यासकारों ने चित्रित किया है। रघुनाथ कहते है कि, लेकिन जब समाज था,परिवार थे,रिश्ते नाते थे,जब भावना यह थी तो उसे पूरी कर देती थी। लोक लाज की यदि ऐसा करोगे तो लोग क्या कहेंगे। निश्चित रूप से आज गाँव में परिवर्तन आया है। गाँव में भी शहर की बुराईया पहुँच गई है। पहले गाँव में कोई व्यक्ति गलत कार्य करता था तो पूरा गाँव उसका विरोध करता था। किन्तु आज के गाँव की स्थिति वैसी नहीं रही। इसका सशक्त चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में किया है।

निष्कर्ष:-

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि,रेहन पर रग्घू बीते दो दशकों के यथार्थ का सशक्त उपन्यास है। जो काशीनाथ सिहं और उपन्यास दोनों को एक नई गरिमा प्रदान करता है। प्रस्तुत उपन्यास किसान जीवन की अस्मिता और सम्पूर्ण चुनौतियों को उजागर करता है। रचनाकार ने प्रस्तुत उपन्यास में किसान जीवन की समस्याओं के साथ बदलते जीवन मूल्यों को यथार्थ ढंग से अभिव्यक्त किया है। सामंतवादी और पूंजीवादी संस्कृति के आपसी टकराहट में किसान संस्कृति पीस रही है। वर्तमान स्थिति में प्रेमचंद के किसान लाखों की संख्या में

आत्महत्याएं कर रहें हैं। आधुनिकता के दौर में गावों में हो रहें परिवर्तन को लेखक ने पहाडपुर के माध्यम से दिखाने का सफल प्रयास किया हैं। भूमंडलीकरण और बाजारवाद के कारण गांवों में हो रहें परिवर्तन केवल भौगोलिक स्तर पर ही नहीं,बल्कि सामाजिक और जीवन मूल्यों में भी यह परिवर्तन स्पष्ट दिखाई दे रहें है। रेहन पर रग्घू एक पुकार है,जो उन सहृदय मनुष्यों की जो अकेलेपन का दंश सहन कर रहें हैं। रघुनाथ आज भी रेहन पर है,वह इस उम्मीद में है की काश कोई उसे छुड़ा लेगा। रेहन पर रखी उन्ही चीजों को छुड़ाया जाता है। जो आपके लिए महत्वपूर्ण होती है। अब देखना यह है कि रग्घूनाथ महत्वपूर्ण है या नहीं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचि :-

1. रेहन पर रग्घू,काशीनाथ सिंह,पृ.सं.07
2. बदलते हुए यथार्थ की कहानी,नामवर सिंह, पृ.सं.27
3. रेहन पर रग्घू,काशीनाथ सिंह,पृ.सं.61
4. समकालीन हिंदी साहित्य विविध विमर्श,डॉ.भगवान गव्हाड़े,डॉ.हेमंत सोनाले,पृ.सं.71
5. वही,वही पृ.सं.69
6. वही,वही पृ.सं.71

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

भारतीय समाज में बालविवाह एक सामाजिक अभिशाप

डॉ. माधव माणिकराव मोरे

सहा. प्राध्यापक तथा समाजशास्त्र विभाग प्रमुख
नारायणराव वाघमारे महाविद्यालय, आखाडा बाळापूर जि. हिंगोली

बालविवाह के लिए उत्तरदायी समाज मे इन्कारनो का प्रतिकार करते हुए जब तक समाज मे प्रचार- प्रसार नही किया जायेगा, केवल कानून के डंडे से इसको प्रथा पर प्रभावी नियंत्रण लगाना कठीण ही है। प्रश्न उत्तर हे की, जब परिवार नियोजन, प्रौढ शिक्षा, प्राथमिक शिक्षा, उपभोक्ता आंदोलन का इतना प्रचार-प्रसार सरकारी स्तर पर किया जा सकता है। तो कही सामाजिक इस कुप्रथा के संबंध में ऐसा क्यू नही किया जा सकता है। इसका अर्थ बिलकुल नही है, कि कानून अपना काम करना बंद कर दे। लेकिन उसे भी अधिक आवश्यकता जागरूकता बढाने व रुढियों तथा कारनो पर प्रहार करने की है। इसके लिए आर्थिक व गैर आर्थिक प्रोत्साहन, दूरदर्शन व आकाशवाणी जैसे प्रसार माध्यमो की सहायता, नुकड नाटक, कानून की जानकारी, साहित्यिका वितरण, बालश्रमिको पर लगाये प्रतिबंधो का कडा पालन, सामाजिक सुरक्षा उपयोग, प्रशासकीय मशिनरी और उत्तरदायित्यपूर्व मसुदी की है। जरुरत इस मानसिकता को बदलली की है, की साल कुछ नही किया जाये व आखातीज पर पुरी शक्ती प्रचार व इमेज बढीया बनाने के लिए कुछ दिखावा कर दिया जाये। इस बुराई को वासतो मे ही अधिक जड मुलसे समाप्त करना है तो समस्त कानून सरकार व प्रचार देशी स्तोरो पर इसके मुकाबले के लिए निरंतर व प्रभावी कार्यवाही करणे की जरुरत है। दोषी को दंडित करने के साथ ही ऐसे प्रयत्न करने की आवश्यकता है। जिसे दोष ही न हो इसके लिए सामाजिक परिवेश ग्रामीणो की मजबूरिया व आर्थिक स्थिती को समझने की जरुरत है जिसे दिखावे की अलावा कुछ सार्थक किया जा सके।

बालविवाह कानून के अंतर्गत लडकी लडकियों की गुणोत्तम आयु निर्धारित की गयी है। युनिसेफ के मुताबिक, “किसी लडकी या लडकी की शादी 18 साल की उमर से पहले होना बालविवाह है। भारत मे बालविवाह निषेध अधिनियम 2000 के मुताबिक शादी के लिए लडकी की उमर 18 साल और लडकी की उमर के साथ होनी चाहिये, अगर इसे कम उम्र मे लडके और लडकी की शादी कराई जाती है, तो उसके लिए कानून मे सजा का प्रावधान किया गया है। हिंदू निर्धारित अधिनियम मे भी नयूनंतर आयुका प्रावधान किया गया है। इस अधिनियम के मे बालक बालिका की निर्धारित करने के लिए काही बार संशोध नोंदणी किये गये है। पश्चात बालक निर्धारित को नोंदणी 21 वर्षे की एवं बालिका निर्धारित की नोंदणी अठरा वर्ष रखी गई है। बालविवाह प्रतिशेष (संशोधन) विधेयक, 2011 को केंद्रीय महिला और बाल विकास मंत्री द्वारा 21 डिसेंबर 2021 को लोकसभा में पुन: स्थापित किया गया 2006 मे संशोधन करके इस विधेय का उद्देश बालविवाह प्रतिशेष (संशोधन) अधिनियम महिलायो की आयु को 18 वर्षे से बढांकर 21 वर्षे करना है।

बालविवाह अधिनियम के अंतर्गत शादी करने वाले बालिका एम शादी करने वाले उस बालक को जिंनकी आयु 18 वर्षे कम है। किसी प्रकार की सजा दी जाने का प्रावधान नही है। जब भी कोई बालक जिसके आयु 18 वर्षे से 21 वर्षे वर्ष के बीच की है। विवाह करता है तो, 15 दिन के साधारण कारावास, एक हजारो रुपये अर्थ दंड या दोनोंसे दंडित किया जा सकता है। और अधिक बालक की आई 21 वर्षे से अधिक है, 18 वर्षे असे कम आयु की

बालिका से विवाह करता है, तुमसे तीन महा का साधारण कारावास, किसी भी मात्रा मे अर्थ दंड दिया जा सकता है।

बालविवाह की औपचारिकता को अनुष्ठित करणे, या उसका संचारण करणे, या निर्दिष्ट करणे वाले को और भी अधिक सजा दी जाने की व्यवस्था है। ऐसे किसी भी व्यक्ति को न्यायालय तीन महा का साधारण कारावास, किसी भी मात्रा मे अर्थ दंड दे सकता है। बाल विवाह करणेवाले पक्षकारो के माता पिता येऊन संरक्षण का दायित्व भी कापी गंभीर है। जब कभी कोई 18 वर्षे से कम आयोगा बालक या बालिका किसी बालक बालविवाह की संविधा करते है। तो ऐसे आवश्यक की माता पिता या सर्वेक्षक या ऐसे व्यक्तित्व आणि किसी विवाह सुकृती देते है। उसे अनुष्टपित करणे के लिये कोई कार्य करते है। याविषयी रोकने की रोकने मे अपेक्षा करते है। तो उन्हे तीन महा तक के कारावास, किसी भी मात्रा मे अर्थ धन दिये जाने का प्रावधान किया गया है। परंतु हीच कार्य के लिए जब भी किसी औरत को दोष सिद्ध किया जाता है। तो उसे कारावास, दंड नही किया जायेगा, उसे केवल अर्थ दंड दिया जा सकता है।

१९७८ मे ऐसे अपराध को अन्वेषण के योग्य अपराध बनाया गया था। इससे पूर्व तक बालविवाह अधिनियम के किसी अपराध के लिए जब भी पोलीस कारवाई चाहती तो, उसे इसके लिए माझीस्ट्रेट की स्वीकृती लेणी पडती थी। जब कि पोलीस तुरंत कारवाई प्रारंभ कर सकती है, परंतु वह संबंधित अभिवक्त को वॉरंट के बिना या नाही माझी स्टेट माझीस्ट्रेट की आदेश के बिना गिरफ्तार नही कर सकती है¼ इस अधिनियम के अंतर्गत आनेवाले है अपराध का प्रकरण माझीस्ट्रेट प्रथमवर्ग या मेट्रोपॉलिटीचे मेट्रोपोलिटी आणि रजिस्टर माझीस्ट्रेट के न्यायालय मे ही चल सकता है।

बालविवाह संपन्न होने से पूर्वही रोक देने के उद्देश से न्यायालय द्वारा निषेध आज्ञा दे जाने का बंद भी इस अधिनियम मे किया गया है। ऐसे मामलो का परिवार प्रस्तुत होणे होते है। पर न्यायालय दुसरे पक्ष को सूचना को सुनकर न्यायालय उचित समजतो बालविवाह करने वाले वयस्कर संबंध संचालित निर्देशित करने वाले पक्षकारो के विरुद्ध निषेध आज्ञा जारी करेंगा, ऐसे निश्चित की जानकारी होने के बाद यादी कोई व्यक्ति उस अभिषेक अज्ञान की अवज्ञा करता है, तो उसे एक महा का साधारण कारावास, या एक हजार रुपये का अर्थ दंड या दोनो चे दंडीत किया जा सकता है।

भारतीय संस्कृती परंपरानुसार बालिका व नारी की संबंधी शुद्धता को बहुत महत्व दिया गया है। यही कारणही की लडकी के रजस्वला होने से पूर्वही विवाह कर दिये जाने को आम माता-पिता अपना नैतिक व धार्मिक दायित्व मानता है। ये समय होता है जिसके बाद ही उनकी शारीरिक बनावट मे परिवर्तन व विकास प्रारंभ होता है। यही कारण आहे की तथा शिक्षित, समजदार व विकसित समाज मे भी लडकी की शादी अधिकांश मामलो मे 18 साल से पहले ही करने की कोशिश की जाती है। जब लडकी छोटी होगी तो लडका भी स्वाभाविक रूप से छोटा हुई होता है। अपने बच्चो की शादी करना माता पिता और धार्मिक ही नही, बल्की सामाजिक दायित्व माने जाने के कारण उनकी मानसिकता शीघ्रमुक्त होने की होती है। क्यूकी ग्रामीण, गरीब व पिछडें समाजो मे व्यक्ति के सामने अपने भौतिक अस्तित्व को बनाया रखने की एक बहुत बडी समस्या रही है। और मृत्यू से पूर्व हर माता-पिता को पूर्ण करके ही उपर वाली के सामने प्रस्तुत होना चाहता है।

बालविवाह का दुसरा महत्वपूर्ण कारण व्यास गरिबी है। गरीब व्यक्ती अपने बच्चो को बार-बार विवाह कर आर्थिक भार को वहन करने मे नही होता है। इसलिये वो अपने अधिक से अधिक बच्चो का विवाह एक ही साथ

करना चाहता है। यही कारण हे की अधिकतर बाल विवाह सामील ग्रुप मे किये जाते है। उस समूह मे चाहू- ताऊ बहीण दुसरे सुधारो के बीच भी होते है। इस सामूहिक बालविवाह का समारोह एक ही होता है। यही कारण हे की ग्रामीण मे भी व्यापारी बडे कृषीको व सावकारो जिंनकी आर्थिक स्थिती तुलनात्मक रूप से अच्छी होती है। अर्थात जो अलग अलग शादी करने क्या भार वर भर सकते है, कि यहा बालविवाह इतनी छोटी उमर मे नही होते है । ऐसे परिवार का शैक्षणिक स्तर सामान्य सोच व सामाजिक स्तर कुछ उच्छा होता है। भारतीय समाज मे विवाह के अवसर पर समाज के लिए प्रतिभोज का आयोजन नही करने, अंगतको को भेट आधी नही देंगे- देने की कल्पना नही किया सकती । इसलिये हे दातो को हलका करने का उपाय केवल बच्चो का सामूहिक विवाह करना ही रह जाता है।

ग्रामीण क्षेत्रो के बारेमे केवल कहवत नही बल्की हकीकत है। की कहा अधिकांश परिवार जितने खाते हे उतनेही कमाते है, सरकार बालश्रमी को प्रतिबंधित करने के कितने ही कानून बनाये या घोषणा करे, लेकिन ग्रामीण परिवारा मे भी अभी भी उनको महत्वपूर्ण स्थान मिला हुआ है। कृषी पशुपालन व गृहकार्य मे उनका योगदान पर विपरीत प्रभाव नाही पडता है। क्यूंकि विवाह के बाद भी लडकी मुकलाबा होने तक अपने पिता के या नही रहती है, और पारिवारिक बजेट मे अपना योगदान बनाये रखती है। लडकी की विवाह के बाद भी उसका व परिवार का महत्वपूर्ण रूप मे नही पडता है। वास्तविक तो यह कि विवाह किसी रूप मे विशेष घटना नही बन पाता है। विवाह की एक प्रकार दायितो मुक्ती बिना लागत की जाती है। इसलिये विवाह नफा का सौदा समजा जाता है।

इस कटू यथार्थ के संबंध मे तर्कवितरण करना बेकार है। की अभी से ग्रामीण मे जमीनदारो स्थानिक राजनीति को जाती विशेष के सरदारो व अन्य असामाजिक तत्त्व बचाये रखना मुश्किल बना हुआ है। ।इस कारण से भी सामान्य व्यक्ती अपनी लडकी की शादी समय पूर्व करणे को मजबूर हो जाता है किन कि उसकी निगराणी के लिए परिवार का कोई भी बडा व्यक्ती कमाई के चक्कर मे घर पर नही पाता है। विशेष रूप से कृषी मजदूरू हे, परिवार मे हे समस्या अधिक गंभीर ,है दुसरी और सामाजिक यथार्थ यह है, कि एक बार किसी लडकी की इज्जत से जाने के बाद उसकी शादी होना तो बहुत दूर की बात है। उसका परिवार का रहना तक मुश्किल हो जाता है। इसलिये ऐसे मजबूर परिवार दो बुरा यु शिग्रही विवाह विवाह विवाह के बुराई बुराई को ही अपना आते है।

इन कारणो के अलावा सामाजिक कुरीतीओ, अशिक्षा, अस्वस्थ, परंपरा, सामाजिक सुरक्षा व सुविधा हो का अभाव जैसे कारणो के प्रभाव को भी कम नही माना जा सकता है। अभी तक भी बडे परिवार की महकता एक से अधिक पुत्रो की प्राप्ति व विवाह की अनिवारता जैसे सामाजिक बंधन असे मुक्त नही हो सकते है। सामान्यता प्रत्येक पिता छोटीशी छोटी उम्र मे बडे से बडा पुत्र प्राप्त कर लेना चाहता है। इससे उसकी व्यापार या अन्यकार्य मे उसका हात बटाने वाला मिल सके। इसी मानसिकता की कारण व पुत्र के 21 वर्ष की आयु प्राप्त करणे तक का इंतजार नही करना चाहता है। पुत्र को बुडापे का सहारा माना जाता है, और दिन हिन परिवारो मे बुडापा आर्थिक तंगी मानसिक वेदना अत्याधिक शारीरिक क्षय व सामाजिक उपेक्षा के कारण आता भी है।

जिस व्यक्ति का बालविवाह करवाया जा रहा है। उसका कोई रिश्तेदार, दोस्त या जानकर बालविवाह के बारे मे थाने जाकर पूरी जानकारी दे सकता है। इस पर पुलिस पुस्तक करके माझीस्ट्रेट के पास रिपोर्ट भेजेगी। माझीस्ट्रेट के कोर्ट मे के चलेगा, और बालविवाह सावीत होने पर अपराधी व्यक्ती को सजा दी जायेगी। एक बालविवाह करणे या करवाने वाले को तीन महिने तक की कैद या दो एक हजार रुपये तक का जुर्माना दो ही हो सकते है। हा समय रहते शिकायत करणे या रिश्तेदार, दोस्त द्वारा माझीस्ट्रेट के पास दर्ज करने पर, आदेश मिलने पर पोलीस केस दर्जा किया किया जायेगा।

विश्व की जनगणना 2001 के अनुसार विश्व के कुलचंद्र जनसंख्या लगबग ६.५ बिलियन मे से लगभग आधी जनसंख्या महिलाओं की है। अर्थात प्रारंभ से ही विश्व समाज का एक अभिनय अंग है। अदिकाल ही समाज मे महिलाओं का महत्वपूर्ण स्थान आहे। किसी भी र विकसित समाज के निर्माण, विकास मे स्त्री पुरुष दोन्ही परस्पर सहभागीता व साजदारी अत्यंत आवश्यक है। स्त्री -पुरुष की समाज रुपी गाडी के दो पै यों समान माना जाता है। अंततः समाज के विकास निर्माण के लिए स्त्री पुरुष की सहभागीता अनिवार्य होती है। विकास के साथ साथ नैसर्गिक सिद्धांत की पालना तथा पर्यावरण संतुलन के लिए नितांत आवश्यक है। महिलाओ के अधिकारो मे कमी मानव सभ्यता की विकास के साथ होती गई हैं। और समय के साथ साथ महिलाओं का आर्थिक, शैक्षणिक पिछडें पण रहा है। आधुनिक समाज अर्थबद का दास बन गया है। या संपत्ती संग्रह से अधिक महत्त्व दिया जाता है। पुंजीवात से सत्तावाद तथा सत्तावाद संपत्ती विलासितावाद भोगवाद की वर बढ रहा है। नैतिक आदेशात्मक मूल्य आदर्शत्मक मूल्य का इस वर्तमान समाज मे कोई स्थान नही है। इस अर्थ युग प्राणी का नाम हे महिला इस अर्थ युगीन प्राणी का नाम है। महिलाओ के अधिकारो को के अनानो के विघ्न तरीके है। जिसमे महिलाओ के साथ साथ मासूम और अबोध बालिका पुरुष द्वारा शिकार है।

संदर्भ :

1. बालविवाह निषेध अधिनियम, 2006 के मुताबिक
2. विकिपीडिया
3. बालविवाह एक अभिशाप- डॉ. सुधीर सिंह
4. बालविवाह सामाजिक एवं न्यायिक परिप्रेक्ष में -डॉ. कुसुम भट्ट
5. बालविवाह की भयंकरता से समाज को बचाया जाये- श्रीराम शर्मा आचार्य
6. बालविवाह उनमुलन प्रशासन मीडिया एवंम स्वयंसेवी संघटनों की भूमिका -डॉ. तुलसीराम नागर

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

केदारनाथ सिंह की कविता में 'पर्यावरण' संवेदना

डॉ. मनोहर जमधाडे

सहा. प्राध्यापक, हिंदी विभाग
राजर्षी शाहु कला व विज्ञान महाविद्यालय, वाळूज
ता. गंगापूर जि. छत्रपती संभाजीनगर

सारांश :

केदारनाथ सिंह जी वे अपनी कविताओं द्वारा देहात से जुडते हैं। लोक से जुडते हैं। उनकी सभी कविताओं में मानव जीवन का और प्रकृति-पृथ्वी उसकी इकाइयों का उल्लेख आया है। प्रकृति और मनुष्य के अटूट रिश्ते बखूबी स्पष्ट करते हैं। उन्होंने कविताओं मे विविध प्रदूषणों, उनका मानव जीवन हुआ परिणाम आदि का सूक्ष्म अंगन किया है। अकाल, धार्मिक कर्मकांड से होणे वाले नही प्रदूषण, पक्षी के नाम फूलादि के नामों भूल जाने की बात करते हैं। मनुष्य प्रकृति ऱ्हास कर रहा है। इन बातों को केदारनाथ सिंह ने कविताओं द्वारा अभिव्यंजित किया है।

केदारनाथ सिंह हिंदी के प्रतिभा संपन्न कवि है। वह तीसरा सप्तक के कवि है। वे कोमल, संवेदनशील तथ एकान्त प्रिय कवि है। उनके व्यक्तित्व एवम् वैचारिकता के अनुसार उनकी कविताएँ एक नया रूप धारण किए हुई है। समकालीन कवियों में उनका स्थान महत्वपूर्ण रहा है। सामाजिक यथार्थ तथा मानविय संवेदना आदि को उन्होंने अपने कविताओं का विषय बनाया है। डॉ. पद्मा पाटील जी लिखती है। कविताएँ समकालिन यथार्थ का चित्रण करती है उनमें केवल घोर यौवनस्था का नग्न चित्रण नहीं किया गया है। सच है कि उन्होंने कुछ प्रेम कविताएँ लिखी है पर संयम का स्वर उन कविताओं के द्वारा भी सामाजिक सरोकार दृष्टिगोचर होता है। [1] केदारनाथ सिंह की कविताओं पर्यावरण संचेतना की अभिव्यक्त हुई है। केदारजी की कविताओं में प्रकृती और मुख्यत: ग्राम प्रकृति अपने विविध रूपों में चित्रित हुई है। नदी, नाले, फूल, जंगल, तट, धूप, सरसों के खेत, धानों के बच्चे, वन सांध्यतारा, बसंत, फागुनी हवा, पकडी के पात, कोमले की कूक, पुरवा, पहुआ हवा, शरद प्रात, हेमंती रात, चिडिया, घास, फुगनी आदि बहुरुपी प्रकृति संसार केदार की कविता में रूपायित मिलेगा। [2]

कवि केदारनाथ सिंह के कविता संग्रह इस प्रकार है- अभी बिलकुल अभी (1960), जमीन पड रही है (1980) यहाँ से देखो (1983), अजाल मे सारस 1988, प्रतिनिधी कविताएँ (1986) उत्तर कथीत रचनाएँ (1990) आदि।

"काली नदीयाँ काला धन। सूख रहे है।
सारे बन काला सूरज काले हाथ झुके
हुए है सार माथ।"[3]

कवि केदारजी ने 'काली मिट्टी' कविता नदी प्रदूषण सूख रहे बन का सशक्त चित्रण किया है। औद्योगिक कल कारखानों से नदियाँ का प्रदूषित पानी से बन सूखने लगे है। मनुष्यद्वारा नदियों प्रदूषण होने लगा है। नदियाँ प्रदूषित होने के कारण काला धन हो गया है। वातावरण में प्रदूषण बढ़ने पर्यावरण में बदलाव आने लगा है। कवि को प्रदूषण से मुनष्य के माथ झुके हुए लगते हैं। इसलिए प्रदूषण को रोकना जरूरी हो गया है। तात्पर्य यह है, नदियाँ का शुद्ध धन काला धन बन गया है। मनुष्य एवं पर्यावरण के लिए भी गंभीर होने लगी हैं। यह मनुष्य के लिए चिंता की बात है।

"फिर एक दिन। बहुत दिन बाद। मैंने सुबह
-सुबह। जब खिडकी खोली तो देखा।
तट उसी तरह पडे है। और नदी गायब।"[4]

'एक और अकाल' कविता में नदी के घटते जा रहे पानी के प्रति कवि चिंता व्यक्त की है। पर्यावरण अतुतलन ऱ्हास से वर्षा में कमी आने लगी है। नदियों कें पानी कम होने लगा है। धरती का तापमान बढने लगा है। जिसके कारण नदियों का जल तीव्र गति से घट रहा है। शहरों की जनसंख्या तीव्र गति से बढने लगी है। परिणामत: नदियों का जल घटने लगा है। बारह मास बहने वाली नदियाँ का जल घट गया है। नदी के कम हो रहे जल के प्रति मनुष्य को सचेत करते हैं। पर्यावरण संतुलन नदियों के सुरक्षा की बात करते हैं।

"पानी को खोजते। दूर देसावर से आये थे वे।
पानी को खोजते। दूर देसावर तक जाना था उन्हें।"[5]

कवि ने, 'अकाल और सारस' कविता में सारस पंछी के माध्यम से पानी के (अकाल) कमी का सूक्ष्म अंकन किया है। सूखे के कारण जिस तरह मनुष्य पानी की एक एक बूद के लिए तरस रहा है। उसी प्रकार पंछी सारस भी पानी को खोजते एक गाँव से दुसरे गाँव भ्रमण करते है, लेकिन उनको प्रयास पानी कहीं पर भी नहीं दिखाई देता है। [6] इस प्रकार पर्यावर समतोल रखना पंछियो एवं मनुष्य के लिए महत्वपूर्ण है । पानी जीवन है । पानी का महत्व समझकर चलने की आवश्यकता है ।

"भयानक सूखा है। पक्षी छोड़कर चले गये है।
पेड़ों को । बिलों को छोड़कर चले गए है चीटे।
चीटियाँ। देहरी चौखट। पता नहीं कहाँ बिघर
चले गये है। घरों को छोड़कर। [7]

मनुष्य के साथ-साथ पंछियों को भी अपने घोसलों को छोड़कर जाना पड़ रहा है। पानी की समस्या किस तरह से मनुष्य के साथ-साथ मानवेतर पंछियों को अपने घोसले या घर छोड़ने के लिए मजबूत कर देती हैं, इसका कविने यथार्थ अंकन किया है।

"अब कुछ नहीं था। सिर्फ हम लौट रहे थे।
इसने सारे लोग सिर झुकार हुए। चुपचाप
लौट रहे थे। उस नदी को सौपकर। और नदी
अँधेरे में भी। लग रही थी पहले से ज्यादा
उदार और परम्पार। उसके लिए बहना उतना ही
सरल था। उतना हीं साँवला और परेशान था
उसका पानी।"[8]

कवि नदियों के पास धार्मिक कर्मकांड से होने वाले प्रदूषण की समस्या को चित्रित किया है। नदियों के पास अंत्यविधि की जाती है। जली हुई मनुष्य की लाशें भी नदियों में जा रही है। जिसके कारण नदियों को जल प्रदूषित होता है। कवि ने हमारे समाज के हाथों हो रहे नदियों के पास अंत्यविधी की समस्या से निर्मित हो गई नदी प्रदूषण की और हमारा ध्यान खींचा है।

"क्या नाम हैं उसका। खंजन टिटिहरी, नीलकंठ।
मुझे कुछ भी याद नहीं। मैं कितनी आसनी से
भूलता जा रहा हूँ। पक्षियों के नाम मुझे सोच
कर डर लगा।"[9]

कवि ने पक्षियों के माध्यम से मनुष्य के विस्मृति बोध होने की चिंता को अभिव्यक्त किया है। शहरीकरण ने वे वृक्षों की कटाई हो गई हैं। प्रदूषण बढ़ने लगा है। वृक्ष कम होने से पक्षियों का बसेरा कम हो गया है। घरों के पास पेड़ बचे ही नहीं है। पक्षी भी पेड़ न होने से कम आने लगे है। मनुष्य अपनी स्मृति में पक्षियों नाम भूलता जा रहा है। पंछी या पक्षी एखाद बाद दिखते हैं । तो मनुष्य इन पंछियो के नाम ठीक तरह से बता नहीं पा रहा है । मनुष्य विस्मृति खो रहा है । व्यस्त जीवन में । पर्यावरण से जुड़ना मनुष्य के लिए महत्त्वपूर्ण हो गया है।

"और बसन्त फिर आ रहा है।
शकुन्तल का एक पन्ना। मेरी
आलमारी से निकलकर हवा में
फरफरा रहा है।"[10]

बसन्त शीर्षक कविता में कवि का वसंन्त ऋतु के प्रति प्रेम, लगाव दृष्टिगत होता हैं। बसन्त ऋतु के आगमन से वह तरोताजा महसूस करते हैं। बसन्त ऋतु उनके मन में नई किरण लाता है। "बसन्त के आने से उनका मन आशा से जागृत होता है और वे दृढ़ अस्वीकृति प्रस्तुत करने की सोचते है। यहाँ भी 'प्रकृति ही उनके सोचने के ढंग बदलने के लिए उत्तरदायी है।"[11] स्पष्ट है कि केदारनाथ सिंह को प्रकृति से लगाव है। वे इस नाते को सुरक्षित तथा संजोकर रखना चाहते है। प्रकृति और अलस्य के मनुष्य के बीच संबंध और अधिक गहरा बनाना चाहते हैं। वे हर तरह से प्रकृति की सुरक्षा की बात कविता में उठातें हैं।

निष्कर्ष :

कवि केदारनाथ सिंह नई कविता के कवि के रूप में परिचित हैं। परंतु उनकी कविता का स्वर और प्रगल्भ होता गया। वे अपनी कविताओं द्वारा देहात से जुडते हैं। लोक से जुडते है। उनकी सभी कविताओं में मानव जीवन का और प्रकृति-पृथ्वी-उसकी इकाइयों का उल्लेख आया है। प्रकृति और मनुष्य के अटूट रिश्ते को बखूबी स्पष्ट करते हैं। नौवें दशक की उनकी कविताओं में विभिन्न तरह के प्रदूषणों, उसका मानव जीवन पर हुआ परिणाम आदि का अंकन देखने को मिलता है। वे अपनी समसामयिक स्थितियों से बहुत जुड जाते हैं। इसका प्रमाण उनकी हर कविता द्वारा होता है। 1984 ई. में हुई इंदिरा गांधी जी की हत्या, भोपाल गैस दुर्घटना, धार्मिक कर्मकांडों से नदी में होनेवाले प्रदूषण, लेबनान का वर्णसंघर्ष अकाल आदि अनेक घटनाओं ने उनकी कविताओं में जगह पायी है। अर्थात इससे स्पष्ट है कि वे आज की पर्यावरण जैसी भयानक समस्या से भी परिचित हैं। अपनी कविताओं द्वारा वे प्राकृतिक इकाइयाँ- पक्षी, पेड़, पौधे, फूलादि के नामों के भूल जाने की बात करते हैं। सच ही है कि वर्तमान काल की बहुत व्यस्त जिंदगी में इन इकाइयों के नाम भी मनुष्य भूलता जा रहा है।

वह स्वयं प्रकृति की उपज है, परंतु वही अपने निर्माण कर्ती प्रकृति को खत्म करता जा रहा है। केदारनाथ सिंह इन बातों को कविताओं द्वारा अभिव्यंजित करते हैं।

संदर्भ ग्रंथ :

1. डॉ. पद्मा पाटिल, यहाँ से देखो अध्ययन, सन्मित्र प्रकाशन, रविवार पेठ, कोल्हापूर, प्र. सं. 1985, पृ. 21.
2. दस्तावेज, भोतिया हवा, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश, अक्तूंबर – 1982, पृ. 40.
3. केदारनाथ सिंह, अकाल में सारस, प्र. सं. 1983, राजकमल प्रकाशन, प्रा. लि. नई दिल्ली, पृ. 95.
4. वही, वही, पृ. 73.
5. वही, पृ. 29.
6. डॉ. मनोहर जमधाडे, नौवें दशक की कविता में पर्यावरण संचेतना, पीएच.डी. शोध प्रबंध, डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर मराठवाडा विद्यापीठ, औरंगाबाद, 2007, पृ. 181.
7. केदारनाथ सिंह, अकाल में सारस, प्र. सं. 1983, राजकमल प्रकाशन, प्रा. लि. नई दिल्ली, पृ. 20.
8. वही, वही, पृ. 45.
9. केदारनाथ सिंह, यहाँ से देखो, प्र. सं. 1983, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रा. लि. नई दिल्ली, पृ. 41.
10. वही, वही, पृ. 22.
11. डॉ. पद्मा पाटिल, यहाँ से देखो अध्ययन, सन्मित्र प्रकाशन, रविवार पेठ, कोल्हापूर, प्र. सं. 1985, पृ. 26.

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

समकालीन हिंदी उपन्यास साहित्य में कृषक जीवन

प्रा. सुनील सोपानराव शिंदे
यशवंतराव चव्हाण महाविद्यालय
अंबाजोगाई, जिला- बीड

प्रस्तावना :-

भारत देश की पहचान एक कृषिप्रधान राष्ट्र के रूप में रही है । भारत में लगभग 60-70 प्रतिशत आबादी गाव में निकास करती है । आज यह आकडा कम या अधिक हो सकता है, कृषी कार्य पर निर्भर हमारे देश को किसानो का देश कहा जाता है। धरती और किसान का अटूट रिश्ता है, वह अपनी जमीन से सर्वाधिक लगाव रखता है ,वही उसका सब कुछ है। दरअसल कृषक समाजों के लिए कृषि कोई धंधा नहीं बल्कि उनकी जीवन शैली है। किसान के लिए खेती कोई व्यापार-व्यवसाय भी नहीं है, बल्कि यह तो उसकी रोजमर्रा की जिन्दगी का एक बड़ा हिस्सा है । मानव सभ्यता के विकास में कृषी की अमूल्य भूमिका रही है । मानव का अस्तित्व ही कृषी पर निर्भर है लेकिन आज सारी दुनिया में सबसे जादा दुर्दशा किसानो की ही है । किसान सब के लिए तो अनाज उगा रहे है और खुद भूखे मरने के लिए विवश है । किसान अपनी फसलों से इतना नहीं कमा पाते कि वो अपने परिवार के लिए ठीक - ठाक कपड़ों और शिक्षा का प्रबंध कर सकें। किसान जितना परिश्रमी और धैर्यवान कोई नहीं है। फिर भी किसान सुखी नहीं है। कभी वो भयानक अकाल की मार से मारा जाता है और कभी प्रलयकारी बाढ़ से। इन आपदाओं से ज्यादा तो किसान कर्ज के बोझ से आत्महत्या करने मजबूर होते हैं।

समकालीन साहित्य में किसान को समझने के लिए प्रेमचंद के समय में किसान आंदोलन को नही समझेंगे तब तक हम समकालीन साहित्य में किसान विमर्श को नहीं समज सकते । किसान को आज भी राजनेता साहूकार, सरकारी और प्रशासनिक व्यवस्था हर प्रकार से लुटती रही है | जिसका परिणाम यह हुआ कि सबसे गरीब तबके के किसान, मजदूर और श्रमिकों का जीवन शासन और शोषण के अनगिनत तहों के नीचे दबता-पिसता और संकुचित होता जा रहा था। जमींदार, कारिंदे, पटवारी, साहुकार इत्यादि के रूप में प्रेमचंद ने अपने कथा-साहित्य में इन्हीं तहों का बड़ा ही सूक्ष्म चित्रण किया है और बड़ी ही स्पष्टता से दिखाया है कि इनके पंजों के नीचे किस तरह किसान लगान और कभी न खत्म हो सकने वाले ऋण-भार से दबा हुआ था। इसी ऋण और ब्याज से किसान जीवन में महाजनी पूंजीवाद या महाजनी सभ्यता का प्रवेश हुआ जिसकी पूरी प्रक्रिया का वर्णन कृष्णदेव झारी ने अपने शब्दों में बड़ी स्पष्टता से किया है –''गांवों में महाजनी पूंजीवाद प्रचलित था। यह महाजनी शोषण कई प्रकार का था। गांव में जिस किसी के पास चार पैसे हुए, वही महाजन बनने लगा था। सूअर का खून मुंह लग गया था।''[1]

हिन्दी उपन्यासों में किसान जीवन पर आधारित व्यवस्थित लेखन की शुरुआत प्रेमचंद के उपन्यास 'गोदान' से होती है । 'गोदान' में लेखक ने किसानों के आर्थिक विपन्नता का वर्णन किया है। होरी जैसे कृषकों की स्थिति कितनी मर्मस्पर्शी है उसे इस रूप में देखा जा सकता है, होरी के मन में एक गाय की इच्छा थी। यह घर के द्वार पर गाय बंधी होगी तभी तो लड़के के ब्याह वालेआएंगे और लोग पूछेगे कि यह किसका घर है। गाय से वह अपने मान-सम्मान की वृद्धि करना चाहता है। संयोग सेउसे भोला की गाय उधार में। मिल भी जाती है, किन्तु उसके भाई हीरा की ईर्ष्या भड़क उठती है और वह गाय को जहर दे देता है। गाय के मर जाने से होरी के जीवन का विषाद और भी गहरा हो जाता है। इस गाय ने उसके जीवन को कई रूपों में प्रभावित किया था। इसके लिए वह कर्जदार वना, झुनिया और गोवर का मेल हुआ जिससे उसे सामाजिक दण्ड भुगतना पड़ा, भोला उसके बैल खोल ले गया और उसे किसान से मजदूर बनना पड़ा। अन्त तक वह गाय की अपनी इच्छा पूरी नहीं

कर सका और अब जीवन की अन्तिम बेला में उससे गोदान की अपेक्षा की जा रही है। धनिया आज मजदूरी में मिले पैसों को होरी के ठण्डे हाथ पर रखकर पण्डित दातादीन को देती हुई कहती है, " महाराज घर में गाय है न बछिया, न पैसा। यही पैसे हैं, यही इनका गोदान है।"[2]

कर्मभूमि उपन्यास में किसान आंदोलन जमीन की समस्या, लगान कम करने और खेतीहर मजुदूरो की समस्या पर यथार्थ रूप से वर्णन प्राप्त होता है । अमरकांत इस उपन्यास का प्रमुख पात्र है जो किसान आंदोलन का समर्थन करते हुए जेल की सजा काटता है और अमरकांत की पत्नी भी अछूतों के मंदिर प्रवेश को लेकर हुए आंदोलन में भाग लेने के कारण जेल चली जाती है| पात्रों के जीवन की विविध घटनाओं द्वारा प्रेमचंदने मूर्त रूप प्रदान किया । कर्मभूमि का सलीम कहता है -" मैं समझता था कि देहातियों के पास आनाज की बखारे रही होगी । लेकीन यहाँ तो किसी घर में अनाज के मटके तक न थे। और महाजन और अमले इन्हीं गरीबों को चुसते हैं ।"[3]

फणिश्वनाथ रेणू और उनके साहित्य की जब भी चर्चा होती है, तब गाँव उसका केंद्रीय विषय होता है। मैला आँचल भारतीय किसान जीवन की महागाथा का दुसरा अध्याय या परिवर्तन है । रेणु ने अपने बहुर्चित उपन्यास मैला आँचल में मेरीगंज नाम[3]क एक गाव को केंद्र में रखा है और उसकी कहानी लिखी है लेकिन वह भारत के लगभग छह लाख गाँवों की कहानी भी है । इसलिए मैला आँचल आज भी कई कारणों से महत्वपूर्ण है, प्रासंगिक है। गाँव में लोग नाम पूछने के बाद जात पूछते हैं। जीवन में बहुत कम लोगों ने प्रशांत से उसकी जाती के बारे में पूछा लेकिन यहाँ हर आदमी पूछता है- "जाति बहुत बड़ी चीज है । जात-पात नहीं मानने वालो की भी जाति होती है..शहर में? कोई किसी से जात नहीं पूछता । शहर के लोगों की जाति का क्या ठिकाना । लेकिन गाँव में तो बिना जाति के अपका पानी नहीं चल सकता।" [4]

वैजनाथ मिश्र (नागार्जुन) किसानों की समस्या को अपने साहित्य के माध्यम से मजबुती प्रदान करने वाले गाँव के मछुवारे वरूण के बेटे से लेकर प्रायमरी स्कूल के मास्टर दुखरन झा तक सभी किसान ही है । बलचनमा, बाबा बटेश्वरनाथ, वरूण के बेटे आदि में अपने वास्तविक रूप में किसानों की समस्या सामने आती है । बलचनमा में मिथिलांचल के ग्रामीण जीवन का कटु और नग्न यथार्थ अपनी संपूर्ण प्रखरता में चित्रित हुआ है । बलचनमा , संपूर्ण निम्न वर्ग का प्रतीक है। बाबा बटेश्वरनाथ उपन्यास में अकाल की उन्होने बहुत विस्तार से चर्चा की है और बताया है कि इसका सिधा असर किस तरह गरीब के पेट पर पडता है- ,"पाच जने अगर खानेवाले हुआ करते तो ईट का एक सेर पिसान दो शेर उबली -पतियों में मिलाया जाता, कहीं यह पिसान पतियों में एक चौथाई भर डाला जाता । आम की गुठलीयों का पिसान भी इसी तरह बरता जाता ।"[5]

'वरूण के बेटे ' उपन्यास में किसानों के सशक्त प्रतिरोध का चित्रण दिखाई देता है । गढ़पोखर जल से मछुओं का रिश्ता भावात्मक है । जिसे गोनड एक बुडा मछवा इस प्रकार व्यक्त करता है -"यह पानी सदा से हमारा रहा है । किसी भी हाल मे इसे छोड़ नहीं सकते पानी और माटी न कभी बिकी है ना बिकेंगे । गरोखर का पाणी मामूली पाणी नहीं है । वह तो हमारे शरीर का लहू है ।जिदगी का निचोड़ है ।"[6]

कमलाकांत त्रिपाठी के उपन्यास 'पाहीघर' उपन्यास में जमींदारी व्यवस्था के यथार्थ रूप को रेखांकित किया गया है। शंकर द्वारा जैकरन को दिया गया खेत ही उसका सहारा था । उसे शंकर द्वारा छीने जाने पर पहले वह अनशन करता है, फिर जब उसकी माँग पूरी नहीं होती है तब वह जहर खाकर अपनी जान दे देता है। जैकरन कहता है- "देखो भैया, मैं जा रहा हूँ...यह चोला छोड़कर जा रहा हूँ। पाहीघर के ऊपर। उस बाभन के ऊपर। पहले बेटी की जान ली, फिर खेत छीन लिया।....देखना, निपात हो जाएगा उसका । डीह हो जाएगा पाहीघर। मेरी बात मानना। पाहीघर के बाभनों से कोई नाता न रखना। खान-पान, आना-जाना, पैलगी-असीस कुछ नहीं। उनके खेत

की घास, पेड़ की पत्ती तक न छूना। जहर खाकर मर रहा हूँ। मालूम है, परेत बनूँगा। हमेशा यहीं, पाहीघर के आस-पास मँडराऊँगा।.... बिरादरी में जो मेरा कहना नहीं मानेगा....देखना क्या करता हूँ उसका।"[7]

विद्यासागर नौटियाल ने 'भीम अकेला' उपन्यास में उतराखंड के गाँवों के किसानों की समस्याओं को दिखाया है। धारी गाँव के आस-पास के गाँव जो पहाड़ पर बसे हैं वहाँ के लोगों को सरकार पानी उपलब्ध नही करवा पायी । जिसका वर्णन करता हुआ लेखक कहता है- "यहाँ की बस्ती में रहने वाले लोगों को पानी अलकनंदा से लाना होता है। नदी नीचे बहती है और वहां से ऊपर आने में सीधी, खड़ी चढ़ाई पड़ती है। यहां से नदी तट तक आना-जाना करीब डेढ़ किलोमीटर पड़ेगा। इस पानी के लिए सभी मंत्री, राजनेता, ऑफ़िसर वादा करते हैं। पर योजना बनती नहीं नजर आती।"[8]

रामदरश मिश्र ने 'बीस बरस' उपन्यास में ग्रामीण क्षेत्रों में आजादी के बाद आये बदलाब को बहुत ही बारीकी के साथ देखने का प्रयास किया है। गाँवों के सरकारी स्वास्थ्य केन्दों की दयनीय स्थिति एवं वहाँ कार्य कर रहे भ्रष्ट सरकारी कर्मचारियों की स्थिति का वर्णन किया गया है। सुमेर बाबा की पुतोहू को जब प्रसव-पीड़ा होती है तो वंदना अपने पति को नर्स को बुलाने भेजती है। जब वह नही आती है तब वह खुद बुलाने जाती है। वहाँ जाकर देखती है कि नर्स रेडियों सुनते हुए लोगों से बात कर रही है। पूछे जाने पर वह कहती है- "अरे कोई एक गाँव और एक घर ही तो मेरे जिम्मे नहीं है। देख रही हैं न इतने लोग बैठे हैं। अभी-अभी एक केस से लौटी हूँ।"[9] जब गाँव के अस्पताल के मरीजों से अस्पताल की स्थिति के बारे में दामोदर जी पूछते हैं तो वे कहता है- "अरे ये साहब, सरकार सारी दवाएँ भेजती हैं लेकिन ये सब दुकान में बेच देते हैं और हमें ये ही दवाएँ खरीदने के लिए कहते हैं। दुकानदारों और इनकी मिलीभगत चलती रहती है। साहब जो असरदार लोग हैं उन्हीं को मुफ्त दवाएँ भी मिलती हैं, उन्हीं के यहाँ नर्स जाती है। हम गरीब लोगों को कोई नहीं पूछता।"[10]

निष्कर्ष ग्रुप में कहा जा सकता है कि हिंदी उपन्यास साहित्य में किसानो के जीवन का वास्तविक चित्र दिखाई देता है । दुःख, पीड़ा, संत्रास, गरिबी जैसी अनेक समस्याओं का सामना किसान को करना पड़ता है । आज-कल गाँव और किसानों के जीवन को लेकर लिखे जाने वाले साहित्य धीरे - धीरे कम होते दिखाई दे रहे है, क्योंकी लेखक शहरी परिवेश में पुरी तरह रंग चुका है । आज अधिकतर हिंदी लेखक नहीं जानते की गाँव मे किस प्रकार का माहोल है । गाँव मे कितनी मृत्यू हुई, उसका कारण क्या है । कितनी गरिबी है ,गरीबों किसानो का शोषण किस प्रकार हो रहा है ,बिसवी सदी के उपन्या सों में किसानों के जीवन पर विस्तृत चर्चा की गई है । जिनके अध्ययन से प्रमुख समस्याएँ जैसे बाड, सुखा, अकाल, गरिबी, अन्याय- अत्याचार जैसी स्थिति का यथार्थ चित्रण समकालीन उपन्यासों में प्रदर्शित होता है । किसान आत्महत्या कर रहा है । आज वह तबाही के कगार पर खडा है ।

सन्दर्भ ग्रंथ :-

1.गोदान, प्रेमचन्द, सुमित्र प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण, 2008, पृष्ठ, 101-102
2.गोदान, प्रेमचन्द, सुमित्र प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण, 2008, पृष्ठ, 254
3.कर्मभूमी, प्रेमचन्द, सुमित्र प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण, 2010, पृष्ठ,35
4.मैला-आँचल, फणिश्वनाथ रेणू वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण, 2014, पृष्ठ, 191
5.बाबा बटेश्वरनाथ, वैजनाथ मिश्र, राजकमल प्रकाशन ,नई दिल्ली संस्करण 2008 पृष्ठ, 70
6.वरूण के बेटे ,राजकमल प्रकाशन ,नई दिल्ली संस्करण 2008, पृष्ठ, 81
7. पाहीघर' उपन्यास,कमलाकांत त्रिपाठी वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1997,
8. भीम अकेला, विद्यासागर नौटियाल,पेंगुइन बुक्स द्वारा प्रकाशित, गुडगाँव हरियाणा, संस्करण,2008, पृष्ठ,19-20
9.बीसबरस, रामदरशमिश्र, वाणीप्रकाशन, नयीदिल्ली, संस्करण,2011 पृष्ठ,104
10. वही,पृष्ठ, 122

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

समकालीन हिंदी साहित्य में बाल विमर्श

वर्षा दिगंबर असोरे

प्रस्तावना -

बाल साहित्य का उद्देश्य बाल पाठकों का मनोरंजन कर उन्हें जीवन की वास्तविकता से परिचित कराना है। अतः बाल साहित्य के लेखक को बाल मनोविज्ञान की पूरी जानकारी होना आवश्यक है, तभी वह बाल मानस के अनुयार साहित्य रच सकेगा। समकालीन विमर्श में समाज की किसी भी समस्या पर चर्चा, परिचर्चा, संवाद, तर्क -वितर्क आदि।

आधुनिक युग में दिखाई देता है, इस बाल दौर में कुछ साहित्य में साहित्य लेखकों ने बड़ा बदलाव विशेष तौर पर बाल साहित्य को ही अपने लेखन में स्थान दिया था। इनमें मनहर चौहान का नाम उल्लेखनीय है। इस दौर में किशोरों के लिए भी बाल - उपन्यास लेखन का प्रयास दिखाई देता है। इस दौरान भी क अखिलेश श्रीवास्तव चमन' भी बालसाहित्यकार के नाम से जाने जाते है।

आधुनिक युग में कई विदेशी वाल उपन्यास भी अनुवाद, के माध्यम से बालकों को उपलब्ध करवाए गए। हिंदी बाल उपन्यासों का यह दौर विभिन्न विषयों पर आधारित सौ से अधिक उपन्यासों के प्रकाशन के लिए प्रसिद्ध है। अंग्रेजी उपन्यासकार जे. के रौलींग के हैरी पॉटर के सातों उपन्यास का अनुवाद सुधीर दीक्षित जी ने किया है। हैरी पॉटर इस उपन्यास में लडके की जादुई दुनिया को बच्चों की मार्मिक चित्रण किया है। बच्चों को सुबे चमत्कार से अभि आश्चर्य विभोर कर देने दर्शाया है। हैरी पॉटर नामक मनोदशा का जादूगरों के वाली कथा को दर्शाया गया है

प्रेमचंद युगीन कथा साहित्य में बाल विमर्श

प्रेमचंद युग को कथा साहित्य का स्वर्ण युग माना जाता है। बाल कहानियां भी यथार्थ अभिव्यक्ति के साथ सर्वप्रथम प्रेमचंद युग में ही प्रकाशित हुईं। जैसे- दो बैलों की कथा, ईदगाह आदि। प्रसिद्ध आलोचक परमानंद श्रीवास्तव का मत है कि प्रेमचंद बड़ी संवेदना के लेखक हैं, उनके यहाँ सबके लिए साहित्य मिल जाता है- बच्चों के लिए साहित्य मिल जाएगा, किशोरों के लिए भी मिल जाएगा। 'गुल्ली डंडा' किशोर भी मजा लेकर पढेगा, बड़े लोग भी पढ़ सकते हैं। प्रेमचंद के कथा साहित्य की सर्वप्रमुख विशेषता यह है कि उनमें बालकों और किशोरों के मनोविज्ञान का सूक्ष्म चित्रण हुआ है। जैसे गबन नामक उपन्यास यद्यपि बालकों के लिये लिखित उपन्यास नहीं है, तथापि मुख्य पात्र जालपा के बाल मन का अत्यंत यथार्थ चित्रण करते हुए प्रेमचंद जी ने आरंभ में ही लिखा है- 'एक बडी बडी आंखों वाली बालिका ने वह चीज पसंद की जो उन चमकती हुई चीजों में सबसे सुन्दर थी। वह फिरोजी रंग का एक चंद्रहार था। मां से बोली "अम्मा मैं यह हार लूंगी। माता ने कहा "यह तो बड़ा महंगा है। चार दिन में इसकी चमक-दमक जाती रहेगी।" बिसाती ने मार्मिक भाव से सिर हिलाकर कहा "बहू जी 4 दिन में तो बिटिया को असली चंद्रहार मिल जाएगा।" माता के हृदय पर इन सहृदयता से भरे हुए शब्दों ने चोट की। हार ले लिया गया। बालिका के आनंद की सीमा न थी। शायद हीरों के हार से भी उसे इतना आनंद ना होता । उसे पहनकर वह सारे गांव में नाचती थी। उसके पास जो बाल संपत्ति थी उसमें सबसे मूल्यवान सबसे प्रिय यही बिल्लौर का हार था।1

प्रेमचंद जी की कहानियों में उपस्थित बाल पात्रों के चरित्र में बालकों के लिए उपदेश या शिक्षा से अधिक बाल मनोविज्ञान का चित्रण मिलता है। जैसे- बड़े भाई साहब, ईदगाह, मिट्टू बूढी काकी आदि कहानियों में उपस्थित बच्चों के चरित्र चित्रण में बाल मन की सहृदयता, कोमलता और सच्चाई का यथार्थ अंकन है। मिट्टू नामक कहानी का बाल पात्र गोपाल मिट्टू नामक बंदर से बहुत प्रेम करता था। इस कथा में जानवरों से बच्चों की प्रेम और मित्रता की भावना का सुन्दर चित्रण मिलता है। - 'लखनऊ शहर में एक सर्कस कंपनी आई थी। उसके पास शेर, भालू, चीता और कई तरह के और जानवर भी थे। इनके साथ ही एक बंदर मिट्टू भी था। बच्चों के झुंड के झुंड रोज इन जानवरों को देखने आया करते थे। मिट्टू ही उन्हें सबसे प्यारा लगता। उन्हीं बच्चों में गोपाल भी था। वह रोज आता और मिट्टू के पास घंटों चुपचाप बैठा रहता। वह मिट्टू के लिए घर से चने, मटर, केले लाता और उसे खिलाता। मिट्टू भी गोपाल से इतना हिल मिल गया था कि बिना उसके खिलाए कुछ ना खाता। इस प्रकार दोनों में अच्छी दोस्ती हो गई।2

समकालीन कथा साहित्य में बाल विमर्श

समकालीन कथा साहित्य में बाल कहानियों को एक विधा के रूप में प्रतिष्ठित किया जा रहा है। इसके अनुसार बाल साहित्य छोटी उम्र के बच्चों को ध्यान में रख कर लिखा गया साहित्य होता है। बाल कथा साहित्य का उद्देश्य बाल पाठकों का मनोरंजन कर उन्हें जीवन की वास्तविकता से परिचित कराना है। अतः बाल साहित्य के लेखक को बाल मनोविज्ञान की पूरी जानकारी होना आवश्यक है तभी वह बाल मानस के अनुसार साहित्य रच सकेगा।

समकालीन बाल साहित्य के उत्थान में श्री के शंकर पिल्लई का नाम उल्लेखनीय है। श्री के शंकर पिल्लई द्वारा बाल साहित्य के संदर्भ में चिल्ड्रन बुक ट्रस्ट की स्थापना सन् 1957 में की गई थी इस ट्रस्ट का मुख्य उद्देश्य बच्चों के लिए बेहतर बाल साहित्य उपलब्ध कराना है। बाल कथा साहित्य की अभिवृद्धि में भी इस ट्रस्ट का उल्लेखनीय योगदान है। जैसे- हिंदी में पौराणिक कथाएं - यथा- कृष्ण सुदामा, प्रहलाद आदि। पशु पक्षियों, पर्यावरण और वन्य जीवन पर आधारित कहानियां जैसे पंचतंत्र की कहानियां, जंगल की कहानियां आदि। विज्ञान की ज्ञानवर्धक कहानियां जैसे उपयोगी अविष्कार, कंप्यूटर, घड़ी, टेलीफोन, रेलगाड़ी, पर्वत की पुकार, आदि। मनोरंजक, खेल, जासूसी, रहस्य, और रोमांच की कहानियां- जैसे अनोखा उपहार, ननिहाल में गुजरे पांच दिन, जासूसों का जासूस, पांच जासूस आदि। महान व्यक्तित्व से संबंधित कहानियां जैसे- जगदीश चंद्र बसु, सुभाष चंद्र बोस आदि ।

आधुनिक बाल कथा साहित्य का प्रवर्तक श्री जयप्रकाश भारती को माना गया है। जयप्रकाश भारती जी का मानना है कि 'जिस देश के पास समृद्ध बाल साहित्य नहीं है, वह उज्ज्वल भविष्य की आशा कैसे कर सकता है? और क्या बालक को कल या परसों के भरोसे छोड़ा जा सकता है ? 21वीं सदी की चुनौतियों के लिए हमारे बालक तैयार हैं कि नहीं। बाल विमर्श से संबंधित तथ्यों और इसके स्वरूप की महत्वपूर्ण जानकारियां श्री जयप्रकाश भारती की 'बाल साहित्य 21वीं सदी में', प्रकाश मनु की 'हिंदी बाल कविता का इतिहास' एवं दिविक रमेश के साक्षात्कार और हिन्दी कहानी का समकालीन परिवेश, 'प्रेमचंद की बाल कहानियाँ कुछ निजी नोट्स' में भी संदर्भित हैं।

निष्कर्ष

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि समकालीन बाल साहित्य में बाल मनोविज्ञान, विज्ञान की प्रगति,समकालीन बदलती जीवन मूल्य और संचार माध्यमों में आई क्रांति आदि ही प्रमुख विषय वस्तु हैं। किंतु पूर्व के कथा साहित्य में अभिव्यक्त लोक कथाएं, परी कथाएं, पौराणिक कथाएं, ऐतिहासिक कथाएं, दादी नानी के किस्से, रहस्य लोक की कथाएं, जासूसी कहानियां, उपदेशात्मक और प्रेरणास्पद किंतु अत्यंत रोचक और मनोरंजन से युक्त कल्पना प्रधान से लेकर यथार्थ तक की अभिव्यक्ति करने वाले कथा साहित्य का आज भी उतना ही महत्व है। इनके माध्यम से बच्चों में कल्पनाशीलता रागात्मकता और संवेदनशीलता के मानवीय गुणों का संचार होता है। यांत्रिकता के वर्तमान दौर में इन मानवीय गुणों का महत्व और भी बढ़ जाता है।

नीरस उपदेशों और ज्ञान के बोझ से भरी हुई कहानियां कभी भी बाल साहित्य का अंग नहीं बन सकतीं। अतः हिन्दी कथा साहित्य में बाल विमर्श के संदर्भों के अध्ययन के लिए बालकों के शिक्षण या मनोरंजन के उद्देश्य से लिखी गयी कहानियों के साथ-साथ ऐसी कहानियों को भी देखना होगा जो भले ही बाल पाठकों के लिये सोद्देश्य न लिखी गयी हों, किन्तु उनकी विषय वस्तु बच्चों के मानसिक विकास के लिये उपयुक्त, मनोरंजक, प्रेरणादायी और शिक्षाप्रद हों। दूसरी ओर बाल विमर्श के अंतर्गत हम उन कृतियों का भी अध्ययन करते हैं जो बालकों के पढ़ने के लिए उपयुक्त या उनके योग्य नहीं है किन्तु उनमें बच्चों के मानसिक और सामाजिक उत्थान-पतन की समस्याओं पर विचार किया गया हो। जैसे- मन्नू भण्डारी का उपन्यास आपका बण्टी, प्रेमचंद जी के उपन्यास गबन और निर्मला, मैत्रेयी पुष्पा की कहानी 'बोझ' आदि। इन कथा साहित्यों में बच्चों की परवरिश और उनके प्रति माता पिता और समाज के दायित्वों पर विमर्श किया गया है।

संदर्भ सूची

1) मुंशी प्रेमचंद, गबन, भवदीय प्रकाशन, अयोध्या, पृष्ठ ३१

२) मुंशी, प्रेमचंद, मिट्टू कृति प्रकाशन प्रा. लि., लखनऊ, मेधा ५ में संकलित।

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

केदारनाथ अग्रवाल के कव्य में किसान की यथार्थ अभिव्यक्ति

डॉ. रेविता बलभीम कावळे

हु. बहिर्जी स्मारक महाविद्यालय,वसमत जि. हिंगोली

सारांश

केदारनाथ अग्रवाल हिंदी साहित्य जगत का एक बहुत बड़ा नाम है। प्रगतिवादी काव्य धारा के सर्व प्रमुख कवि है। प्रतिवादी काव्य धारा में इनकी एक अलग पहचान है। मिट्टी से जुड़े हुए कवि है। जनमानस के कवि है। प्रकृति प्रेमी कवि है। शोषतों, पीड़ितों, मजदूरों, किसानों तथा वंचितों के कवि है। वे एकसंघ समाज की स्थापना करना चाहते है। अग्रवाल जी एक युगदृष्टा होने के साथ-साथ जन-मन के कवि है। धरती के कवि है। मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित अग्रवाल जी जनमानस के प्रति गहरी अस्था, प्रेम, करुणा, अपनापन, मानवीय संवेदना को मन में लिए हुए कवि है। सामाजिक विषमता को मिटाकर समानता की कड़ी को मजबूत करने का मौलिक प्रयास उन्होंने अपनी कव्य रचनाओं के माध्यम से किया है। गांव एवं किसानों के अस्तित्व के लिए निरंतर उनकी लेखनी निरंतर लड़ती रही।

शब्द

प्रगतिवादी, जनमानस, युगदृष्टा कवि, मार्क्सवादी विचारधारा, मानवीय संवेदना, विषमता अस्तित्व।

प्रस्तावना

किसान केवल शब्द नहीं है। भारत वर्ष की नींव हैं। जो पुरे देश का भरण-पोषण करता है। देश की सभ्यता और संस्कृति का संरक्षण भी करता है। देश का हर एक व्यक्ति कृषि पर निर्भर है। संवेदना के धरातल पर खड़े रहने वाले बहुमुखी प्रतिभा के कुशल चितेरे केदारनाथ अग्रवाल जी प्रगतिशील विचारधारा के मशहूर कवि है। सामाजिक समस्याओं के प्रति अत्यंत सजग रहने वाले हैं। 01 अप्रैल, 1911 ई. को उत्तर प्रदेश के बांदा जिले के बबेरु तहसील के कमासिन नामक छोटे से गांव में जन्मे हुए केदारनाथ अग्रवाल जी हिंदी साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर है। पिताजी श्री. हनुमान प्रसाद अग्रवाल एवं माताजी घसिट्टो देवी जी के संस्कारों में पहले बड़े है। काव्य के संस्कारो तो उनको अपने पिताजी से ही मिले हैं। इन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से स्नातक (बी.ए.) की उपाधि और कानपुर से कानून की उपाधि प्राप्त की है।

मध्यमवर्गीय परिवार में जन्मे हुए अग्रवाल जी में समाज के हर एक वर्ग के प्रति प्रेम एवं गहरी आस्था रही है। कमासिन की मिट्टी में पले-बड़े केदारनाथ जी का आकर्षण प्रकृति और कृषि के प्रति अधिक रहा है। शायद इसलिए इन्होंने गरीब, किसान, मजदूर, खेत, खलियान, धूप-छांह, मिट्टी, गांव आदि अनेक विषयों को केंद्र में और खबर रचनाओं का सृ॒न किया है। उनकी कविताओं में इस सभी विषयों की सहजता झलकती है। उन्होंने अनेक कविताओं के साथ ही निबंध, उपन्यास, कहानी, संस्मरण, लेख, आदि रचनाओं का भी निर्माण किया है। उनका 'अपूर्वा' काव्य संग्रह साहित्य अकादमी से पुरस्कृत है। 'पतिया'

नामक एक मात्र उनका उपन्यास है। 'समय-समय पर', 'विचार बोध' जैसे वैचारिक निबंध सॉन्ग रहो ही हिंदी साहित्य जगत को दिए है। 'बस्ती खिली गुलाबों की' यह इनका तो प्रसिद्ध यात्रा संस्मरण है। इनकी आनेक रचनाओं का रुसी, जर्मन तथा अंग्रेजी जैसी विभिन्न विदेशी भाषाओं में अनुवाद

भी हुए हैं। ऐसे महान कवि केदारनाथ अग्रवाल जी का निधन 22 जून, सन् 2000 में हुआ। परंतु आपनी रचनाओं के माध्यम से वे आज भी हिंदी साहित्य जगत में अजरामर है।

विषय विवेचन

केदारनाथ अग्रवाल जी जनमन के कवि है। जन सामान्य की पीड़ा को उन्होंने अपनी आंखों से देखा है। इसीलिए उनकी पीड़ा का अत्यंत हृदय स्पर्शी चित्रण उन्होंने अपनी काव्य रचनाओं में किया हैं। समाज के साथ उनका लगाव था। भूख से परेशान, बेहाल लोगों का चित्रण करते हुए कवि ने कहा है, "बाप बेटा बेचता है, भूख से बेहाल होकर, धर्म धीरज प्राण खोकर, हो रहीं अनरीती बर्बर, राष्ट्र सारा देखता है, बाप बेटा बेेचता है।"[1] उन्होंने मानव जीवन के हर एक फलक पर रोग श्रम का सौंदर्य ढूंढने का प्रयास किया है। खेती की मिट्टी को किसानों के भाल का चंदन माना है। कठोर परिश्रम को महत्व दिया है। कृषि एवं किसान संस्कृति पर भारतवर्ष की बुनियाद टिकी है। जब इस बुनियाद में ही दरारें नजर आती हैं तब कवि परेशान होकर बेचैन हो जाते है। उनका व्याकुल मन बोल उठता है, "यह धरती है उस किसान की, जो मिट्टी का पूर्व पारखी, जो मिट्टी के संग साथ ही, तपकर, गलकर, जी कर, मरकर खफा रहा है। जीवन अपना।"[2] किसान भारतीय संस्कृति का चमचमाता तारा है, परंतु आज यह किसान विभिन्न संंकटों से जूझ रहा है। अपनी आत्महत्या करने लगा है। किसानों की आत्महत्याएं इस समय देश के सामने बहुत बड़ा ज्वलंत प्रश्न है। यह बहुत ही हृदय द्रावक एवं चिंता का विषय है। कवि केदारनाथ जी अपनी रचनाओं के माध्यम से अपना दायित्व निभाते हैं। सरकार ने अपना दायित्व निभाने की आवश्यकता है। 'धरती' नामक कविता में किसानों की पीडा का अत्यंत सूक्ष्म चित्रण किया है। इस कविता में वे किसान को देश का रखवाला मानते हैं। जमीन का असली माली या हकदार अगर कोई है तो वह किसान है। अनेक प्रकार के आसमानी और सुल्तानी संकटों से जूझता रहता है। कभी हार नहीं मानता। कठोर परिश्रम करता रहता है। कभी हताश नहीं होता। संकटों से डर कर हाथों हाथ मारें नहीं बैैठता। विभिन्न प्रकार के प्रयास करता रहता है। बेपरवाह होकर श्रम एवं साहस समेटकर मिट्टी से ही उर्जा लेकर आगे बढ़ता रहता है। 'डांगर' नामक कविता में किसान की त्रासदी को प्रस्तुत करते हुए कवि ने कहां है, "है भूख बड़ी लंबी-चौडी, बीस जनों का सब खाना, ये एक अकेले खाते हैं, दिन भर ही पापुर करते हैं, हम भूखे ही रह जाते हैं।"[3] कवि केदारनाथ जी का अपनी जनता पर अटूट विश्वास है।

किसान मिट्टी का मित्र है। कवि उसके गुणों को पहचानते है। मिट्टी के साथ ही धूप-छांह, ठंंड-बारिश सब कुछ सहकर, तपता एवं गलता भी रहता है। वह अपना समस्त जीवन मिट्टी के प्रति समर्पित करता है। वह खुद भूखा प्यासा रहकर दूसरों को अनाज देकर, दूसरों की भूख प्यास मिटाता है। उसका जीवन कठोर परिश्रम से भरा हुआ है। प्राकृतिक झंंझावातों को झेलता रहता है। हंसी खुशी खोकर खून पसीना एक करके मिट्टी का श्रृंगार करता रहता है। मिट्टी में से सोना उगाने की ताकत को पालता है। "देख रहा मिट्टी में सोने का सपना, मिट्टी की महिमा गाता, मिट्टी के ही अंतस्तल में, अपने तन की खाद मिलाकर, मिट्टी को जीवित रखता है, खुद जीता है। ये धरती है उस किसान की।"[4] प्राचीन काल से लेकर आज तक किसानों की समस्याएं कभी कम नहीं हुई हैं। इन समस्याओं की यथार्थ अभिव्यक्ति इनकी कविताओं में यथातथ्य दृष्टिगोचर होती है। किसानों की त्रासदी कोई कम नहीं कर पा रहा है। इसलिए स्पीड इधर पढ़ी-दर-पीढ़ी यह बढ़ती ही जा रही है। किसानों की दुर्दशा से कवि अत्यंत आहत है। टूटी-फूटी झोपड़ी या कच्चे मिट्टी के छोटे से घर में किसान को अपना जीवन यापन करना पड़ता है। वह बहुत विवश रहता है। उसके पास दूसरा कोई रास्ता नहीं होता है कि वह अपनी गरीबी को मिटाकर अच्छा खासा जीवन जीये। ताकि वह ईमानदार है। इमानदारी से दिनभर मेहनत मजदूरी करता रहता

है। थका- मांदा घर आकर लौटता है तो बेहोश होकर सो जाता है। उसे मालूम है कि धरती के पास भ्रष्टाचार या रिश्वत नहीं चलती है। रात के भोजन की भी तो होश उसे कहां रह पाता है। ऊंचे महलों के बारे में वह कब सोचेगा।

किसान की इमानदारी को प्रस्तुत करते हुए न्याय व्यवस्था एवं समाज समाज व्यवस्था समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार पर फटकार लगाते हुए कवि कहते है, "मैं चोर नहीं या सेंधमार। मैं नहीं डकैतों कासाथी। धिक है, इन कौडी कुत्तों को। ये झूठ गवाही देत हैं। ये नहीं चाहते मैं पनपूं, इनको मैं मेटूं, जनता का जमघट मैं बांधू, इनको तोडू, नौकरशाही-अफसरशाही का सिर फोडूं, दु:शासन को कमजोर करुं, इनकी रोटी, इनकी रोजी, इनसे हर कर सबको दे दूं, इससे ये मेरे बैरी हैं।"[5] केदारनाथ अग्रवाल जी की कविताओं में मिट्टी की महक है। मानव जीवन की सहजता एवं कोमलता भी देखने को मिलती हैं। उन्होंने सन 1931 से ही लिखना शुरु किया था। उनकी काव्योक्ति का आयाम बहुत गहरा एवं विस्तृत है। समाजिक यथार्थ के साथ ही राजनीतिक चेतना भी कविता में पाई जाती है। उन्होंने काव्य में शोषित, पीड़ित, दलित, मजदूर, किसान, सर्वहारा वर्ग के हर एक पहलू को न्याय देने का प्रयास किया है। मानवतावादी दृष्टिकोन को लिए हुए कवि आगे बढ़ते रहे हैं। पूंजीवाद का पर्दाफास करते हुए श्रमजीवीयों के प्रति आस्था और करुणा का भाव उनके काव्य में प्रस्फुटित हुआ है। संवेदनशील हृदय से उन्होंने किसानों के परिवारों की दुर्दशा का चित्रण किया है। 'जब बाप मरा तब क्या पाया, भूखे किसान के बेटे ने, घर का मलबा, टूटी खटिया, कुछ हाथ भूमि वह भी प्रती चमरौधे जूते का तल्ला, छोटी छोटी गुड़िया औगी, वह क्या जाने आजादी क्या? आजाद देश की बातें क्या? उनकी कविताओं में विद्रोह का स्वर भी पाया जाता है तथा व्यंग्य भी प्रस्तुति होता है। सोशकों के प्रति घृणा है। शायद इसलिए ही इनका काव्य समाज सापेक्ष है। सर्वहारा वर्ग को समृद्ध करके विश्व में मानवता स्थापित करना कवि का लक्ष्य है। किसान की ताकत उनके मेहनत में है। अत: कर्म जब तक श्रम के बिना किया जाता है, तब तक सार्थक नहीं होता। जब कर्म और श्रम साथ होंगे तब सफलता प्राप्त होती है। तब कहीं जाकर स्वर्गानंद की प्राप्ति होती है। किसान यह स्वर्गानंद पाने के लिए अपने सपनों को पूरा करने के लिए दिन रात खेतों में कठोर परिश्रम करता रहता है। "सबके हाथों में हंसिया है, सबकी बाहों में खपता है, जल्द जल्दी सांसे लेते सब जन मन से काट रहे हैं एक लगन से, एक ध्येय से, जीवन का श्रम सफल हुआ हैं, जिंदा दिल होकरउठाने को खाने को भरपूर मिला है।"[6] किसानों का शोषण सिर्फ पूंजीपतियों के द्वारा ही नहीं होता है बल्कि वर्तमान व्यवस्था की भ्रष्ट राजनीति और क्लिष्ट कार्य प्रणाली के कारण भी होता है। भारतीय किसानों की ओर उनकी पीड़ा की ओर गंभीरतापूर्वक ध्यान नहीं दिया जाता है। किसान तो देश की अर्थव्यवस्था की रीढ़ की है। किसान ही हमारी अर्थव्यवस्था को मजबूती देता है। औद्योगिक क्रांति के नाम पर किसानों का शोषण किया जाता है। उनके खेत-खलियान को उजाड़ दिया जाता है। विकास के नाम पर बड़ी-बड़ी कंपनियां, कारखाने तथा मशीनीकरण किया जाता है। केदारनाथ अग्रवाल ऐसे ही किसान की यथार्थ स्थिति को प्रखता से कविता में अभिव्यक्त किया हैं। कवि ऐसे किसान की स्थिति से चिंतित हैं। जिनको दो वक्त की रोटी तथा तन ढ़कने के लिए कपड़ा तक नसिब नहीं होता है।

संदर्भ सूची :--

1. गुलमंडी - केदारनाथ अग्रवाल - पृ. 24
2. प्रतिनिधि कविताएं - केदारनाथ अग्रवाल पृ. 30
3. ---------- वही ---------- पृ. 34
4. ---------- वही ----------- पृ. 30
5. ---------- वही ---------- पृ. 79
6. प्रतिनिधि कविताएं - केदारनाथ अग्रवाल - पृ. 47

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

समकालीन साहित्य में विविध विमर्श

डॉ. अमर आनंद आलदे

सहा. प्राध्यापक

कला एवं विज्ञान महाविद्यालय, चौसाळा,ता. जि. बीड

समकालीन विमर्श से तात्पर्य है कि समाज कि किसी भी समस्या पर चर्चा, परिचर्चा, संवाद, तर्क-वितर्क आदि। इसी के अंतर्गत अस्मितामूलक विमर्श को हम देख सकते हैं जिसमें वे सभी विषय आते हैं जिन्हे मनुष्य की अस्मिता से जोडकेर देखा जाता है अतः जिन्हे हाशिये पर लाकर छोड़ दिया गया हो । भाषा , धर्म, लिंग, वर्ण, जाति आदि विषय अस्मितामूलक विमर्श के आधार हैं ।

21 वी सदी विमर्शों से भरी हुई है, इस सदी में समाज के सभी वंचित समूहों ने अपने हक , अधिकार और अपनी अस्मितागत पहचान के लिए निर्णायक लड़ाई छेड़ रखी हैं। ये लड़ाई किसिके विरुद्ध नहीं बल्कि अपने ही पक्ष में लड़ी जा रही हैं , जीनमें हम आदिवासी, किन्नर, दलित, तथा स्त्री विमर्श को प्रमुखता से देखते आ रहे हैं। इसी तर्ज पर और भी कई नये विमर्श हिंदी साहित्य के साथ जुडे है तथा आगे भी जुडते रहेंगे। यहाँ हम आदिवासी विमर्श तथा किन्नर विमर्श पर विचार करने जा रहे हैं।

आदिवासी अस्मिता की पहचान, उसके अस्तित्व संबंधि संकटों और उसके खिलाफ जारी प्रतिरोधों का साहित्य आदिवासी विमर्श कहलाता है। आदिवासी से तात्पर्य देश के मूल निवासी के रूप में हम देखते है, जो 'जल, जंगल, जमीन' का प्रमुख हकदार है। पर आज उसे अपने ही घर से निकालने का षडयंत्र प्रस्थापितों व्दारा होता नजर आता है। अपने इसी मूल आत्मसम्मान के अधिकार की माँग करता साहित्य आदिवासी विमर्श के तहत हम देखते हैं।

तेजिन्दर का 'काला पादरी' मध्यप्रदेश की 'उराँव' जनजाति की समस्याओं को व्यक्त करनेवाला आदिवासी लघु उपन्यास है। उपन्यासकार आदिवासियों का उपनिवेशिक व्यवस्था में फंसे होने का वास्तव सामने रखता है। साथ ही आदिवासी भूख, अभाव, दारिद्र्य, शोषण आदि से परेशान होकर ईसाई, हिंदू , बौद्ध धर्म में दीक्षित होने के ऐतिहासिक वास्तव की ओर भी संकेत करता है। आदिवासियों के भूख, अभाव और दारिद्र्य को व्यक्त करता हुआ वह लिखता है, **"साहब रात में बच्चा मर गया। उसकी माँ ने कई दिनों से कुछ खाया नहीं था। उसको गोद में लेकर उसकी माँ भी मर गयी। उसने भी कई दिनों से कुछ खाया नहीं था। "1** उपन्यास में भूख मिटाने के लिए जहरीली वनस्पतियाँ, बुटियाँ और बिल्लियों का मांस खाने का सामने रखा, इसी संदर्भ में प्रोफेसर चमनलाल का एक वक्तव्य है - **"इसवास्तव में 'काला पादरी' उपन्यास में भारत के सर्वाधिक उत्पीडित व उपेक्षित आदिवासियों की जीवन स्थितियों के अनेक पहलुओं को लेखक ने समाजशास्त्रीय दृष्टि, किन्तु साथ ही लेखकीय संवेदना से इस ढंग से चित्रित किया है कि भारतीय समाज की जटिलता भी उभरकर सामने आती है और साथ ही आदिवासियों के जीवन की पीडा का मार्मिक अंकन भी लेखक की कलम से होता चलता है।"2** उपन्यास में ईसाई मतों के प्रचार-प्रसार की ओर भी ध्यान खींचा है।

तेजिन्दर का उपन्यास 'काला पादरी' यथार्थ के एक अनजाने दुर्गम इलाके की अंतर्यात्रा का अनूठा और पहला प्रामाणिक उत्तर- आधुनिक साक्ष्य है। मध्यप्रदेश के गहन आदिवासी क्षेत्रों में घटित होती घटनाओं और

जंगलों के पार साँस लेते जीवन का इतना विवरणात्मक, संवेदनशील और सूक्ष्म आकलन समकालीन कथा साहित्य की एक विरल उपलब्धि है।

राकेश कुमार सिंह द्वारा रचित 'पठार का कोहरा' झारखण्ड के वर्तमान जनजातीय जीवन पर लिखा गया एक सशक्त उपन्यास है । अंग्रेजों के भारत छोड़ने के बाद झारखण्ड के जंगलों में एक नयी शोषक संस्कृति का उदय हुआ। यह थी साहू, बाबू और बन्दूक की संस्कृति। आज भी एक निर्धन आदिवासी महाजन के घर में जन्म लेता है, बाबू की बेगारी में खटता है और साहू के कर्ज में मर जाता है। आदिवासी कल्याण की सरकारी योजनाओं का अत्यधिक लाभ शहरी आदिवासियों को ही मिल पाता है, जो वस्तुतः आदिवासी समाज की 'मलईदार' परत हैं। प्रस्तुत उपन्यास में इन क्षेत्रों में शोषण, उत्पीड़न और अत्याचार के नये-नये दुश्चक्रों के जाल में फँसे जनजातीय मानस को सजग करते, उनमें अस्मिता के बीज अँकुराते एक संवेदनशील और दृढ़ इच्छाशक्ति वाले नायक की कथा है, साथ ही हताशा में घिरी एक आदिवासी युवती के आत्मसंघर्ष एवं नारी-मुक्ति की कहानी है। अन्त में श्रम, उद्यम और सहभागिता के लिए संघर्षशील जनजाति की यह कथा इस उत्तर की बेचैन खोज भी है कि हिन्दू धर्म के विराट कैनवास पर उनकी क्या जगह है। प्रस्तुत कृति में ऊबड़-खाबड़ झारखण्ड के इस खुरदरे यथार्थ के साथ-साथ जंगल के विरूपित होते चेहरे के समानान्तर जीवन और प्रकृति के रिश्तों का सौन्दर्य भी है।

उपन्यासकार ने उपन्यास में झारखण्ड के एक छोटे से गांव गजलीठोरी के आदिवासी-संघर्ष के आख्यान द्वारा पूरे भारत के आदिवासियों के साथ हो रहे सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, शोषणों की ओर ध्यान खींचने का प्रयास किया है और बताने की कोशिश की है कि इस तरह के शोषण के शिकार सिर्फ गजलीठोरी या झारखंड के ही आदिवासी नहीं बल्कि पूरे भारत और विश्व भर के आदिवासी इस अमानवीय कृत्य के शिकार हैं। दुनिया को सभ्य और शिक्षित बनाने के लिए निकले गोरों ने **"आस्ट्रेलियाई मूल के एफ्रोनिग्राइट्स नामक एक पूरी प्रजाति का सफाया कर डाला। रेड इंडियन्स का समूल नाश कर दिया।"3** इस सभ्य गोरी जाति ने भारतीय आदिवासियों का मूलोच्छेद करने की कोशिश की पर अंग्रेजों को इन जीवट आदिवासियों के बगावती तेवर का सामना करना पड़ा और अंततः आदिवासियों ने हार नहीं मानी लेकिन आजादी के बाद आज भी आदिवासियों का शोषण जारी है।

यह कहानी सिर्फ झारखंड के 'गजलीठोरी' की नहीं बल्कि पूरे भारत के आदिवासियों की है। आज भारत दुनिया की छठी शक्ति बनने जा रहा है लेकिन उसी भारत के आदिवासी समाज में शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार के मुख्य मुद्दे गायब है और वे बंधुआ मजदूर का जीवन जीने पर बाध्य हैं। इस सभ्य समाज को जंगलों, पहाड़ों पेड-पौधों, जंगली जानवरों, हिरणों, बाघों की खूब चिन्ता है। काले हिरणों के शिकार पर भारत में सिनेमा के नायकों से लेकर नायिकाओं तक पर केस चलते रहे हैं। आये दिन पर्यावरण को लेकर पूरा देश बहस से उबल पडता है परन्तु इन्हीं वन प्रदेशों में रहने वाले आदिवासियों के लिए विकास और उत्थान की योजनाओं के प्रति कोई प्रतिबद्धता नहीं दिखाई देती है।

यहाँ आदिवासी विमर्श के तहत आदिवासी अस्मिता को व्रहत्तर समाज से काटकर देखने की बजाय शोषित-उत्पीड़ित वर्ग और शोषक वर्ग के बीच चले आ रहे पारंपरिक संघर्ष के रूप में तथा इनके संघर्ष , को एक व्यापक संघर्ष के हिस्से के रुप में देखा गया है।

निष्कर्ष: स्पष्ट है कि आदिवासी समाज सदियों से जातिगत भेदों, वर्ण व्यवस्था, विदेशी आक्रमणों, अंग्रजों और वर्तमान में सभ्य कहे जाने वाले समाज (तथाकथित मुख्यधारा के लोग) द्वारा दूर-दराज जंगलों और पहाड़ों में खदेड़ा गया है। अज्ञानता और पिछड़ेपन के कारण उन्हें सताया गया है। अक्षर ज्ञान न होने के कारण यह समाज सदियों से मुख्यधारा से कटा रहा, दूरी बनाता रहा। उनकी लोककला और उनका साहित्य सदियों से मौखिक रूप में

रहा हैं और इसका कारण रहा उनकी भाषा के अनुरूप लिपि का विकसित न हो पाना। यही कारण साहित्य जगत में आदिवासी रचनाकार और उनका साहित्य गैर-आदिवासी साहित्य की तुलना में कम मिलता है।

आज कल भारतीय समाज में और साहित्य में हिजड़ों की समस्या एक सामाजिक समस्या के रूप में उभरकर सामने आ रही है । अपना हक़ वह मांग रहा है । राजनीति में और चुनाव में भाग लेने का अधिकार उन्हें मिल रहा है । समाज में जीते जी उन लोगों को बहुत सी यातनाएं सहनी पड़ती हैं । भारतीय समाज एवं साहित्य में तृतीय लिंगी विमर्श किन्नर समाज के बारे में न केवल जानकारी देती है बल्कि उनके उत्थान की दिशा में महत्वपूर्ण विमर्श सुझाती है। इन तृतीयपंथीयों को और भी कई नामों से पुकारा जाता है। जैसे कि- हिजडा, किन्नर, ख्वाजासरा, खोजा, उभयलिंगी, शिखंडी, छक्का आदि. । संविधान में इन्हे इंटरसेक्स, ट्रांससेक्सुअल और ट्रान्सजेंडर के रूप में पहचाना गया। और इनकी पहचान को थर्ड जेंडर में ट्रान्सजेंडर श्रेणी मे रखा गया। सरकारी आँकडे देखे जाय तो आज भारत में किन्नरों की संख्या चार लाख नब्बे हजार के लगभग है।

सभ्य समाज ने इन्हें हर-दम कोसा और अपने से दूर रखा। नतिजा यह हुआ कि इन्हें अपना पेट पालने के लिए नुक्कड चौराहे, टोलनाके पे या रेल्वे में भीख मांगनी पडती है। या इससे भी गुजारा न हो तो वेश्यावृत्ति करने के लिए मजबूर होना पडता है। इनके जिस्मफरोशी दलदल में गिर जाने से एड्स पीडितों की संख्या बढ रही है। आखिर इनकी पीडा और दर्द को कोई सुनना समझना तथा महसूस करना नहीं चाहता-

"कंगन है मेरे हाथ में, पर कलाई में ताकत है पुरुषों से अधिक
आवाज है मेरी पुरुषों सी, पर मन मेरा कोमल है पुरुषों से अधिक
पर पूछता अस्तित्व मेरा, तू कौन है?"4

हर तृतीयपंथी के मन में यह सवाल पैदा होना लाजमी है की मैं कौन हूँ? मेरा अस्तित्व क्या है? मेरा वजूद क्या है? क्या इन्ही सवालों के जवाब पाते-पाते यह जीवन बीत जायेगा? क्या ये सभ्य समाज इन तृतीय पंथियों को अपने में समाहित नहीं कर सकता? इन्ही सवालों की खोज करता यह शोधालेख पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है।

मैं लक्ष्मी मैं हिजड़ा ' प्रस्तुत आत्मकथा के माध्यम से 'लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी' ने अपने वजूद को पहचाना, अनुभव किया और उसे कागज पर भी उतारा। लक्ष्मीनारायण एक पुरुष के लिंग में जन्मा हिजड़ा है। इसी अनुभव को वह समाज के सामने, समाज द्वारा ठुकराए गए ऐसे कई हिजड़ों का प्रतिनिधित्व करता नजर आता है। समाज में दो ही लिंग अधिक प्रचलित है एक है स्त्री और दूसरा है पुरुष। पर और एक लिंग भी है जिसे नपुंसक लिंग कहा जाता है, जो ना ही पुरुष है और ना ही स्त्री। यह पैदा तो होते हैं उसी कोक से जिस कोक से स्त्री तथा पुरुष जन्म लेते हैं। पर जब इन बच्चों को एहसास होता है कि मैं भले पुरुष लिंग में पैदा हुआ हूँ लेकिन मेरा शरीर मुझे स्त्री बनने की ओर आकर्षित कर रहा है। यह जो पुरुष से स्त्री बनने की प्रक्रिया उस लड़के के लिए कितनी त्रासदायी हो सकती है इसे वही महसूस कर सकता है जो इस प्रक्रिया से गुजरा हो। यहीं से उसका जीवन संघर्ष प्रारंभ होता है। उस परिवार तथा समाज से जो अब तक उसका हिस्सा था।

प्रस्तुत आत्मकथा पाठकों को मजबूर करती है कि हम अपने नजरिए को बदले जिस तरह लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी के परिवार ने बदली। इन तृतीय पंथियों को पारिवारिक तथा सामाजिक सहयोग प्राप्त हो तो वे स्त्री-पुरुषों के साथ कंधा मिलाकर चल सकते हैं। यह सौभाग्य 'लक्ष्मी' को प्राप्त हुआ पर अन्य तृतीयपंथीयों के सामने यह एक यक्ष प्रश्न बना हुआ है।

'हिजड़ा' या 'थर्ड जेंडर' इस समूह की पहचान हमें आज-तक फिल्मों में नाच-गाना करते तथा रेलवे या ट्राफिक पर ताली बजा कर पैसे मांगने वालों के रूप में हुई है जो साड़ी पहने हुए मर्दों के समान नजर आती है। पर जब लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी कि 'मैं हिजड़ा मैं लक्ष्मी' आत्मकथा पढ़ने के पश्चात इनके समूचे समूह के प्रति जो घृणा का भाव स्थित था वह एक सम्मान में परिवर्तित हुआ। कौन,कहां, किसके घर,जाति, पंथ, धर्म, वर्ग में पैदा हो यह हमारे हाथ में नहीं है। वैसे ही 'हिजड़ा' बनना यह एक प्रकृति की नियति का एक हिस्सा है, जो पैदा तो मर्द की पहचान से होता है पर जैसे-जैसे वह बड़ा होने लगता है वैसे उसमें स्त्रीत्व के गुण जागृत होने लगते हैं। इतना ही नहीं उसका बर्ताव भी स्त्री की तरह ही होने लगता है। जैसे- रहन-सहन, बातचीत का ढंग, पुरुष की और आकर्षण आदि। मैं जानना चाहूंगा कि इसमें इन लोगों की क्या गलती है? वह भी हमारी तरह ही किसी मां-बाप की संतान हैं, किसी का भाई है, या समाज का वह हिस्सा है जिसे समाज से अलग करने का अधिकार किसी भी स्त्री या पुरुष को नहीं है। लेकिन लैंगिक भिन्नता के कारण इन्हें समाज से बहिष्कृत किया गया है। मानवता के विचार से देखाजाए तो मनुष्य जाति पर यह सबसे बड़ा कलंक है,जो अपनी ही बिरादरी के एक वर्ग पर अन्याय करता नजर आता है। प्रस्तुत आत्मकथा की 'लक्ष्मी' ने समाज के अन्यायकारी नियमों का डटकर प्रतिरोध किया और अपनी एक अलग पहचान स्थापित की। वह बस इतना चाहती है कि हिजड़ा पहचान के साथ ही एक मानव होने तथा मानवीय क्षमताओं को बिना किसी भेदभाव के समाज ईन्हे स्वीकार करें यही आग्रह करती है। क्या इस आग्रह को सम्मान पूर्वक स्वीकारा जाएगा?इसका जवाब यह आत्मकथा देगी यहां तक कि स्वयं लक्ष्मी इस बारे में हिजड़ा समुदाय से कहती है- **" इन हिजड़ों से मैं बार-बार कहती हूँ, समाज का जो हमें देखने का नजरिया है उसके लिए हम भी जिम्मेदार हैं। समाज में घुल मिल जाओ, उनसे बात करो फिर देखो यह नजरिया बदलता है या नहीं "5**

1) समाज कंठकों द्वारा यौन शोषण:-

इन लोगों का और समाज का संबंध बचपन से ही शोषण के माध्यम से जुड़ा है जिसमें समाज के कुछ लोगों द्वारा इनका लैंगिक शोषण होता है। लक्ष्मीनारायण जब सात साल का था तब पहली बार उसका यौन शोषण होता है। जबकी वह पहले से ही बीमार था और गांव शादी के लिए गया था। वही एक रिश्तेदार का लड़का उसे अंधेरे कमरे में ले जाता है और गलत काम करता है। इस बात का जिक्र लक्ष्मी प्रस्तुत आत्मकथा में करती है-

" मुझे कुछ याद नहीं पर उसने जब मेरे अंदर घुसेडा तो मुझे बहुत तकलीफ हुई और चक्कर आ गया " 6
कच्ची उम्र में ही जबकी उसे पता भी नहीं कि ये उसके साथ क्या हो रहा है? इतना ही नहीं उसे धमकाया भी जाता है कि अगर किसी को कुछ बताया तो देख लेना! जब जब लक्ष्मीनारायण गांव जाता है ये लडके उसका शोषण करते। पर कहीं तो भी विरोध होना जरूरी था, तभी यह सिलसिला रुकने वाला था। तब पहली बार प्रतिकार करने की हिम्मत लक्ष्मीनारायण करता है-'ए मुझे हाथ नहीं लगाना कोई...' इस तरह धमकाने पर यौन शोषण का सिलसिला टूटता है। पर जैसे-जैसे उम्र बढ़ती है वैसे-वैसे पुरुष के प्रति उसका आकर्षण बढ़ने लगता है और उसे यह अहसास होने लगता है कि वह और लड़कों से अलग है, एबनॉर्मल है। जिसका हल ढूंढने के लिए वह मुंबई में स्थित माहेश्वरी उद्यान पहुंचता है, जहाँ 'गे' लोगों के मिलने का ठिकाना था जिसका प्रतिनिधित्व अशोकराव कवि करता है। इन से मिलकर लक्ष्मीनारायण अपनी समस्या तथा आकांक्षाओं को उसके सामने रखता है जैसे- **" 'बाईक्या' हूँ लोग मुझे इसी नाम से चिढाते हैं। अभी कुछ दिनों से मैं पुरुषों की तरफ आकर्षित होने लगा हूं... मैं ही ऐसा अलग क्यों हूँ? मैं एबनॉर्मल तो नहीं हूँ ना?" इस पर अशोक हिम्मत बांधते कहता है-" तुम एबनॉर्मल नहीं हो बच्चे, नॉर्मल ही हो। एबनॉर्मल है यह हमारे आस-पास की दुनिया... ये हमें समझ नहीं सकती। पर तुम उसके बारे में मत सोचो। यहां आए हो ना... अब हम मिलकर इसमें से रास्ता निकालेंगे। अब तुम जो कर रहे हो,**

वही करो। अभी तुम बच्चे हो। पढ़ाई करो। डांस सीख रहे हो, वो सीखते रहो... कुछ भी बदलाव लाने की जरूरत नहीं है। एस.एस.सी. होने के बाद आना मेरे पास। फिर मैं तुम्हें सब समझा दूँगा"7 यहां आने के पश्चात लक्ष्मीनारायण में एक आत्मविश्वास जागृत होता है और पता चलता है कि वह 'गे' हैं एबनॉर्मल नहीं। साथ ही वह अकेला ही ऐसा नहीं है, और बहुत सारे लोग उस जैसे हैं अर्थात समानधर्मी।

यहाँ अशोकराव कवि की एक बात समाज को झकझोडने वाली थी कि- 'एबनॉर्मल है हमारे आसपास की दुनिया... ये हमें समझ नहीं सकती।' आखिर क्यों समाज ऐसे लड़कों का मजाक उड़ाता है? उन्हें बायक्या, छक्का या हिजड़ा कह कर चिढ़ाता है। जबकी इसमें इनका कोई भी दोष नहीं है। दोष है तो प्रकृति का, जिसने उन्हें शरीर तो पुरुष का दिया पर भावनाएं स्त्री की। जिस कारण वे पुरुष होते हुए भी पुरुषों की ओर आकर्षित होते हैं। इसी कारण इन्हें 'गे' कहा जाता है। हाईस्कूल की पढ़ाई के पश्चात लक्ष्मी रोहन नासिर तथा रवि के साथ यौन संबंध स्थापित करती है। इनमें रवि ही ऐसा पुरुष था जिसके लिए लक्ष्मी का पहली बार दिल धड़का और बेचैन भी हुआ। रवि ने सर्वप्रथम प्यार क्या होता है इसका एहसास दिलाया, शायद इसी का नतीजा रहा होगा कि लक्ष्मी ने अपने प्यार को अपनी सहेली निशा पर कुर्बान कर दिया। क्योंकि वह भी रवि को चाहती थी और रवि लक्ष्मी से शादी तो नहीं कर सकता था और ना ही उसकी जिंदगी लक्ष्मी के साथ रहकर संवर सकती थी। इसलिए दिल पर पत्थर रखकर वह रवि की जिंदगी से निकल जाती है।

यहाँ समाज की बात करें तो तृतीयपंथी से यौन संबंध की दरकार होती है। संबंध भी स्थापित किए जाते हैं,पर जब अधिकार देने की बात आती है तो यही समाज उन्हें दरकिनार करता नजर आता है। ऐसी दोगली मानसिकता में यह तृतीयपंथी पीस कर रह जाते हैं। और स्त्री पुरुष समाज से हटकर अपना एक नया समाज जहां सारे तृतीयपंथी रहते हैं बनाना पड़ता है। अगर थर्ड जेंडर के लोगों को पारिवारिक तथा सामाजिक सहयोग प्राप्त हो तो वे लोग भी स्त्री-पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चल सकते हैं। इसलिए समाज में ऐसे लोगों का स्वीकार होना चाहिए जिससे वे एक आम इंसान की तरह जीवन व्यतीत करें और स्त्री पुरुष समाज का ही एक हिस्सा बन कर रहें। जिसके लिए ऐसे लोगों के प्रति जन- जागृति आवश्यक है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि परिवार का साथ मिलें, शिक्षा मिलें, नौकरी में शुभ अवसर मिलें जैसे लक्ष्मी के परिवार वालों ने उसे शिक्षित किया, हिजड़ा कम्युनिटी ज्वाइन करने के पश्चात भी उसका स्वीकार किया, यही वजह रही कि लक्ष्मी सामाजिक कार्यों में अग्रसर रही। लक्ष्मी के परिवार की सोच यह थी कि- **"जिसे जैसा अच्छा लगे, वैसे जीने देना है। कोई उसकी जिंदगी में दखल नहीं देगा। "8** शायद यही वजह रही है कि लक्ष्मी के हिजड़ा बनने के पश्चात परिवार वाले थोड़े नाराज रहे पर बाद में एक दूसरे से बातें करने लगे। इसी पारिवारिक ताकत के कारण लक्ष्मी नारायण को लक्ष्मी की पहचान मिली।

हिजड़ा कम्युनिटी से लक्ष्मी का यही कहना था कि - **" लोग आप को अनदेखा करते हैं...आपको देखा ही नहीं ऐसा दिखाते हैं... फिर भी हमेंशा उनकी नजरों में रहो... उनसे बातें करो... हिजड़ो के बारे में समाज में जो गलतफहमी है, डर है, ये इसी से दूर होंगे।"9** इसी आशावाद के साथ लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी ने अपनी आत्मकथा के माध्यम से हिजड़ा कम्युनिटी एवं ट्रांसजेंडर की समस्याओं को पाठकों के समक्ष रखने का प्रयास किया है। लक्ष्मी का मानना है कि लीक से हटकर चलना है, चाहे तकलीफ ही क्यों ना हो। लक्ष्मी दो जगहों पर लीक से हटकर चल रही थी एक हमारा पूरा समाज और दूसरा हिजडा समाज। जब तक इन दोनों में बदलाव न आएगा तब तक यह एक दूसरे से अलग ही रहेंगे। यहाँ हिजड़ा समाज को अधिक जरूरत है कि वे स्त्री-पुरुष समाज में घुलमिल

कर रहें, जिस कारण समाज में इन लोगों के प्रति सहानुभूति निर्माण हो। क्योंकि समाज में हिजड़ों के प्रति भ्रांतियाँ अधिक फैलाई गई है। जैसे -

- **हिजड़े की मृत्यु होने पर उसे रात में देर से ले जाते हैं, और ले जाते समय सभी लोग उसे जूतों से मारते हैं।**
- **हिजड़े की अंतिम यात्रा कोई भी ना देखें इसलिए देर रात में निकलते हैं।**
- **यह बच्चे चुराते हैं और इन्हें अपने जैसा बनाते हैं आदि।**

इन सारे भ्रमों को दूर करना है तो हिजड़ों को समाज में घुल-मिलकर रहना होगा तभी यह संभव है। अपने अथक परिश्रम से लक्ष्मी ने यह कर दिखाया है। लेकिन आजादी के इतने वर्षों बाद भी एक समूह ऐसा है जो अपने इंसानी पहचान तथा मूलभूत मानवाधिकारों के लिए संघर्ष कर रहा है। आखिर कब तक...?

यमदीप' उपन्यास का कथानक हिजड़ा नाजबीबी के इर्द गिर्द घूमता है। वह इस उपन्यास की नायिका है । जब से उनका जन्म हुआ तब से लेकर घरवाले परेशान है । क्योंकि बच्चा हिजड़ा है । फिर भी माँ उनसे बहुत प्यार करती है । वह पढाई में तेज थी । लेकिन आठवीं कक्षा में पढते वक्त कुदरत के करिश्में के कारण आगे वह पढ न पाई। क्यों कि उस समय उसमें स्त्रीयोजित शरीरांग के साथ दाड़ी, मूंछ भी आ गए। वह दिल से टूट गई। समाज उन्हें देखकर हंसने लगा। समाज के भय से तंग आकर माँ - बाप हमेशा सोच रहे थे कि इसे क्या करें ? फिर उन्हें स्वयं इस बात का अहसास हो गया कि यहाँ पडा रहने से कोई फायदा नहीं ,सिर्फ प्रताड़ना के सिवाय कुछ नहीं मिलेगा इसी विचार से वह हिजड़ों की दुनिया में हिजड़ों की बस्ती में चली गई। पहले उनका नाम नंदरानी था हिजड़ों की बस्ती में आ जाने के बाद उनका नाम नाज बीबी रख दिया गया।

परिवार के जो सदस्य इन्हें अपने पास रखना चाहते हैं, परन्तु समाज उन्हें विवश कर देता है कि वह बच्चे को किन्नर समाज को सौंप दें। यदि परिवार ऐसे बच्चों को पालना चाहता है तो समाज रूकावट क्यों बनता है? यही सवाल यमराज उपन्यास में उठाया गया है कि नन्दरानी के माता पिता उसे अपने पास रखना चाहते हैं। नन्दरानी की माता उसे पढ़ा लिखा कर अपने पैरों पर खड़ा करना चाहती थी। नन्दरानी की मां के सामने महताब गुरु एक सवाल उठाते हैं कि- **"माता जी किसी स्कूल में आज तक हिजड़े को पढ़ते-लिखते देखा है। किसी कुर्सी पर हिजड़ा बैठा है। पुलिस में, मास्टरी में, कलेक्टरी में-- किसी भी। अरे! इसकी दुनिया यही है, माता जी--कोई आगे नहीं आयेगा कि हिजड़ों को पढ़ाओ, लिखाओ नौकरी दो --जैसे कुछ जातियों के लिए सरकार कर रही है।"** 10 किन्नरों को सामाजिक, शारीरिक, मानसिक भेद शोषण के दौर में से गुज़रना पड़ता है। महताब गुरु का संवाद किन्नरों के जीवित यथार्थ का सत्य है।

लेखक इस उपन्यास के माध्यम से यह बताना चाहती है कि साधारण लोग कितने संवेदन शून्य है इसके बगैर ये हिजड़े सबों से हमदर्दी रखने वाले है। वे ममता के सुख से भी वंचित है। फिर भी एक पागल औरत की बच्ची को पाल पोसकर बड़ा कर देता है। ऐसी बच्ची को साथ रखना कानूनी तौर पर जुल्म है। अगर यह बात पुलिस जान गया तो खतरा हो जाएगा। पुलिस उन्हें जीने नहीं देंगे। हर हिजड़ा एक गिरिया रखते हैं। यानी कि किसी मर्द के साथ रहती है। इस दुनिया में सभी को जीने का अधिकार है सिवाय हिजड़ों को। क्योंकि वे समाज से तिरस्कृत है । उन्हें समाज कोसता है । उनपर हँसी उठाती है। जब नाज बीबी उस बच्ची की भर्ती कराने केलिए स्कूल जाती है तो उन्हें देखकर अध्यापिकाएं और कुछ छात्र कानाफूसी कर रहे थे। तब नाज बीबी उनसे बिनती करती है कि – **"जब हम धंधे पर नहीं होते, बहनजी ,तो इस तरह का मजाक हमारे सीने में गाली की तरह लगता है। हम आसमान से तो नहीं टपकते हैं न? आप ही की तरह किसी माँ की कोख से जन्मे हैं। हाड –मांस का शरीर लिए। हमें तो अपने आप दुःख होता है इस जीवन पर। आप लोग भी दुखी कर देते हो"**11

विवेच्य उपन्यास में मानवी द्वारा नारी सुधार गृह के सफेदपोश चेहरे को बेनकाब करने के प्रयास में नेताओं का चरित्र भी सामने आने लगता है और यही जनता के रक्षक अपनी भक्षक भूमिका में दृष्टिगोचर होते हैं। प्रश्न उपस्थित होता है जिस मनुष्यता व मानवता की बात मुख्यधारा का समाज करता है क्या वह यही मानवता है कि अपने से कमजोर का शोषण करे ? नाजबीबी कहती हैं - **"सोच रही हूँ, मेम साहब, कि भगवान ने मुझे हिजड़ा बनाकर ठीक ही किया। अगर यह न बनाता तो जरूर मुझे औरत बनाता और तब ये सारे अत्याचार मुझे भी झेलने पड़ते"**12 के कथन में जीवित यथार्थ का राज़ निहित है। मुख्यधारा के लोगों को भी सोचने के लिए विवश कर देता है कि उनकी मानवता कितनी स्वार्थी है ?

समाज के साथ-साथ राज्य भी किन्नर समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व को नहीं स्वीकारता। महताब गुरु कहते हैं कि **"कोई कुछ नहीं करता। समाज भी नहीं, सरकार तो अपना वोट मांगने के लिए उन्हीं के सामने चारा फेंकेगी, न तो रोज़ मुर्गियों की तरह अंडे देकर आबादी बढ़ाएगी। हम कौन से अंडे देने वाले हैं। अल्ला मियां ने तो हमें ये नेमत दी ही नहीं।"**13 किन्नर समुदाय का यही जैविक यथार्थ है। इसी आधार पर समाज ने मुख्यधारा से इन्हें बाहर किया है। यहां मानव की उपयोगिता को समाज उनकी लैंगिक असमानता से क्यों सुनिश्चित करना चाहता है। यही किन्नर समाज के जीवित जैविक यथार्थ का विचारणीय प्रश्न है।

यहाँ हमें लेखिका नीरजा माधव की सराहना करनी होगी, जिन्होंने किन्नर सम्बन्धी कथानक का चयन कर सामाजिक सचेतता को दर्शाया है। यहाँ किन्नर समाज को मुख्य धारा से जोडने का प्रयास हुआ है। किन्नर समाज को स्वयं अपने प्रति संवेदनशील होने की भी आवश्यकता है। इतना ही नहिं उन्हे शिक्षा से संबंधित जागृत होना पडेगा तथा उसका प्रचार-प्रसार भी अपने समुदायों में करना होगा। ताकि किन्नर समाज का आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक दृष्टि से उत्थान संभव हो सके।

संदर्भ-

1)तेजिंदर - काला पादरी, साहित्य भण्डार - पृष्ठ- 21
2) प्रो. चमनलाल - दलित साहित्य : एक मूल्यांकन - पृष्ठ - 166
3) राकेश कुमार सिंह ,पठार पर कोहरा , भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली संस्करण -2005 ,पृष्ठ -07
4) पारू मदनलाईक, मैं क्यों नहीं, पृष्ठ - 165
5) मैं हिजड़ा में लक्ष्मी'- लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी, वाणी प्रकाशन, वर्ष 2015, प्रथम संस्करण- पृष्ठ 8
6) मैं हिजड़ा में लक्ष्मी'- लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी, वाणी प्रकाशन, वर्ष 2015, प्रथम संस्करण- पृष्ठ 28
7) मैं हिजड़ा में लक्ष्मी'- लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी, वाणी प्रकाशन, वर्ष 2015, प्रथम संस्करण- पृष्ठ 30
8) मैं हिजड़ा में लक्ष्मी'- लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी, वाणी प्रकाशन, वर्ष 2015, प्रथम संस्करण- पृष्ठ 60
9) मैं हिजड़ा में लक्ष्मी'- लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी, वाणी प्रकाशन, वर्ष 2015, प्रथम संस्करण- पृष्ठ 114
10) नीरजा माधव, यमदीप, सामायिक प्रकाशन, नई दिल्ली- 2021
11) यमदीप – नीरजा माधव –सुनील साहित्य सदन , नई दिल्ली -2009 -पृष्ठ सं 50
12) नीरजा माधव, यमदीप, सामायिक प्रकाशन, नई दिल्ली- 2021नाजबीबी
13) नीरजा माधव, यमदीप, सामायिक प्रकाशन, नई दिल्ली- 2021

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

समकालीन हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श

डॉ. विजय पाटिल
वरिष्ठ शिक्षक
उच्च.माध्य.विद्या.गवाड़ी,जिला बड़वानी,मप्र.

शोध सार

बीसवीं सदी के अंतिम दशकों में शुरू हुआ अस्मिता मूलक विमर्श आदिवासी विमर्श है। विशाल और बहुराष्ट्रीय शक्तिशाली कंपनियों ने आदिवासी समाज को उनके जल जंगल जमीन से बेदखल कर दिया जिससे आदिवासी इलाकों में बड़े पैमाने पर विस्थापन को जन्म दिया। विशालकाय महानगरों ने उनकी संस्कृति लोकगीतों साहित्य को भी समाप्त कर दिया। फिर आदिवासियों ने अपने लिए नए इतिहास की नए सिरे से तलाश की।नए नेतृत्व की पहचान कर समर्थ आदिवासी साहित्य को जन्म दिया। आदिवासी विमर्श उन सभी आदिवासी अस्मिता की पहचान उसके अस्तित्व संबंधी संकटों के खिलाफ जारी प्रतिरोध का साहित्य है।

प्रस्तावना

आदिवासी दर्शन एवं साहित्य का मूलाधार पुरखा साहित्य ही है।पुरखा साहित्य आदिवासी समाज में हजारों वर्षों से जारी मौखिक साहित्य की परंपरा है। 20वीं सदी में इसके संकलन ,संपादन और प्रकाशन में कार्य भी हुए हैं ।आदिवासी चिंतक इस मौखिक परंपरा को मौखिक साहित्य या लोक साहित्य कहने के बजाय पुरखा साहित्य कहते हैं। जिसमें आदिवासी साहित्य पर या उस साहित्य से है, जिसमें आदिवासियों का जीवन और समाज उनके दर्शन के अनुरूप अभिव्यक्त हुआ हो। आदिवासी साहित्यकारों में हरिराम मीणा, महादेव टोप्पो, आईनी हांसदा प्रमुख है। आदिवासी शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है ,आदि और वासी इसका मूल अर्थ मूल निवासी होता है ।जारवा जनजाति को विश्व की सबसे प्राचीन जनजाति मानी जाता है। संविधान के अनुच्छेद 342 के अनुसार अनुसूचित जनजातियों या आदिवासी या आदिवासी समुदाय या समुदायों का भाग या उनके समूह जिन्हें राष्ट्रपति द्वारा एक सार्वजनिक अधिसूचना से देश भर में मुख्यतः वनों ओर पहाड़ी इलाकों में फैली हुई है, को विशेष दर्जा दिया गया।वर्ष 2021तक की जानकारी भारत में लगभग 700 से 750 से अधिक जनजातीय हो सकती है। विभिन्न भागों में बसी हुई प्रमुख जनजातियां गोंड ,मीना ,संथाल गड़वा, कोरकू, भील,है।

मुख्य शब्द :__ समकालीन, आदिवासी, जनजातीय, पुरखा, विमर्श, संस्कृति, अस्मिता, समुदाय, हाशिए, अस्तित्व, जंगल जनभाषा।

समकालीन हिंदी साहित्य और आदिवासी विमर्श

विश्व मे आदिवासी समाजों ने अपनी लड़ाई खुद ही लड़ी है ।लेकिन मुख्य धारा के क्रांतिकारी साहित्य में भी उनके प्रति संवेदनशीलता प्रदर्शित करते हुए उनकी समस्याओं के चित्रण की जहमत नहीं उठाई ।समकालीन हिंदी साहित्य स्त्री विमर्श और दलित विमर्श में आगे बढ़ाने की कोशिश कर रहा थामे पर आदिवासी विमर्श सबसे नवीन विमर्श है।यूनेस्को ने भारत की 196 जनभाषाओं का अस्तित्व खतरे में बतलाया उनमें अधिकांश भारत की आदिवासी भाषाएं है। यह वह प्रश्न है जिसमें आदिवासियों की अस्तित्वगत एवं अस्मितागत बेचैनी ने एक पृथक एवं स्वतंत्र धारा के रूप में आदिवासी विमर्श संभावना को बल प्रदान किया है।पिछले दो दशकों में समकालीन

हिन्दी साहित्य में आदिवासी लेखकों ने विशेष कर झारखंड क्षेत्र के लेखकों ने अपनी पेठ और पहचान बनाई है। आज आदिवासी साहित्यकलम की धार आंचलिक क्षेत्र और राष्ट्रीय स्तर पर असरदार बन चुकी है। अगर आदिवासी विमर्श को साहित्य लेखन के धरातल पर देखें तो आदिवासी रचना चिंता मुख्य रूप से कविता कहानी उपन्यास और संस्करण के धरातल पर प्रकट होती है। आदिवासी साहित्य हिंदी के अस्मितावादी विमर्शों में सबसे नवीन है।वर्षों से हाशिए पर रखे गए आदिवासी समुदाय को आज साहित्य में सम्मानजनक जगह मिल रही है। समकालीन हिंदी कविता में आदिवासी जीवन को व्यक्त करते कवि ने अपनी कविता के माध्यम से आदिवासी की पहचान की कोशिश की है। स्पष्ट है कि आदिवासी की मूल पहचान उसकी संस्कृति से जुड़ी हुई है, जब तक यह संस्कृति है तब तक उनकी पहचान सुरक्षित है। और जैसे ही यह संस्कृती खतरे में पड़ेगी उनकी पहचान भी खतरे में पड़ जाएगी है। आदिवासी साहित्य समाज और साहित्य के विभिन्न पहलुओं को समझने में मददगार है। आदिवासी विमर्श बीसवीं सदी के अंतिम दशकों में शुरू हुआ अस्मिता मूलक विमर्श है। आदिवासी विमर्श साहित्य में कविता, कहानी, उपन्यास प्रमुख विधाओं में रचनाएं हुई है इसमें कविता सर्वाधिक महत्वपूर्ण विधा है।निर्मला पुतुल की नगाड़े की तरह बजते शब्द, रामदयाल मुंडा का नदी ओर उसके संबंध नगीत वापसी प्रमुख है। कुजूर मोतीलाल,महादेव टोप्पो की कविताएं भी अपने प्रतीक चरित्र और घटनाओं की काव्यात्मक कारण विशिष्ट पहचान बनाने में सफल रही हैं। सच्चा आदिवासी कटी पतंग की तरह भटक रहा है, कहते हैं हमारा देश 21वीं सदी की ओर बढ़ रहा है।

मदन कश्यप की उक्त कविता आदिवासी के प्रति धूर्त चेहरे को सामने लाती है ।

आदिवासी गद्य में कवि कहता है
कल एक पहाड़ को ट्रक पर जाते हुए देखा
उसमें पहले नदी गई
अब खबर फैल रही है
मेरा गांव भी यहां से जाने वाला है।

आदिवासी साहित्य विमर्श के प्रमुख रचनाकारों में रमणिका गुप्ता का सीता मौसी, कैलाश चंद्र चौहान भंवर,रानेंद्र का ग्लोबल गांव का देवता हरिराम मीणा ध्वनि प्रमुख रचनाएं है मुंशी प्रेमचंद के साहित्य में गोदान उपन्यास मेंएवम सद्गति कहानी में आदिवासी विमर्श की झलक दिखलाई देती है। उन्होंने अपनी रचनाओं के जरिए महाजनी सभ्यता के विरुद्ध आवाज उठाई जिनका आदिवासी समाज एवं जीवन में हस्तक्षेप आज भी बद्सवास जारी है और जो आदिवासी दमन एवं शोषण के मूल में मौजूद है।प्रेमचंद,रेनू,संजीव और नरेंद्र का साहित्य भले ही आदिवासी साहित्य नहीं है पर आदिवासियों की समस्याओं पर लिखा गया महत्वपूर्ण साहित्य है।आदिवासी विमर्श हिंदी के अस्मितावादी विमर्शों में सबसे नवीन है और वर्षों से हाशिए पर रखे गए आदिवासी समुदाय को आज साहित्य में जगह मिल रही है।इस विमर्श में समकालीन हिंदी साहित्य के कवि अपनी कविताओं में आदिवासियों के जीवन उनकी स्थितियां और संघर्ष उनकी आकांक्षाओं और सपनों को कविता में अभिव्यक्त कर रहे हैं।विशेष यह है कि अधिकतर आदिवासी साहित्य वाचिक परंपरा का हिस्सा रहा है इसमें कविता सर्वाधिक महत्वपूर्ण विधा रही है ।इनमें विभिन्न सामाजिक विद्रोह नारी के जीवन संघर्ष विस्थापन और शिक्षा अभाव एवं गरीबी और अस्तित्व के प्रश्नों को प्रमुखता से जगह मिली है। हिंदी उपन्यास में आदिवासी विमर्श में रेणुका का मैला आंचल, महाश्वेता देवी एक हजार चौरासी की मां, वॉटर वेंगरा का सुबह शाम, तलाश,गैंग, लीडर, कच्ची कली रमणिका गुप्ता सीता मौसी हरिराम मीणा, महादेव टोप्पो प्रमुख साहित्यिकार है।

समकालीन हिन्दी साहित्य में आदिवासी विमर्श की अवधारणा

आदिवासी समकालीन हिंदी साहित्य की अवधारणा को तीन प्रमुख तत्व में विभाजित किया गया है_

1. आदिवासी विषय पर लिखा गया साहित्य आदिवासी साहित्य है। यह अवधारणा गैर आदिवासी लेखन की है परंतु समर्थन में कुछ आदिवासी लेखक भी है। रमणिका गुप्ता, संजीव राज,बजरंगी तिवारी गैर आदिवासी है। हरिराम मीणा, महादेव टोपा, आईवी हांसदा आदिवासी लेखक थे।

2. दूसरी अवधारणा उन आदिवासी लेखन और साहित्यकारों की है जो जन्मना औ बुद्धि के आधार पर आदिवासियों द्वारा लिखे गए साहित्य को भी आदिवासी साहित्य मानते हैं।

3. तीसरी अवधारणा उन आदिवासी लेखन की है जो आदिवासी के तत्वों का निर्वाह करने वाले साहित्य को ही आदिवासी साहित्य के रूप में स्वीकार करते हैं आदिवासी साहित्य का रांची घोषणा पत्र आदिवासी साहित्य की विमर्श तक का केंद्रीय बिंदु बन गया है। आदिवासी साहित्य से तात्पर्य वह साहित्य से जिसमें आदिवासियों का जीवन और समाज उनके दर्शन के अनुरूप अभियुक्त हुआ हो। आदिवासी साहित्य को यूरोप और अमेरिका में नेटिव अमेरिकन कलर्ड लिटरेचर, स्लैब लिटरेचर ऑस्ट्रेलिया में ओरिजिनल लिटरेचर भारत में इसे हिंदी अन्य भारतीय भाषाओं में आदिवासी साहित्य कहा जाता है ।आदिवासियों में आदिवासियत को ना तो आप वर्गीकृत कर सकते हैं ना किसी मानक से नाप सकते हैं। क्योंकि यह तो विरासत में मिला हुआ वह गुण है जिसे कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता और नहीं इसे कोई खारिज कर सकता है।आदिवासी साहित्य वाचिक तौर पर अपने मूल आदिवासी भाषाओं में समृद्ध और विपुल है।भारतीय भाषाओं में आदिवासी साहित्य लेखन निरंतर प्रगति पर है और हर वर्ष एक सौ से अधिक आदिवासी रचित पुस्तक विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित हो रही है।भारत में आदिवासी साहित्य पांच भाषा, में वाचिक और लिखित रूप में उपलब्ध है ।अधिकांश आदिवासी संस्कृति प्राथमिक धरातल पर जीवन यापन करती हैं ।वे सामान्यतः क्षेत्रीय समूह में रहते हैं और उनकी संस्कृति अनेक दृष्टि से स्वयं पूर्ण होती है। दर्शकों के संघर्ष और प्रतिरोध के बाद आज आदिवासी साहित्य को विशेष रूप से केंद्रीय परिधि में लाया जा रहा है। आदिवासी समाज के संवाद करने का आदिवासी साहित्य महत्वपूर्ण नजरिया हो सकता है। आदिवासी साहित्य में उचित अवधारणा एवं मापदंड होना आवश्यक है। इक्कीसवीं सदी के विमर्शों में आदिवासी विमर्श केंद्र में है ।आदिवासी साहित्य में राजनीति और अस्मिता दोनों का समावेश है। आज आदिवासी साहित्य रचना के नाम पर लेखन में प्रतिस्पर्धा हो रही है ।आदिवासी साहित्य को समझने के लिए आदिवासी की वाचिक परंपरा को समझना होगा। जो अत्यधिक समृद्ध है। आदिवासी साहित्य के बारे में सही समय सही अवधारणा निर्मित करना आवश्यक है।आदिवासी साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से जिसमें आदिवासियों का जीवन उसकी समझ में दर्शन के अनुरूप बसा हुआ है।

आदिवासी विश्व का ऐसा मानव समुदाय है जिन्हें अपने पूर्वजों से समृद्ध संस्कृति परंपरा प्राप्त है। वह जियो और जीने दो जैसे विचारों के पक्षधर है। युवाल हरारी के अनुसार आदिवासी किसी भी विकसित समाज के लोगों से अधिक सच के करीब है क्योंकि वह अपनी पांचो इंद्रियों का इस्तेमाल सच को जानने के लिए करते हैं। सजीविता धारणीय विकास में विश्वास रखने वाले आदिवासियों की जीवन विधि पूरे विश्व के लिए अनुकरणी है।यदि जनमानस आदिवासियों के जैसा संयमित संतोषी जीवन जी सके तो पृथ्वी पर अधिक खुशहाली होगी और मानवता बची रहेगी।

समकालीन हिंदी साहित्य में आदिवासी साहित्य

पिछले पचास वर्ष में हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श ने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है। आदिवासी साहित्य के प्रमुख साहित्यकार डॉ रोज केरकेट्टा, पीटरपौल एक्का, वाल्टर भेंगरा, महादेव टोप्पो ,मंगलसिंह मुंड,अंजू बरवा, डॉ.देव लकड़ा, डॉक्टर शोभा यालमो,हरिराम मीणा, डॉ गंगासहाय मीणा, उषाकिरण आत्राम ,सुनील गायकवाड ,डॉ स्नेह लता नेगी हैं।हाल वर्षों में आदिवासी लेखकों की रचनाओं को देश के विभिन्न विश्वविद्यालय में स्नातक और स्नातकों के पाठ्यक्रम में प्रधानता के साथ शामिल किया गया है। महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय वर्धा महाराष्ट्र, इंदिरा गांधी जनजाति विश्वविद्यालय अमरकंटक, डॉ.अंबेडकर मराठवाड़ा विश्वविद्यालय औरंगाबाद, राजीव गांधी विश्वविद्यालय केरल ,राजीव गांधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, कोच्चि विज्ञान एवम प्रोधोयोगिक विश्व विध्यालय केरल,हिंदी उपन्यासों और कहानियों में आदिवासी जीवन और इसी तरह विभिन्न मुद्दों को आधार बनाकर शोधार्थी स्रोत कार्य कर रहे हैं ।यह आदिवासी रचनाकारों के लिए बड़ी उपलब्धि है। आने वाले दिनों में हिंदी लेखन में आदिवासी स्वर सामने आने लगेंगे आदिवासी रचनाकार और अधिक तत्परता से लेखन में क्षेत्र में सक्रिय होने की जरूरत है ।आदिवासी साहित्य के प्रमुख साहित्य रचना अंगूठा एकलव्य का,अंतहीनबेडिया अतीत के प्रसंग,कविमन जनीमन,मंजनी मनोत्तर आत्मपथ,वाचिकता,हिंदी साहित्य में आदिवासी हस्तक्षेप,भारत के मूल निवासी,रथ के पहिए ,पाव तले की दूब,जंगल के फूल,मेला आंचल,परीक्षा गुरु,वसंत मालती,आधारशिला,कचनार ,रथ के पहिए प्रमुख काव्य रचना है।

उपसंहार

संक्षेप में हम यह कर सकते हैं की हिंदी साहित्य मे आदिवासी चित्रित सामाजिक स्थिति आज भी दयनीय और करुणा से भरी है। रोजगार की तलाश,विकास के नाम पर घटते जंगलों से पलायन उनकी समस्याओं का प्रमुख कारण है।आज आदिवासियों को जब उनके जल जंगल जमीन जमीन से अलग किया जा रहा है तो उनमें एक असंतोष का भाव पैदा होने लगा है।इतना सब कुछ होने के बाद भी आदिवासी समाज अपने संस्कारों एवं संस्कृतियों की पहचान बनाए रखने के लिए कटिबद्ध है। समकालीन आदिवासी साहित्य मात्र समाज का ही निर्माण नहीं करता बल्कि उसके विकास में भी अपनी भूमिका निभाता है।हिंदी साहित्य में समय-समय पर आदिवासी समाज जनजीवन का चित्रण किया है।क्योंकि आदिवासी यहां के मूल निवासी है। आदिवासी शब्द से तात्पर्य मूल निवासी, वनवासी, भारतीय संविधान में उन्हें अनुसूचित जनजाति के नाम से संबोधित किया गया है। हिंदी साहित्य में आदिवासी साहित्य पर जब हम विचार करते हैं तो निश्चित रूप से आदिवासी जनजातियों में जगा आत्मभान हमारा ध्यान खींचता है कि हम यहां के मूल निवासी है। और अब हमें ही यहां से निर्वासित किया जा रहा है।भारत में जनजातियों को सात विभागों मे बांटा गया है,उत्तर, पूर्वोत्तर,पूर्वी,मध्य,पश्चिम दक्षिण और द्वितीय क्षेत्र।आदिवासियों का अपना धर्म है और वह प्रकृति पूजक है।भारत में प्रमुख रूप से भील, गोंड, संथाल न्यासी,हो, मोमपा, तगीन, तालीम, खामती, मेम्बा, कंजर, आपातानी, मुंडा,शांसी नट, सपेरे, पासी बोरी, चकमा, दुबारी कोली, मीना, गार्सिया, लेपचा, दारू,गोंडा जनजातीय निवास करती है। ऐसे अनेक आदिवासियों को केंद्र में रखकर

भारतीय स्तर पर अनेक भाषाओं में साहित्य लिखा जा रहा है। हिंदी साहित्य में आदिवासी पर अनेक विधाओं में साहित्य सृजन का आरंभ हुआ है।

स्पष्ट है कि आदिवासी समाज सदियों से जातिगत भेद वर्ण व्यवस्था विदेशी आक्रमणों और वर्तमान के सभ्य कहे जाने वाले समाज द्वारा जंगल और पहाड़ों से खदेडे गये है। उनकी लोक कला उनका साहित्य सदियों से

मौखिक रूप में रहा है। इसका कारण उनकी भाषा के अनुरूप लिपि का विकसित न होपाना। आज समकालीन हिंदी साहित्य में आदिवासी साहित्य वर्षों बाद मुख्य धारा के साथ जोड़कर आदिवासी समाज संस्कृति को संरक्षित किया जा रहा है।

समकालीन हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श समाज के प्रति नवीन दृष्टिकोण विकसित करता है,तथा आदिवासी संस्कृति को बचाए रखने में सहयोग देता है।नई सदी में हिंदी साहित्य में आदिवासी चिंतन ,साहित्य एवं समाज के लिए चर्चित विषय बना हुआ है। आदिकाल से ही आदिवासी समाज को एक पिछड़ा समाज मानकर उनके साथ दोयम दर्जे का व्यवहार किया जा रहा है ।आदिम जातियां और जनजातियों के लिए आदिवासी शब्दों का प्रयोग प्राचीन समय से किया जाता है ।उन्होंने अपनी सभ्यता और संस्कृति की धरोहर को युगों से संजोया हुआ है।सभ्यता और संस्कृति विकास में उनकी भूमिका मुख्य धारा से अधिक वास्तविक समानता और स्वतंत्रता के भाव आदिवासी समाज में स्थाई रूप से देखने को मिलते हैं। आदिवासी समाज में स्त्री को मुख्य धारा में समाज की तरफ बांधकर नहीं रखा जाता है। वे स्वतंत्र, निर्भय होकर समाज में अपना योगदान दे रही है।वर्तमान साहित्यकारों ने आदिवासि को केंद्र में रखकर कई कहानियां, नाटक, उपन्यास ,काव्य,विधाओं में रचना की है। रहन-सहन आचार विचार संस्कृती को प्रस्तुत किया गया हैं।हिंदी साहित्य में आदिवासी साहित्य प्राचीन एवं जीवंत साहित्य है।हिंदी साहित्य में आदिवासी संस्कृति दर्शन जीवन शैली प्रकृति और उनकी समस्याओं का सचिव चित्रण मिलता है। यह साहित्य स्वांत सुखाय ना होकर प्रतिबद्ध साहित्य है, और बदलाव के लिए कटिबद्ध है। इसका स्वरूप व्यापक एवं विस्तृत है ।संसार में जहां-जगह यह समूह रहते हैं उनसे संबंधित सारा साहित्य आदिवासी साहित्य में समाविष्ट है! यह साहित्य वेदना संसार का दर्शन कराने वाला एवं नए जागरण का उपासुक्त है । आदिम भारत के नवनिर्माण का स्वरूप स्वप्न आदिवासी साहित्य के बहाने अंकुरित हो रहा है।

संदर्भ ग्रंथ

1. सीमा केनारिया, आदिवासी साहित्य में आदिवासी समाज का संस्कृति का विवेचनात्मक अध्यन।

2. आदिवासी साहित्य, विकिपीडिया गूगल।

3. श्री मनीष सोलंकी, हिन्दी साहित्य में आदिवासी साहित्य।

4.प्रो.एस आर जयश्री, समकालीन हिंदी साहित्य विमर्श

5. डॉ. विश्वासी एक्का, सहा प्रा. हिंदी विभाग का लेख सारांश

6. डॉ. एस विजया, समकालीन हिंदी साहित्य और विमर्श आदिवासी विमर्श।

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

अस्मितामूलक विमर्श : एक वैचारिकी संदर्भ

डॉ. युवराज राजाराम मुळये

सहयोगी प्राध्यापक एवं हिंदी विभाग प्रमुख
श्री सिद्धेश्वर महाविद्यालय माजलगाव
तहसील माजलगाव,जिला बीड महाराष्ट्र

शोध सारांश :

अस्मिता मूलक विमर्श परंपरागत, रूढ़िवादी परंपराओ और सिद्धांतों के विरुद्ध एक वैचारिक विद्रोह है जो एक पक्ष विशेष की समस्या व सत्ता की उपेक्षा को इंगित करता है। अस्तित्व मूलक विमर्श में अस्मिता के बोध कोसतत् प्रकट होते रहना, निरंतर आविर्भावित होते रहना और अनुभूति के साथ उभरते रहना है जिससे हाशिए केसमाज के जीवन संघर्ष को संवेदना के साथ विस्तृत फलक पर उकेर कर के उनके प्रति मानवीय संवेदना का विकास किया जा सके और उनके प्रति मन में सकारात्मक दृष्टिकोण का विकास हो। हाशिए पर धकेल दिए गए लोगों को एक दूसरे के संघर्ष परक इतिहास से प्रेरणा मिल सके जिससे उनमें अपने अस्तित्व एवं अस्मिता के बोध की जिजीविषा और सजगता विकसित हो। सभ्यता के विकास एवं आर्थिक जगत में आए परिवर्तनों ने सिद्धांतों परं पराओं की आड़ में समाज के विभिन्न पक्षों की स्थिति में परिवर्तन ला दिया जिससे उनको अपने अधिकारों से बेद खल होना पड़ा। अस्मिता मूलक विमर्श उन सभी पक्षों के अधिकारों के प्रति सजगता एवं चेतना को साहित् में व्यक्त करने का प्रयास है जिसकी शुरुआत बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में साहित्य जगत में परिलक्षित होती है जो शीघ्ही विस्तृत एवं व्यापक फलक पर अपने आप को प्रतिबिंबित करने लगा हैं आज अस्मिता मुल्क विमर्श में ना केवल स्त्री, दलित और आदिवासी की बात होती है बल्कि किन्नर, बालक, वृद्ध, किसान मजदूर, युवा,पर्यावर एवं समस्त चराचर जगत को अभिव्यक्ति देने का महती प्रयास परिलक्षित होता है। अस्तित्व मूलक विमर्श मेंजहां एक और संघर्षरत लोगों के संघर्ष को उकेरा व उठाया है वहीं दूसरी ओर साहित्य के स्वरूप में भी सकारात्मक परिवर्तन लाने का कार्य किया है।

बीज शब्द : अस्मिता, विमर्श, अस्मिता विमर्श, अस्मितावादी सिद्धांत, वृद्ध विमर्श, स्त्री विमर्श. हाशिया,अधिकार कर्तव्य, आन्दोलन, सहानुभूति, स्वानुभूति।

मूल आलेख :

अस्तित्व से अर्थ मौजूदगी, विद्यमानता एवं सत्ता का भाव अर्थात निर्णय प्रक्रिया में समान अधिकार से हैं और विमर्श से तात्पर्य विचार व विवेचन से है जो तथ्य व स्थिति पर विचार करके सुधारवादी दृष्टिकोण के साथ वास्तविकता का उद्घाटन करते हैं। अतः अस्मिता मूलक विमर्श हाशिए पर गए लोगों की मौजूदगी और उन की निर्णय प्रक्रिया में भागीदारी तथा उनके जीवन संघर्ष पर विचार विवेचन करते हुए उनकी वास्तविक स्थिति का उद्घाटन करना एवं उनके प्रति मानवीय संवेदना को उभार करके उनकी दशा में परिवर्तन लाना है। डॉ. नगेन्द्र के अ नुसार अस्तित्व विमर्श उन सभी परंपरागत तर्कसंगत मान्यताओं सिद्धांतों व विचारों का विरोध करता है जिसमें कि सी पक्ष या वर्ग की सत्ता/विधमानता एवं उनकी समस्याओं की उपेक्षा हुई है जिससे वह दोयम दर्जे में रहने को म जबूर हुआ।

सामान्यतः अस्मिता विमर्श सिद्धांत व विचार की अपेक्षा व्यक्ति को महत्व देता है जो विचारों एवं सिद्धांतों की चकाचौंध में अंधेरे में ढकेल दिया गया है यह उन सभी विचारों, संस्थाओं, मान्यताओं का विरोध कर ता है जो मानवीय एवं मानवेतर पक्षों को गौण बनाते या करते हैं तथा उनकी समस्या एवं अधिकारों की उपेक्षा क

रते हैं। गुप्तजी ने अस्तित्व वादी विमर्श को व्यक्तिगत स्वतंत्रता का प्रबल समर्थक और व्यक्ति को गौण बनाने के कारण विज्ञान व सामाजिकता का घोर विरोधी माना है इन्होंने अस्तित्व के मूल में मानवतावादी दृष्टिकोण को स्था न दिया है। डार्विन का " की उत्तरजीविता सिद्धांत मानव जीवन के संघर्ष की बात करता है जो कि कहीं ना कहीं इसी अस्मिता मूलक विमर्श को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सहयोग व संबल प्रदान करता है।

अस्मिता मूलक विमर्श यह बतलाता है कि किसी एक पक्ष से जुड़े विचारों, बाह्य व आंतरिक परिस्थितियों, मान्यतओं को दूसरे पक्ष पर थोपा नहीं जाना चाहिए उसे अपने जीवन की प्रवाहमयता का चुनाव स्वयं करने देन चाहिए। अस्मिता मूलक विमर्श के मूल में अस्मिता और अस्तित्व के लिए संघर्ष रहा है और इस संघर्ष की शुरुआत दो पक्षों में किसी एक पक्ष को महत्व न देना, किसी एक पक्ष पर जबरन (आचारविचार, मान्यताओं, परम्पराओं के नाम पर) दबाव बनाकर अधीनस्थ व अधिकारों से वंचित रखने की प्रवृति तथा किसी एक पक्ष को अक्षम मानकर उसके प्रति हीनता जन्य व पक्षीय विचार रहे है जिससे पीड़ित, वंचित, शोषित, दमित पक्ष स्वयं की स्वतंत्रता का व अस्मिता को लेकर सोचने पर विवश होता है।

हिन्दी साहित्य में अस्मिता मूलकविमर्श बीसवीं शताब्दी के उत्तार्द्ध में प्रारम्भ होकर शीघ्र ही विस्तृत फलक, स्वरूप व आयामों में अपने आपको व्याप्त कर लिया। आज अस्तित्व विमर्श को मानवीय और मानवेतर स्वरूपोंमें देखते है। मानवीय स्वरूप में स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, किन्नर विमर्श, आदिवासी विमर्श, बाल विमर्श, वृद्धविमर्श, किसानमजदूर विमर्श, युवा विमर्श, अल्पसंख्यक विमर्श इत्यादि रूपों के परिलक्षित होते हैं। तथा मानवी य इतर स्वरूप में पर्यावरण विमर्श, पशु पक्षियों का विमर्श, सांस्कृतिक विमर्श, भाषाई विमर्श इत्यादि देखने को मि लतेहैं।

साहित्य में अस्मितामूलक विमर्श दो दृष्टिकोण से प्रचलित हुआ। इसमें प्रथम सहानुभूति परक लेखन थाइसके अं तर्त लेखक स्वयं उस पक्ष से संबंधित नहीं होता है जिस पक्ष का विमर्श वह साहित्य में कर रहा है। इस प्रकार केलेखन को परकाया प्रवेश मूलक लेखन भी कहा जा सकता है जिसमें लेखक हाशिए में धकेले गए पक्ष के जीवन सघर्षों को देखता है, विचारता है, जो उसके अतंर्तम में चेतना की एक किरण जगा देता है जिस के आलोक में वह अपने आप को हाशिए के पक्षों के साथ देखता है और उनके जीवन संघर्षों को साहित्य में उकेरते हुए विचार व वि वेचन करता है तथा मानवीय संवेदना को जाग्रत करने का प्रयास करता है। जैसे- प्रेमचंद की रचना 'ठाकुर का कुआं' व 'सद्गति' में इस प्रकार का सहानुभूति परक अस्मिता मूलक विमर्श का रूप दृ ष्टिगोचर होता है।

दूसरा दृष्टिकोण स्वानुभूति परक लेखन का रहा है जिसमें लेखक स्वयं हाशिए पर धकेल दिए गए पक्ष का होता है और वह अपनी वेदना, व्यथा, विद्रूपता तथा समाज के दूसरे पक्ष द्वारा स्वयं एवं समानधर्मा पक्ष पर किए जा रहे अन्याय, अत्याचार, शोषण की आत्मसात् पीड़ा को अभिव्यक्त करता है जैसे- ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' में इसी प्रकार का स्वानुभूतिपरक अस्मितामूलक विमर्श देखने को मि लता है।

स्त्री अस्मितामूलक विमर्श में स्त्री के प्रति मानवीय जीवन मूल्यों की दोयम दर्जे की संवेदना से विकसित मानसिकता रेखांकित करने का प्रयास किया गया है। दलित अस्मिता मूलक विमर्श में समाज के शोषित पीड़ित वं दमित पक्ष की पीड़ा, एवं दूसरे पक्ष द्वारा इनके प्रति किए गए अमानवीय व्यवहार, कृत्य को पूर्ण सजगता के साथ उभारा है। जो समाज के अन्य वर्गों की इनके प्रति विकृत व वैमनस्य परक मानसिकता को प्रतिबिंबित करता है। किन्नर अस्मिता मूलक विमर्श में इनकी सामाजिक उपेक्षा, लिंगभेद को अभिव्यक्त किया है जो इंसानियत के संक

ट के रूप में उभर कर सामने आता है और यही संकट किन्नर की वेदना पीड़ा हताशा कुंठा के स्वरूप में साहित् में अभिव्यक्त हुआ है। बाल अस्मिता मूलक विमर्श में घोर शिक्षा केंद्रित परिवेश में बालकों के ऊपर बढ़ते शिक्षक द बाव एवं बाल मनोविज्ञान तथा बालको के बालपन के हनन के रूप में देखा जा सकता है जिसमें बालकों की नैसर्गिक प्रतिभा एवं विचारों को दबाने, गला घोंटने का काम किया जा रहा है। आदिवासी अस्मिता मूलक विमर्श में सभ्यता, औद्योगिकीकरण एवं विकास के नाम पर जल, जंगल, जमीन के विदोहन के विभिन्न रूपों, आदिवसीयों की आदिवासियत के विस्थापन को इंगित किया गया है। वृद्ध विमर्श में वृद्धों की पारिवारिक उपेक्षा, उनके एकांकी पन एवं उनकी आशा और आकांक्षाओं को रेखांकित किया जा रहा है जिसे राजी सेठ के कहानी संग्रह 'यह कहानी नहीं' में भलीभांति देखा व समझा जा सकता है। इसी प्रकार किसान, मजदूर, युवा, अल्पसंख्यक व प्रवासी वर्ग की अस्मिता मूलक विमर्श में इन वर्गों की वेदना, अभाव युक्त जीवन, उपेक्षा को निरूपित करने का प्रयास रहा है।

मानवीय इतर पक्षों के विमर्श में पर्यावरणीय अस्मिता मूलक विमर्श आधुनिक साहित्य में प्रमुखता के सा थ अभिव्यक्त हुआ है जिसमें पर्यावरणीय चिंताओं समस्याओं एवं मानव जाति पर पड़ने वाले प्रभाव को अभिव्यक्त किया है। रणेंद्र के उपन्यास 'ग्लोबल गांव के देवता' में पर्यावरणीय चिंताओं को भलीभांति देखा जा सकता है। स्त्री विमर्श बीसवीं शताब्दी के उत्तार्द्ध में प्रचलन में आया, प्रारम्भ में पुरुष वर्ग ने ही इस पर लेखनी चलाई जो एक तरह से सहानुभूति परक लेखन था। प्रेमचंद जी के उपन्यास 'निर्मला' व 'सेवासदन' और नागार्जुन के उपन्यास ' कुंभीपाक' व 'रतिनाथ की चाची' में स्त्री अस्मितामूलक विमर्श देखने को मिलता है। बीसवीं शताब्दी के अंतिम दो दशक में महिला लेखिकाओं ने भी अपने मुद्दों पर जागरूक होकर लिखना प्रारंभ किया जिनमें प्रभा खेतान, मन्नू भं डारी, रमणिका गुप्ता, मैत्रेयी पुष्पा इत्यादि का नाम उल्लेखनीय है।

सभ्यता के प्रारंभ से ही स्त्री-पुरुष भिन्न-भिन्न होते हुए भी एक दूसरे के पूरक रहे है। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यते रमंते तत्रदेवता' की उक्ति में स्त्री के प्रति आदर व सम्मान की देवीतुल्यस्वीकारोक्ति आदिकाल से चली आ रही थी। प्राचीन काल में मातृप्रधान समाज (वैदिक काल व सिंधु घाटी सभ्यता) स्त्री के अस्तित्व को स्वीकार किया गया था और अर्धनारीश्वर स्वरूप में पुरुष के बराबर माना गया था किन्तु धीरे धीरे समाज का मातृप्रधान से पितृप्रधान की ओर बढ़ते हुए स्थिरता को प्राप्त कर लेने से नारी की भूमिक का ह्रास होते हुए गौण होना जिस के फलस्वरूप उन के अधिकारों की सीमितता और कर्तव्य की बहुलता ने एक अन्तर्विरोध को जन्म दिया और इस विषमता ने नारी को हाशिए पर धकेलने का कार्य किया जिसके कारण आबादी के आधे हिस्से को अभिव्यक्ति व निर्णय के अधिकार एवं अवसर से बेदखल होना पड़ा। सबला से अबला की विद्रूपताओ एवं विसंगतियों से भरी इस अधोगामी यात्रा ने नारी के अस्तित्व पर प्रश्न चिह्न लगाने का कार्य किया।

यह सही है कि हमारी सभ्यता और संस्कृति कई चरणों की विकास यात्रा के पश्चात आज की स्थिति में पहुं ची हैं परंतु इस विकास यात्रा में नारी धीरेधीरे परिधि की ओर अग्रसर रही और अंत में परिधि पर आकर बैठ गई जिससे हमारी व्यवस्था में नारी की भूमिका नगण्य होती गई। यह स्थिति रामायण में सीता के स्वयंवर से आरंभ होकर अंत में सीता के सतीत्व की परीक्षा में आकर हुए बदलाव के रूप में देख सकते हैं। प्रारंभ में मातृसत्तात्मक परिवारोंमें स्त्री की भूमिका श्रेष्ठ रही किंतु जैसे-जैसे पितृसत्तात्मक परिवार का विकास हुआ वैसे वैसे स्त्री की स्थिति समाज में दोयम दर्जे की होती गई। उसे ना जाने किनकिन उपमानों से अभिहित किया जाने लगा तथा शिकंजे में कसा जाने लगा जिसके कारण वह परतंत्रता की दहलीज पर आकर गिर गई और इसी अवस्था से मुक्ति के प्रयास के रूप में विचार जगत में स्त्री मुक्ति आंदोलन जो साहित्य में स्त्री विमर्श के नाम से जाना जाता है, का जन्म हुआ।

अंग्रेजी के फेमिनिज्म का हिंदी रूपांतरण नारीवाद हैं जिसकी उत्पत्ति लैटिन शब्द *फेमिना* से मानी जाती हैं जिसका अर्थ स्त्री से हैं। स्त्रीवाद का सर्वप्रथम प्रयोग 1890 के आसपास लैंगिक समानता और स्त्रियों के अधिकारों के अर्थ में किया गया। स्त्री विमर्श स्त्रियों के दमन के विविध रूपों का अध्ययन करता है और दमन से मुक्त कराने की दिशा में सकारात्मक दृष्टिकोण के साथ वैचारिक स्तर पर पहल भी करता है।

स्त्री की स्थिति के संबंध में महादेवी वर्मा का कथन है कि " हिंदू नारी की गौरव गाथा से आकाश गूंज रहा हो, चाहे उसके पतन से पाताल कांप रहा हो, परंतु उसके लिए 'ना सावन सूखा ना भादो हरा' की कहावत ही चरि तार्थरही है, उसे हिमालय को लज्जा देने वाले उत्कर्ष तथा समुद्र तल की गहराई से इस स्पर्धा करने वाले आकर्षणदोनों का इतिहास आंसुओं से लिखना पड़ा है । नारी ने सभी क्षेत्रों में यहां तक की स्वतन्त्रता आंदोलन मे भी अपनीप्रतिभा का लोहा मनवाया है जिससे स्पष्ट है कि नारी शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक दृष्टि से कि सी भी तरह पुरुष से कम नहीं है। पुरातन सामाजिक व्यवस्था में अपने को शोषित महसूस करने के बाद नारी में नई चेतनाऔर नया व्यक्तित्व उभर रहा है तथा नारी के व्यक्तित्व की अवधारणा में परिवर्तन आ रहा है फलत:स्त्रीपु रुष के परस्पर संबंधों के मूल्य भी बदल रहे है। आज नारी की पुरुष के प्रति अपेक्षाओं में परिवर्तन आया है जो ना री को तनाव व घुटन की स्थिति में ले आया है। जैसे मोहन राकेश के नाट्य 'आधे अधूरे' में सावित्री की पुरुष से रखी अपेक्षाएं उसे एक विचित्र स्थिति में ले आती है। जहां वह अपने आप को एकाकीपन के घोर अंधकार में पा ती है।

कामकाजी अविवाहिता स्त्री (सुषमा) के माध्यम से स्वतंत्रता के बाद बदलते सामाजिक सन्दर्भो को उषा प्रियंव दा ने 'पचपन खंभे लाल दीवारें' में रेखांकित किया है। ममता कालिया ने पतिपत्नी के शारीरिक संबंधो को केंद्र में रखकर 'बेघर' में आधुनिक समाज में पुरुष की संस्कार बद्ध जड़ता और संदेह वृति को उघाड़ा है। इस तरह आधुनि क साहित्य में सदियों से रूढ़ियों के नीचे कसमसाता नारी मन वर्जनाओं को नकारता हुआ अपने सहज स्वाभाविक रूप में आधुनिक नारी में चित्रित हुआ है।

स्त्री विमर्श के सम्बन्ध में कुछ भ्रांतिया और अंतर्विरोध आलोचकों ने खड़े किए है जिसमें उन्होंने बताया है कि स्त्रीविमर्श प्रतिशोध पीड़ित है, स्त्री विमर्श की समर्थक स्त्रियां पुरुष बनना चाहती है, स्त्री संबंधी पूर्वाग्रह के लिए दोषी पुरुष है, स्त्री विमर्श केवल कुछ शिक्षित, साहित्यिक व धनी महिलाओं का कोरा वाग्विलास और न्यूज़ में बने रहने की उनकी साजिश मात्र है। कुछ गिनेचुने प्रतिनिधि महिला चरित्रों के विकास का हवाला देकर यह जताने की कोशिश कि स्त्रियां अब हाशिए पर नहीं है।

वास्तविक रूप से देखा जाए तो स्त्री आंदोलन प्रतिशोध पीड़ित ना होकर अपनी अस्तित्व व अस्मिता के बोध का आंदोलन है क्योंकि वह यह जानती है कि अन्याय का प्रतिकार अन्याय नहीं है। स्त्रियां पुरुष नहीं बनना चाहती वह तो चाहती है कि जो दोहरे मापदंड उन पर थोपे गए हैं उन पर पुनर्विचार होना चाहिए ताकि विकास के अव सर सबको समान मिल सके। स्त्री संबंधी पूर्वाग्रह के लिए दोषी पुरुष नहीं जबकि वह व्यवस्था है जो जन्म से ले कर मृत्यु तक पुरुषों को लगातार एक ही पाठ पढ़ाती है कि स्त्री उनसे हीनतर है एवं उनके भोग का साधन मात्र है । इसके अतिरिक्त स्त्री विमर्श केवल कुछ शिक्षित साहित्यिक व धनी महिलाओं को वाग्विलास और न्यूज़ में बने रह ने की साजिश ना होकर उनकी स्वानुभूति परक नारी मन के अंतस चेतना का प्रकटीकरण है।

मृणाल पांडे के निबंध 'संकलन परिधि पर स्त्री' में भंवरी देवी के संघर्ष, आंध्र प्रदेश के एक जिले की लक्षमा की जागरूकता के माध्यम से नारीवादी सोच को आक्रामक तेवर के साथ प्रस्तुत किया है तथा यह बताया है कि स्त्री किस प्रकार समाज की परिधि पर दोयम दर्जे का जीवन जीने को विवश है। इसमें नारी के सौंदर्य को परंपराग त प्रतिमान से मुक्त कर उसके श्रम सौंदर्य को उजागर किया गया है। तस्लीमा नसरीन ने अपने द्वारा अनूदित

'औरत के हक में' में अपने दैनिक जीवन के छोटेछोटे तल्ख अनुभवों के माध्यम से नारी अस्मिता से जुड़े सवालों को नए सिरे से उठाया है। वह बतलाती है कि केवल जननी बनकर खंडित चूर्ण विचूर्ण होना उसका भाग्य नहीं है। स्त्रियों को धर्म शास्त्रों, सामाजिक रूढ़ियों, पुरुष की निरंकुशता और नीचता को ध्वस्त कर अपनी शक्ति खुद पहचाननी चाहिए।

'स्त्री होने की सजा' में अरविंद जैन स्त्री को प्राप्त संवैधानिक अधिकारों की सच्चाई की पोल खोलकर पुरुष के अ नुकंपा भाव की धज्जियां उड़ाते हैं। वे विवाह, संपत्ति, तलाक, निकाह, बलात्कार आदि विभिन्न मुद्दों के माध्यम से कानून की कमियों और उसके एकांगीपन को उजागर करते हैं तथा स्त्री के राजनीतिक प्रतिनिधित्व की वास्तविक हकीकत को सामने लाकर सत्ता पक्ष को आईना दिखाने का भी काम करते हैं। मृदुला गर्ग के उपन्यास ' कठ गुलाब' के सभी पात्र एक ऐसी काल्पनिक दुनिया में रहते हैं जो कहीं नहीं है। उपन्यास के सभी नर नारी शाप ग्रस्त प्रतीत होते हैं। स्त्रियां सुरक्षा और संपत्ति का अधिकार चाहती है और पुरुष प्रेम आनंद व स्त्री देह के बाद सि र्फ एक उत्तराधिकारी। 'दिलो दानिश' में कृष्णा सोबती ने रखैल और दूसरी पत्नी की स्थिति एवं भूमिका को रेखांकि त किया है जिसमें यह सदैव घृणा की पात्र व कानूनी अधिकारों से वंचित रहती है।

स्त्री विमर्श व लेखन का महत्वपूर्ण उद्देश्य स्त्री की विभिन्न भूमिकाओं के बारे में मानव समाज को परिचय देना है।जीवन के उन अंधेरे कोनों पर भी प्रकाश डालना है जिस की पीड़ा स्त्रियों ने सदियों से झेली है। जरूरत हैकि स्त्री अपनी मानवीय गरिमा और अधिकार को समझ कर संरचनात्मक, सांस्कृतिक तथा मानवीय दृष्टिकोण के मूल तत्व का विश्लेषण करें तथा देश, समाज, घर, परिवार की मिश्रित भूमिका का संतुलन स्थापित करने का प्रयास दोनों पक्ष करें।

निष्कर्ष :-

स्त्री अस्मितामूलक विमर्श की कुछ सीमाएं भी है जिसके प्रति लेखक एवं पाठक वर्ग को सदैव सजग रहने की आवश्यकता है। स्त्री स्वतंत्रता के साथ कर्तव्यहीनता की स्थिति जिससे सामाजिक ढांचे के प्रति विद्रोह की भाव ना की गुंजाइश सदैव बनी रहती हैं तथा स्त्री स्वतंत्रता के नाम पर अतिवादी दृष्टिकोण को बढ़ावा मिलने की आशं का, एक पक्ष पर अधिक बल देने से दूसरे पक्ष को गौण करके उसे हतोत्साहित करना, पक्षीय प्रतिस्पर्धा को ब ढ़ावा जो नकारात्मक स्वरूप लेकर वर्गीय हिंसा में रूपायित भी हो सकती है, आर्थिक तथा वित्तीय दृष्टिकोण से नारी के रूप सौंदर्य एवं अंग का अतिवादी प्रदर्शन इत्यादि। स्त्री विमर्श अधिकार और कर्तव्य के मध्य सामंजस्य स्थापि त करने की महती आवश्यकता रहती है तथा साहित्यकारों को पूर्ण सजगता के साथ लेखन की आवश्यकता सदैव बनी रहती है जिससे कि निर्माण हो सके नाश नहीं, साहित्यकार सृजन एवं ध्वंस के मध्य के अंतर को सदैव स्मर ण मेंरखते हुए ही स्त्री विमर्श को साहित्य में स्थान दे तो आधी आबादी के साथ यथोचित न्याय संभव हो सकेगा।

संदर्भ सूची :

1. अमृता प्रीतम : औरत एक दृष्टिकोण, पेंग्विन रेंडम हॉउस इण्डिया, गुडगाँव, 2020,
2. शिवकुमार : उपन्यासों में नारी समस्या, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 2008
3. डॉ अरविंद जैन : औरत होने की सजा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016
4. मृदुला गर्ग : कठ गुलाब, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 2012
5. कृष्णा सोबती : दिलो दानिश, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010
6. आशा रानी : नारी शोषण : आईने व आयाम, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1980
7. मृणाल पांडे : परिधि पर स्त्री
8. ममता कालिया : बेघर, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2002

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

समकालीन हिंदी उपन्यासों में दिव्यांग (विकलांग) विमर्श

शशिकांत चिन्नेश्वर सैबे

आर.जी. बागडिया आर्टस्, एस. बी. लखोटिया कॉमर्स
& आर बेज़ोन्जी साईन्स कॉलेज, जालना महाराष्ट्र

शोध सारांश -

दिव्यांगजन समाज के अविभाज्य घटक हैं। इनके अविकसित होने पर समाज का संपूर्ण विकास नहीं माना जा सकता। जन्म से या जन्म के बाद किसी भी कारण से व्यक्ति को शारीरिक या मानसिक क्षति पहुँचती है तथा वह व्यक्ति अंशतः या संपूर्ण जीवन के लिए उस शारीरिक अंग से बाध्य हो जाता है, तो उसे समाज में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। साहित्य समाज का दर्पण होता है, अतः दिव्यांग विषयों पर भी अनेक कविता, कहानी, उपन्यास आदि निर्मित हुए हैं। दिव्यांग विमर्श के आधार पर हमें दिव्यांग जन को सम्मानजनक जीवन दिलाना है, ताकि वे भी सामान्य जीवन का आनंद ले सकें। यह तभी हो सकता है, जब हम सब मिलकर इस विषय पर गहन चिंतन करें। आजकल के संसार से मनुष्यता समाप्त हो गई ऐसा नहीं कहा जा सकता। जब तक संसार में समाज का विचार करने वाले बुद्धिजीवी हैं, तब तक समाज का विकास संभव है। विमर्श के लिए प्रारंभिक चरण में ऐसे ही बुद्धिजीवी की आवश्यकता है। दिव्यांगजनों की सामाजिक प्रगति के लिए दिव्यांग विमर्श आवश्यक है।

बीज शब्द - दिव्यांग, विमर्श, अक्षम्य, थ्रोम्बोसिस, क्षीण, सकलांग

प्रस्तावना -

शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक रूप से अक्षम्य व्यक्ति को विकलांग या दिव्यांग कहा जाता है। विकलांग व्यक्ति के लिए दिव्यांग शब्द का प्रयोग माननीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी ने 27 दिसंबर, 2015 को अपने आकाशवाणी के कार्यक्रम 'मन की बात' में किए थे। तभी से विकलांग व्यक्तियों के लिए दिव्यांग शब्द का प्रयोग किया जाने लगा। माननीय प्रधानमंत्री जी ने कहा था कि शारीरिक रूप से अक्षम्य लोगों के पास दिव्य क्षमता होती है, अतः उनके लिए 'विकलांग' शब्द के स्थान पर 'दिव्यांग' शब्द का प्रयोग किया जाना चाहिए। वैसे देखा जाए तो नैतिकता और व्यावहारिकता में अंतर होता ही है। समाज में दिव्यांगों के लिए अनेक शब्दों के प्रयोग किए जाते हैं। जैसे - अपाहिज, अपंग, न्यूनांग, शक्तिहीन, लूला, लंगड़ा आदि। परंतु जब तक हम ऐसे लोगों के लिए गहराई तक चिंतन नहीं करेंगे, उनकी स्थिति पर विमर्श नहीं करेंगे, तब तक हम उन्हें न्याय नहीं दिला सकते। विमर्श का अर्थ होता है - चर्चा करना। किसी विषय को लेकर अपने मन में उठ रहे विचारों को साझा करके, निर्माण होने वाले प्रश्नों के उत्तर ढूँढना तथा उसे जीवन में आत्मसात करना विमर्श कहलाएगा। दिव्यांग विमर्श आजकल के समाज की उपयोगिता बन गई है क्योंकि कितना भी कहें दिव्यांग समाज का अविभाज्य घटक है। जब तक इनकी प्रगति नहीं होगी, तब तक समाज की संपूर्ण प्रगति हुई है, ऐसा मानना असंभव ही है।

दिव्यांगजन के जीवन को हम तीन चरण में विभाजित कर सकते हैं - व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक। हिंदी साहित्य में अनेक उपन्यास लिखे गए हैं, जिसमें हमें दिव्यागों के व्यक्तिगत जीवन का परिचय प्राप्त होता है। ममता कालिया के उपन्यास 'बेघर' में संजीवनी की माँ दिव्यांग पात्र है, जो बोल-सुन नहीं सकती। संजीवनी की माँ अपनी इस शारीरिक कमज़ोरी के कारण अपने आप के प्रति निराश रहती है। "पिछले कुछ सालों में जैसे-जैसे उसके सुनने की शक्ति क्षीण होती गई, वैसे-वैसे उसकी रुचि अपने प्रति कम होती गई। वह बड़े हारे

हुए भाव से सबके मुँह ताकती रहती।" 1 परंतु ऐसा नहीं है कि दिव्यांगजन अपनी शारीरिक कमज़ोरी के कारण निराश ही रहते हैं। हिंदी उपन्यास साहित्य में ऐसे भी पात्र हैं जो अपनी इस कमज़ोरी को अपनी शक्ति बनाने का प्रयास करते हुए दिखते हैं। मृदुला गर्ग के उपन्यास 'अनित्य' में श्यामा दिव्यांग पात्र है, जो थ्रोम्बोसिस की बीमारी से ग्रस्त है और कई वर्षों से बिस्तर पर पड़ी है। अपनी इस बीमारी से लड़ने की इच्छाशक्ति जब उसमें निर्माण होती है, तो वह छोटे-छोटे लक्ष्य बनाकर बिस्तर से उठने का प्रयास करती है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए वह अपने पति अविजित का सहारा भी लेती है। "श्यामा यूँ ही अविजित के सहारे रेंग-रेंग कर बिस्तर छोड़ती है और कुछ हफ्तों के लिए इस लायक हो जाती है कि सारा दिन आराम के बाद, शाम को थोड़ा -बहुत बाहर घूम आए, खाने की मेज़ पर सबके साथ खाना खा ले ...." 2 इन दोनों ही उपन्यासों में हमें दिव्यांग जन के व्यक्तिगत जीवन को समझने का ज्ञान प्राप्त होता है। एक ओर संजीवनी की माँ की अपने जीवन को लेकर निराशा है, तो दूसरी ओर श्यामा की जीवन के प्रति आशा है।

आशा-निराशा के बीच के अंतर में आता है आसपास का वातावरण। वातावरण आपके अनुकूल हो, तो आप हर एक समस्या से लड़ने के लिए सक्षम रहते हो और प्रतिकूल परिस्थिति में मन की इच्छाशक्ति भी पस्त होती नजर आती है। वातावरण का निर्माण करना बहुत हद तक परिवार की भी जिम्मेदारी होती है। घर में नकारात्मक परिवेश हो, तो इसका परिणाम घर के सदस्यों पर देखने को मिलता ही है। 'बेघर' उपन्यास में संजीवनी के घर उसकी माँ के अतिरिक्त पिता, भाई नानू, भाभी और भतीजा पक्कू रहते हैं। संजीवनी, माँ की दवाई की आपूर्ति के लिए नौकरी करती है, परंतु उसके घर पर माँ के लिए अनुकूल वातावरण नहीं है। परिवार को लेकर संजीवनी की माँ से उनकी राय नहीं ली जाती, उनका मान-सम्मान कम होता दिखाई देता है, उनकी किसी भी बात पर, विचार नहीं किया जाता। जिसके फलस्वरूप वह अपने ही जीवन में नैराश्य की ओर बढ़ती जाती है। "उनका क्या है। वे तो सारा दिन एक-दूसरे से बोल लेते हैं, पर माँ तो बस देख-देखकर बेचैन होती जाती है। कभी पप्पा और नानू भाई में लड़ाई होती है तो वह बीच में आकर बार-बार दोनों को इशारा करती हैं, कोई उन्हें कुछ नहीं समझता। रोती है तो सब उस कमरे से उठकर चले जाते हैं।" 3 इस उपन्यास में केवल संजीवनी अपनी माँ को समझने का प्रयास करती है। शेष सभी उन्हें बोझ मानते हैं। मृदुला गर्ग का उपन्यास 'कठगुलाब' में रतनू माली कोढ़ का मरीज है। कोढ़ की बीमारी के कारण उसके परिवार वाले उसे घर में रखते तक नहीं। अपने परिवार की ओर से मिलने वाले इस व्यवहार के कारण वह अपने आपको कोढ़ी ही नहीं, बल्कि पापी भी कहता है। "उसका परिवार उसे अपने साथ वापस गाँव ले जाने को तैयार नहीं था। उसकी पत्नी दूसरे आदमी के साथ चली गई थी। उसके भाई उसे अछूत मानने लगे थे।" 4 पारिवारिक परिवेश के संदर्भ में 'अनित्य' उपन्यास की श्यामा भाग्यशाली मानी जा सकती है। श्यामा के परिवार में मुख्य पात्र के रूप में श्यामा के अतिरिक्त पति अविजित, बेटियाँ प्रभा और शुभा, देवर अनित्य आदि हैं। बेटी प्रभा को छोड़कर अन्य सभी, श्यामा को बिस्तर से उठाने के लिए प्रेरित करते हैं। वे चाहते हैं कि श्यामा सामान्य जीवन का आनंद ले। इसका परिणाम यह निकला कि वह छोटे -छोटे लक्ष्य बनाकर अपने जीवन को बदलने का प्रयास करने लगी। "हर बार कोई छोटा-मोटा लक्ष्य सामने रखकर ही श्यामा बिस्तर छोड़ने के अभियान में जुटती है।" 5 इन संदर्भों से स्पष्ट होता है कि दिव्यांगजनों को यदि अनुकूल तथा प्रेरणादायक पारिवारिक परिवेश प्राप्त होता है तो वे अपने पैरों पर खड़े होने का प्रयास कर सकते हैं। अपनी कमज़ोरी को घरवालों की सहायता से मात दे सकते हैं, किंतु कमज़ोरी पर विजय पाने की चाह दिव्यांगजन के मन में होनी चाहिए।

सामाजिक वातावरण दिव्यांगजनों के लिए सबसे महत्वपूर्ण है। जो प्रेरणा व्यक्तिगत या पारिवारिक रुप से किसी को प्राप्त नहीं होती है, वह समाज द्वारा प्राप्त हो सकती है। समाज में अनेक उदाहरण हमें देखने को मिलते हैं

जिसके आधार पर हम प्रेरित होते हैं। ये ऐसे उदाहरण होते हैं जो किसी भी श्रेणी के व्यक्ति को अपनी ओर आकर्षित कर सकते हैं। उसमें भी आदर्शवादी व्यक्ति किसी कमी के बाद भी निखरकर बाहर आता है तो वह सारे समाज में आदर का स्थान पाता है। "दुर्घटना तो सकलांग के साथ भी हो सकती है और होती भी है अतः संभावनाओं के आधार पर दुर्बलता या भय को अधिगृहीत करना कर्तव्य-कर्म से ही विमुख होना होगा।"6 हिंदी उपन्यासों में भी हमें ऐसे पात्र पढ़ने को मिलते हैं, जो अनेक कमियों के बाद भी समाज के रुप-रंग को बदलकर रख देते हैं। मृदुला सिन्हा का उपन्यास 'ज्यो मेहंदी का रंग' के दद्दा जी ऐसे ही एक पात्र हैं। दद्दा जी का नाम डॉ. अविनाश है, परंतु जिस संस्था का निर्माण उन्होंने किया है, वहाँ के सारे लोग उन्हें प्रेम से दद्दा जी कहते हैं। दद्दा जी स्वयं दिव्यांग हैं, परंतु यह बात उपन्यास के अंत में स्पष्ट होती है। दद्दा जी ने आपबीती से जो अनुभव प्राप्त किया, वही अनुभव कोई और दिव्यांग न प्राप्त करें, इस उद्देश्य से उन्होंने इस संस्था का निर्माण किया है। दद्दा जी की संस्था में दुर्घटना में शारीरिक क्षतिग्रस्त लोग आते हैं। दद्दा जी उनके अंगों का निर्माण कर उन्हें सामाजिक दृष्टि से कार्यरत करते हैं। उनका उद्देश्य यह भी है कि दिव्यांग को पहले के समान ही अंग लगाए जाए। संस्था की परिचारिका महिमा कहती है, "असली पाँवों की रुपरेखा पूछ ही लेते हैं - किसी के रिश्तेदार से, तो किसी रोगी से ही। उनकी पूरी कोशिश होती है कि नकली पाँव भी असली पाँव की तरह ही बनाए।" 7 दद्दा जी के जीवन से प्रेरित होकर उपन्यास की नायिका भी दिव्यांगजनों की सेवा के लिए अपना जीवन समर्पित कर देती है। शालिनी के दोनों पाँव स्टीमर और डेक के बीच फँसकर कट गये, जिसके कारण वह हमेशा के लिए दिव्यांग हो गई। दद्दा जी के व्यक्तित्व ने शालिनी को इतना प्रभावित किया कि पति के द्वारा दूसरा विवाह कर लेने के बाद उसने अपना सर्वस्व संस्था को समर्पित कर दिया। अपनी प्रतिभा के दम पर उसने कुछ ही दिनों में सारे मरीजों के दिलों में अपनी जगह बना ली। उस संस्था का मास्टर जी तो शालिनी को अपनी बेटी मानता है और मानता ही नहीं बल्कि उससे कहता भी है, "बेटा, ये पाँव मत बदलना, कभी नहीं! और ... बेटा... तुम, तुम... मुझे अपने कंधे पर ही पहुँच आना... इन्हीं पाँवों पर बेटा... तुम भी कंधा अवश्य लगाना..." 8 व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक प्रेरणा जब किसी दिव्यांग को मिलती है तो वह अपने पैरों पर खड़े होने का हर संभव प्रयास करता है। यथार्थ जीवन में ऐसे अनेक उदाहरण देखने को मिलते हैं। जैसे - इरा सिंघल (आयएएस), भरत कुमार (तैराकी), सुधा चंद्रन (नृत्यांगना), अरुणिमा सिन्हा (पर्वतारोही) आदि।

निष्कर्ष - दिव्यांग विमर्श के आधार पर हमें व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक परिवेश का निर्माण करना है, जिससे दिव्यांग जनों का विकास हो सके। विमर्श करते समय हमें समस्याओं का समाधान भी खोजना है, ताकि उन समस्याओं पर योग्य कार्य किया जा सके और दिव्यांगजनों को सम्मानित जीवन प्रदान किया जा सके।

संदर्भ –

1. बेघर – ममता कालिया, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, पाँचवा संस्करण – 2018, आइएसबीएनः 978-93-88183-02-4, पृ. क्र. 57
2. अनित्य – मृदुला गर्ग, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, दूसरा संस्करण – 2022, आइएसबीएनः 978-81-267-2585-4, पृ. क्र. 62
3. बेघर – ममता कालिया, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, पाँचवा संस्करण – 2018, आइएसबीएनः 978-93-88183-02-4, पृ. क्र. 44
4. कठगुलाब – मृदुला गर्ग, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, ग्यारहवां संस्करण – 2020, आइएसबीएनः 81-263-0207-0, पृ. क्र. 34
5. अनित्य – मृदुला गर्ग, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, दूसरा संस्करण – 2022, आइएसबीएनः 978-81-267-2585-4, पृ. क्र. 63
6. विकलांग-विमर्श विविध सोपान – डॉ. आनंद कश्यप, पंकज बुक्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण – 2022, आइएसबीएनः 978-81-8135-186-9, पृ. क्र. 10

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

समकालीन बाल साहित्य का स्वरूप एवं बाल मनोविज्ञान

डॉ॰ शिल्पा दादाराव जिवरग
शोध– निर्देशक, हिन्दी विभाग
पंडित जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय
शिवाजीनगर, छत्रपती संभाजीनगर

सोनाली युवराज चित्ते
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
जे॰इ॰एस॰ कॉलेज, जालना

शोध सार:-

बाल साहित्य से अभिप्राय बच्चों के लिखे जाने वाले साहित्य से है। बाल साहित्य बालक के रुचि नुसार कहानी, उपन्यास, कविता, नाटक, जीवनी के माध्यम से उनमें ज्ञान के साथ-साथ जीवन के पथ पर, जीवन की कठिनाइयों से लड़ने कि प्रेरणा देते है। हिन्दी बाल साहित्य की एक समृद्ध परंपरा रही है। पंचतंत्र, हितोपदेश, कथा-सरित्सागर, जातक कथा एवं लोककथाओं की एक लंबी शृंखला हमारे हिन्दी साहित्य में है।

बाल मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की वह शाखा है, जिसमें गर्भावस्था से लेकर प्रौढ़ावस्था तक के मनुष्य के मनसिक विकास का अध्ययन किया जाता है। जहाँ सामान्य मनोविज्ञान प्रौढ़ व्यक्तियों की मानसिक क्रियाओं का वर्णन करता है तथा उनको वैज्ञानिक ढंग से समझने की चेष्टा करता है, वही बाल मनोविज्ञान बालकों की मानसिक क्रियाओं का वर्णन करता और उन्हें समझने का प्रयत्न करता है। बाल मनोविज्ञान को समझे बिना श्रेष्ठ बाल साहित्य नहीं लिखा जा सकता।

बीज शब्द :- वैश्विकीकरण, अभिव्यक्ति, उपदेशात्मक, सृजनात्मकता, सर्वांगीण विकास, मन-मस्तिष्क, स्वच्छंद

प्रस्तावना:-

समकालीन अर्थात वर्तमान काल की विशेषताओं व्दारा चिन्हित। यहाँ से वैश्वीकीकरण की शुरुवात होती है। वैश्विकीकरण एक बड़ा बदलाव है जो अभी तक चल रहा है। हर युगों में नित्य निर्णायक परिवर्तन होते रहे है।

हिन्दी साहित्य में नव-नवीन परिवर्तन हुए है, तथा हो रहे है। साहित्य में अनेक विमर्श को साहित्य का विषय बनाया गया है। जिसमें बाल साहित्य याने बालक को केंद्र में रखकर लिखा गया साहित्य।

बालक का कोमल मन, कल्पना के पंखों पर आरूढ़ होकर सुदूर गगन में उड़ना चाहता है। बाल साहित्य की एक लंबी परंपरा होने पर भी आज का बाल साहित्य कई अर्थों में पुराने बाल साहित्य से अलग है। परिवर्तन प्रकृति का नियम है। परिवर्तन की लहर ने आज देश और समाज में जो बदलाव ला दिया है, उससे बाल साहित्य भी अछूता नहीं रहा है।

समकालीन बाल साहित्य में समकालीन भाव-बोध की अभिव्यक्ति होती है। बच्चे की नजर से उस दौर के समाज एवं बचपन का प्रतिबिंबन करने का दायित्व समकालीन साहित्यकारों पर ही आता है। इसी लिए साहित्यकारों को बाल मनोविज्ञान की समझ होना अत्यंत आवश्यक है।

समकालीन युग बाल-साहित्य का मानो जागरण युग है। बाल केन्द्रित साहित्य का निर्माण हो रहा है। इस युग की सबसे महत्वपूर्ण बात बाल-जीवन और बल-मनोभावों को प्रधानता दी जा रही है। आज इस वैज्ञानिक युग और वैज्ञानिक उपलब्धियों के प्रति जागरूकता बच्चों को आसानी से पारियों और राक्षसों के चमत्कारी और

काल्पनिक घटनाओं के अस्तित्व को स्वीकारने में मनोवैज्ञानिक रूप से बाध्य कर पाता है। इस युग में बाल साहित्य को नैतिक उपदेशात्मक कथानकों के जंजीरों से मुक्ति मिलना संभव हो सका है। समकालीन युग का बालक हर बात की प्रामाणिकता को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखने लगा है।

बालक हर चीज को अपनी दृष्टि से देखता है और बड़ों से प्रश्न पूछकर अपनी हर जिज्ञासा को शांत करना चाहता है। डॉ॰ हरीकृष्ण देवसरे के अनुसार- आज के बच्चे का कौतूहल विष्णु शर्मा के शिष्यों के, ईसप के श्रोताओं और एंडरसन के पाठकों के कौतूहल से बहुत भिन्न है और बहुत अधिक विस्तृत है। यही कारण है कि बाल-साहित्य के आयाम जो कथा-कहानी के चौखट तक ही पहले सीमित थे अब विज्ञान के प्रश्नो कों भी समेटे हुए है। वे कथा- कहानियों की शैली से परे भी है। बच्चे के गले वही उतरता है जो रुचिकर होता है ।[1]

हिन्दी साहित्य में बाल मनोविज्ञान का महत्वः-

मनोविज्ञान शब्द में बाल 'उपसर्ग' लगने से बना 'बाल-मनोविज्ञान'। जिसका तात्पर्य बच्चों का मनोविज्ञान या बाल व्यवहार का अध्ययन है। बाल मनोविज्ञान को समकालीन युग की अनिवार्य आवश्यकता कहा गया है। बाल मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की एक शाखा है, जिसमे एकमात्र बाल जीवन की विभिन्न क्रिया-कलापों, रुचियों एवं मनोवृत्तियों, भावनों, मूल्यों आदि पहलुओं का अध्ययन किया जाता है।

बाल मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की एक एकीकृत शाखायी विधा है। रूसो ने 18 वी शताब्दी में बालक की योग्य शिक्षा के लिए बाल मनोविज्ञान की आवश्यकता बताई थी।

हर्बर्ट स्पेन्सर ने इस बात पर ज़ोर दिया है की प्रत्येक नागरीक की शिक्षा में बाल मनोविज्ञान की शिक्षा अनिवार्य होनी चाहिए। बाल मनोविज्ञान की विधियाँ प्रायः वे ही है जो सामान्य मनोविज्ञान की है। मनोविज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि मानसिक एवं बौद्धिक विकास का आधार विचार-शक्ति है। विचार एवं विवेक ही मानव बुद्धि को नयी दिशा और गति प्रदान करते है।

यदि साहित्य समाज का दर्पण माना जाता है, उसे मानवीय भावनाओं, कल्पनाओं और अनुभवों के प्रकटीकरण का श्रेष्ठ माध्यम समझा जा रहा है। साहित्य ने मानवीय व्यवहारों को परिष्कृत करने में अपनी भूमिका निभायी है। बाल्यावस्था में तो यह भूमिका और महत्वपूर्ण है। साहित्य बालकों के लिए प्रेरणा स्त्रोत होता है, नई दृष्टि उत्पन्न करता है। बाल मनोविज्ञान का बाल साहित्य से गहरा संबंध है। वह विज्ञान जो बालक के मन, मस्तिष्क, व्यवहार और प्रकृति का अध्ययन करता है, बाल मनोविज्ञान की श्रेणी में आता है।

बाल साहित्य में बालकों की रुचि, उनकी सृजनात्मकता, कल्पना का विशेष स्थान है। अतः बालकों के मन-मस्तिष्क में प्रवेश करने वाले शिक्षाप्रद, मनोरंजक, प्रामाणिक एवं गुणवत्ता युक्त साहित्य की आवश्यकता है। जिससे उनकी प्रतिभा विकसित हो सके। बच्चों का मनोरंजन यह तो साहित्य का प्रथम उद्देश्य है ही साथ ही उनकी जिज्ञासा को शांत करना और कल्पना का विस्तार करना आवश्यक है। इस प्रकार कहा जा सकता है की बालकों के वांछित विकास हेतु निर्धारित शैक्षिक उद्देशों की पूर्ति करने के लिए बाल साहित्य तथा उसकी सर्जन हेतु बाल मनोविज्ञान की महत्ता अवर्णनीय तथा इनका संबंध अन्योन्याश्रित है।

बाल साहित्य का मूल आधार ही बाल मनोविज्ञान है। बालकों की समझ सोचने की शक्ति आदि बड़ों की अपेक्षा बहुत भिन्न होती है। इस संदर्भ में शकुंतला सिरोठिया का मत है- बालकों के सोचने का एक अलग अंदाज होता है, उनकी भी अपनी कुछ आकांक्षाएँ होती है। वे अपने स्वच्छंद भावों की दुनिया में जीना चाहते है। उन्हें कोई भी बंधन व डांट फटकार पसंद नहीं है वे भी वयस्कों के समानांतर अपनी एक स्वतंत्र सत्ता चाहते है ।[3]

हिन्दी बाल साहित्य में बाल मनोविज्ञान की दिशा:-

बालक अपना शैक्षिक परिवेश, अपना संसार, अपनी आकांक्षाएँ और अपनी अस्मिता साहित्य में पाना चाहता है। अर्थात आज के बालक की रुचि आधुनिकता बोध पर आधारित है। हिन्दी बाल साहित्य से बालको के मनोवैज्ञानिक विकास में सहायता होती है।

सामाजिक विकास :- सामाजिक विकास से अभिप्राय है बालक में विस्तृत रूप से सर्वांगीण विकास होना। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में रहकर अपने आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। एलिजाबेथ हरलॉक के अनुसार- सामाजिक विकास का अर्थ उस योजना का अर्जन करना है जिसके व्दारा सामाजिक प्रत्याशाओं के अनुसार व्यवहार किया जा सके ।[4]

सामाजिक विकास का लक्ष्य बालक को अपने परिवार, पड़ोस तथा देश के अनुकूल बनाना तथा समाज व समुदाय की रीतियों, रिवाजों, नियमों तथा मान्यताओं आदि को सिखा कर समाज का क्रियाशील तथा उत्तरदायी सदस्य बनाना है। बालक स्वभावत: चंचल और कु:साहसी होते है। अत: वे जीवन के विभिन्न प्रलोभनों की और शीघ्रता से आकर्षित होते है। बालकों में वैज्ञानिक दृष्टि विकसित हो, उनका स्वस्थ मनोविकास हो एवं यह समकालीन युग में चिंता का विषय है।

व्यक्तित्व का विकास:- कोई भी बालक अच्छे या बुरे चरित्र के साथ पैदा नहीं होता। हाँ, वह अच्छी-बुरी परिस्थितियों में अवश्य पैदा होता है, जो उसके चरित्र-निर्माण में भला-बुरा असर डालती है। इसीलिए यही कहना ठीक होगा की परिस्थियाँ हमारे चरित्र को नहीं बनतीं, बल्कि उनके प्रति जो हमारे मानसिक प्रतिक्रियाएँ होती है, उन्हीं से हमारा चरित्र बनता है।

एच॰ एस॰ वारेन के अनुसार- व्यक्तित्व व्यक्ति का सम्पूर्ण मानसिक संगठन है, जो उसके विकास की किसी भी अवस्था में होता है ।[5] बालक के व्यक्तित्व का समाज सापेक्ष सही निर्माण बाल शिक्षा और बाल साहित्य व्दारा होता है। बाल शिक्षा और बाल साहित्य एक दूसरे के पूरक है और एक-दूसरे पर निर्भर भी। बाल शिक्षा बालक को खड़ा होना सिखाती है, तो बाल साहित्य चलना। बच्चों की कल्पना और भावना का विस्तार बाल साहित्य से ही होता है। मन और हृदय कि सत्ता साहित्य से ही बनती है। व्यक्ति के जीवन मे यही सत्ता सर्वोपरि है ।[6]

भावनात्मक विकास :- बालकों पर बाल साहित्य का गहरा प्रभाव पड़ता है। बाल साहित्य बच्चे के प्रतिदिन के जीवन से जुड़ा होता है। सच्ची शिक्षा वही है जो बच्चों में मानवीय संवेदनाओं को दृढ़ता से स्थापित कर दे। आज की वर्तमान परिस्थियों में बालक जीवन की विभिन्न समस्याओं का सामना करते है; जैसे- चिंता, कुंठा, तनाव, भावनात्मक रूपसे उदास रहना आदि। वहाँ पर बालक आक्रामकता को प्रदर्शित करते है। उसे यह सिखाना आवश्यक है की जीवन के संघर्ष में सत्य द्वारा असत्य पर प्रेम द्वारा घृणा पर और अहिंसा द्वारा हिंसा पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

डॉ परशुराम शुक्ल के अनुसार- सभों बच्चों का मानसिक विकास समान नहीं होता है। बालकों के विकास पर शारीरिक संरचना और परिवेश का सीधा प्रभाव पड़ता है। शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ बालकों का अनुकूल परिवेश मिलने पर मनसिक विकास बड़ी तेजी से होता है ।[7] मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मनोवैज्ञानिक गतिविधियों से पूर्ण साहित्य ही बच्चे को सही दिशा दे पाता है। बच्चों के मानसिक विकास हेतु बाल साहित्य अत्यंत आवश्यक है। जिससे बच्चों के मन के भावनाओं का विकास हो जो जीवन में स्थायी रूप से असर कर

सके। बाल साहित्य के ये प्रतिमान बच्चों के स्वाभाविक विकास, उनकी रुचि और मनोवृतियों को राजनीति की उस विचारधारा से प्रभावित करना चाहते है जो देश के शासन का आधार है। क्या बाल-साहित्य का यह नया रूप बच्चों को जीवन के सही मुल्य समझने योग्य बन सकेगा ।[8]

समकालीन बाल साहित्य का भावबोध वह है, जिसे हमे नवीन, मौलिक और आधुनिक दृष्टि चेतना समन्वित बाल साहित्य कह सकते है। यह साहित्य मूल्य परक है। इसमें आधुनिक जीवन का सफल समाहार है। ऐसी स्थिति में बाल साहित्य की भूमिका महत्वपूर्ण है।

भाषात्मक विकास:- विचार और भाषा का गहन संबंध है। जिसकी भाषा जितनी ही प्रसशक्त होगी, विचार भी उसके उतने ही सुदृढ़ एवं प्रखर होंगे। भावनाओं को व्यक्त करने का भाषा ही सर्वोत्तम मर्ग़ है। साहित्य की भाषा सरल, स्पष्ट हो। इतना तो निर्विवाद सत्य है की जो साहित्य बच्चों के मानसिक स्तर पर उतरकर लिखा जाता है वही सार्थक और सफल बाल-साहित्य होता है। कुछ ऐसी ही धारणा मुकुन्द देव शर्मा जी की भी है। शर्मा जी के मतानुसार- बच्चों के लिए लिखी जाने वाली रचनाएँ जब स्वत: बाल-भावना और बाल प्रकृति के स्तर पर आकर लिखी जाएँ तो वास्तविक बाल साहित्य की रचना होती है। उसमे किसी प्रकार की जटिल भाषा या भाव का व्यवधान नहीं होना चाहिए। शिशु सा सरल, बोध गम्य और सहज बोलचाल की भाषा में जो साहित्य लिखा जाता है, सही मायने में वही बाल-साहित्य कहलाने का अधिकार है ।[9]

निष्कर्ष:- बाल साहित्य और बाल मनोविज्ञान एक-दूसरे के पर्याय है। बाल मनोविज्ञान के अभाव में स्वस्थ बाल साहित्य का सृजन संभव नहीं है। अत: बाल साहित्य के अध्ययन से बाल मनोविज्ञान का परिचय आवश्यक है। बालको के स्वस्थ विकास एवं प्रगति के लिए बाल मनोविज्ञान को समझना आज के युग की महती आवश्यकता है। बालकों की क्रियाओं, रुचियों और मनोवृत्तियों का अध्ययन करना उन्हें सही मार्ग में ले जाने का काम बाल मनोविज्ञान के माध्यम से संपन्न होता है। बालक के लिए उसकी जिज्ञासा और कौतूहल भावना कि संतुष्टि साहित्य के माध्यम से ही संभव है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1) बाल-साहित्य :रचना और समीक्षा, संपादक- डॉ॰ हरीकृष्ण देवसरे पृ॰ 29

2) बाल- मनोविज्ञान- लालजीराम शुक्ल नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी पृ 21

3) बाल संसार संग्रह- शकुंतला सिरोठिया, हिन्दी प्रचारक संस्थान ,पृ 17 वर्ष 1995

4) बाल मनोविज्ञान- डॉ राकेश कुमार शर्मा, विश्वभारती पब्लिकेशन, नई दिल्ली 110002 पृ 71

5) बालकों की भावनाओं व व्यक्तित्व का अध्ययन (सामान्य एवं अपराधी बालक) डॉ श्रीमती चंचल वर्मा सिंह- कल्पज पब्लिकेशन, दिल्ली, 110052 पृ 49

6) आज कल- मासिक पत्रिका व्यावसायिकता का बोलबाला डॉ॰ श्रीप्रसाद पृ 9 वर्ष 1979 संकलित।

7) हिन्दी बाल साहित्य और विमर्श – उषा यादव एवं राजकिशोर सिंह, सामयिक प्रकाशन, पृ 13 वर्ष 2014

8) बाल-साहित्य मेरा चिंतन- डॉ हरीकृष्ण देवसरे, मेघा बुक्स, दिल्ली,पृ 25, वर्ष 2002

9) हिन्दी बाल-पत्रकारिता: उद्भव और विकास, डॉ॰सुरेन्द्र विक्रम, पृ॰16 में उदधृत

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

समकालीन हिंदी साहित्य में किन्नर की अस्मिता

प्रा. डॉ. सुरेखा एस. लक्कस
हिंदी विभाग, एम.जी.एम. विश्वविद्यालय
छत्रपति संभाजीनगर. महाराष्ट्र

शोध सार

आज किन्नर की स्थिति दयनीय है। किन्नर होना किसी के हाथ में नहीं है। इसीलिए आज समाज में उनके प्रति आदरभाव व्यक्त करने के लिए साहित्य की जरूरत है। साहित्य समाज का प्रतिबिंब दर्शाता है। वह समाज की सच्चाई उजागर करता है ताकी उनके प्रति समाज में अपनेपन की भावना प्रतीत हो। सामान्यतः हिंदी साहित्य में थर्ड जेंडर विमर्श का विकास देखा जा सकता है। हालाँकि मुख्यधारा समाज से अलग-थलग कर दिए जाने के कारण गुमनाम जीवन व्यतीत करने वाले इस समुदाय की संरचना काफी जटिल है। बाहरी लोग भी इनके निजी जीवन में दखल नहीं कर पाते हैं। वहीं, द्विलिंगी सामाजिक व्यवस्था में इनके प्रति सामाजिक स्वीकृति का अभाव है। हिंदी साहित्य इस वर्ग की समस्याओं को विभिन्न साहित्यिक विधाओं, विशेष रूप से कथा साहित्य द्वारा केंद्र में लेकर आने की दिशा में प्रयासरत है।

बीज शब्द : थर्ड जेंडर , लैंगिक विकलांगता, यौन अभिव्यक्ति , विस्थापित जीवन

किसी भी समाज के साहित्य को उस समाज का आईना माना जाता है और जो साहित्य अपने परिवेश को उकेरता है, वही साहित्य उस समाज का प्रतिनिधि कहलाने का अधिकारी होता है। हिंदी साहित्य की बात करें तो इसकी प्रवाहमान धारा विभिन्न सामाजिक सरोकारों से जुड़ी रही है। साहित्य के सामाजिक परिदृश्य में समाज का हर वर्ग अपना स्थान प्राप्त करता है। इसी क्रम में हिंदी साहित्य में कई विमर्श उभर कर हमारे सामने आए। समाज के वंचित और दमित वर्गों की आवाज़ को साहित्य में स्थान देने के लिए कई अस्मितामूलक विमर्श जैसे स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श सामने आए। इसी कड़ी में थर्ड जेंडर विमर्श हिंदी साहित्य में अपनी महत्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज़ करा रहा है। वास्तव में "किन्नर" शब्द पहले हिमाचल प्रदेश के किन्नौर निवासियों के लिए प्रयुक्त होता था, जिसे अब हिजड़ों के लिए व्यवहृनत कर दिया गया है। समाज में दो प्रकार के लिंगियों को ही मान्यता मिली है- एक पुरुष और दूसरी स्त्री । इन दो आपस में विपरीत लिंगियों को ही सृष्टि का आधार माना जाता है, किन्तु समाज में एक लैंगिक विकलांग वर्ग भी उपस्थित है, जिसे हिजड़ा, उभयलिंगी, किन्नर, खुसरा, मौसी इत्यादि संबोधन दिए गए हैं।

हिंदी साहित्य हिंदी भाषा का रचना संसार है। हिंदी भारत और विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा है। समाज में उपस्थित या निर्मित हर जीव का दर्पण हिंदी साहित्य है।समाज के हर व्यक्ति को केंद्र में रखकर हिंदी साहित्य उच्च कोटि का साहित्य माना जाता है। समाज के निम्न से निम्न लोगों की समस्या को उजागर किया गया है। पाठकों की सोच को बदला गया है। समाज में किन्नरों की अवस्था यह ज्वलंत विषय है। इस विषय को साहित्यकारों ने उजागर किया है ,उनकी अवस्था, अपेक्षा उनका संघर्ष इस तरफ साहित्यकारों ने पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है। २१ वीं सदी में तो किन्नर समाज को केंद्र में रखकर बहुत अधिक साहित्य लिखा गया है। इस विषय को विस्तृत से जानने के पहले यह किन्नर या तृतीयपंथी के लोग कौन से

हैं ,उनका निवास कहां है , यह जानना बहुत आवश्यक है I लैंगिक आधार पर मानव मुख्यतः दो वर्गों में विभाजित है, स्त्री एवं पुरुष इन्हीं दो वर्गों को समाज में सम्मान से देखा जाता है पर इसके अलावा मानव जाति में अन्य लिंग अर्थात तृतीय लिंग भी है उन्हें समाज में किन्नर अथवा हिजड़ा कहा जाता है I यह लोग स्त्री पुरुष की भांति संभोग नहीं कर पाते इसलिए उन्हें समाज में अपमानित सा जीवन समाज में व्यतीत करना पड़ता है I इन्हें भारत की विभिन्न भाषाओं में अलग-अलग नामों से जाना जाता है- जैसे तेलुगु में नपुंसक कोज्जा या मादा तमिल में थिरु,नंगई, अरावनी गुजराती में पवैया पंजाबी में खुसरा कन्नड़ में जोगप्पा I इसी प्रकार भारत में अलग-अलग क्षेत्रों में छक्का, खोजा, किन्नर, हिजरा, ट्रांसजेंडर आदि शब्दों का प्रयोग उनके लिए किया जाता हैI इसी प्रकार प्राचीन जैन एवं बौद्ध साहित्य में भी किन्नर अथवा नपुसंक का उल्लेख किया जाता हैI भारत के प्राचीन ग्रंथों में समस्त तृतीय पंथ की उत्पत्ति एवं उसके विकास को उजागर किया गया हैI जैसे- रामायण, महाभारत ,रामचरितमानस में उसके उदाहरण मिलते हैंI रामायण में राजा इल का उदाहरण मिलता हैI उन्हें शिव शंकर से स्त्री रूप मिला था, तब भगवान बुद्ध ने उनकी कहानी सुनकर देव योनि में विशेष होने का वरदान दिया तथा श्वेत पर्वत पर निवास करने के लिए बुलाया- " अत्रकिंपुरुषीभूत्वा शैलरोधसी वत्स्यथ आवासस्तु गिरावास्मित मीनाक्षी शीघ्रमेव विधियातम"I ¯(डॉ.एम. फिरोज खान – थर्ड जेंडर)

थर्ड जेंडर की मन की अवस्था को 'मन मरीचिका' कहानी में डॉ. विमलेश शर्मा नेदिखाया हैं I मानव से मानवी बनने की यात्रा को संजीदगी से उकेरा है। सुलोचना और मानव का रिश्ता दैहिक प्रेम की सीमाओं को लाँघ कर उस ऊँचाई तक पहुँच जाता है' जहाँ दो आत्माएँ मिलती है। सुलोचना मानव की ओर आकर्षित होकर प्रेम से ओत-प्रोत थी जबकि मानव ट्रांसजेंडर होने के कारण अपनी भावनाओं से निरंतर युद्ध कर रहा था। मानव के अनगिनत कष्ट उसकी डायरी में दर्ज़ होते गए – "पाँच बहनों में सबसे छोटा था मैं। उन्हीं के साथ पला-बढ़ा। उन्हीं की बातें, व्यवहार, रहन-सहन सब मेरे व्यवहार में है। मुझे काँच की चूड़ियाँ, लाल बिंदी औऱ सूरमा पसंद है जो दीदी लगाती थी। लहरिये का सूट पहनने की मुझे भी इच्छा होती है। आज मैंने यहाँ यह सब किया तो सबने मेरा मजाक उड़ाया।"

इस कहानी में मानव की सहज भावनाओं और उसकी घुटन का तो सजीव वर्णन है ही, इसके साथ ही ट्रांसजेंडर समुदाय से संबंधित विभिन्न परिभाषाओं, श्रेणियों, वर्गों जैसे एम.एस.एम (मेन हू हेव सेक्स विद मेन), हिजड़ा, कोठी, पंथी आदि का वैज्ञानिक ब्योरा भी दिया गया है। मानव के संबंध में मनोवैज्ञानिक डॉ. बसु कहते हैं – "जितना समझ पाया हूँ, दिस इज द केस ऑफ ए कोठी ट्रांसजेंडर। कोठी वो मेल होते हैं जो जैविक रूप से तो पुरुष होते हैं पर परिवेश या मनोवैज्ञानिक कारणों से अपने पुरुषत्व को खारिज करते हैं। ऐसे में विपरीत लिंग जैसा आचरण करते हैं।" इस कहानी में थर्ड जेंडर व्यक्तियों को उपेक्षित और हाशिए पर धकेलने के स्थान पर उनके प्रति मानवीय दृष्टिकोण अपनाते हुए वैज्ञानिक और चिकित्सकीय राह दिखायी गयी है। मुख्यधारा समाज में विभिन्न यौन अभिव्यक्तियों के प्रति सहजता रखते हुए जटिलताओं को कम करके समतामूलक समाज की ओर बढ़ा जा सकता है।

कादम्बरी मेहरा की कहानी 'हिजड़ा' एक ऐसी लड़की की कहानी है जो, परिस्थितियों से विवश होकर हिजड़ा बनने को विवश हो जाती है। रागिनी चेचक महामारी के फैलने से जहाँ एक तरफ अपनी माँ और भाई को खो देती है, वहीं उसके चेहरे पर बड़े-बड़े चेचक के दाग आ जाते हैं। साथ ही उसकी एक आँख भी चली जाती है। कुछ समय बाद उसके पिता दूसरी

शादी कर, उसे शहर में बहन-जीजा के पास भेज देते हैं। जीजा पढ़ाई के खर्चे के बदले में उसका शारीरिक शोषण करता है। कालेज में अपनी ही सहेली द्वारा जब उसका मज़ाक उड़ाया जाता है तो- "रागिनी की घायल हृदय और पनीली हो गई कानी आँख से उसे असहाय, उपालंभ देती हुई घूर रही थी। मुझे अचानक अपनी गाय की याद आ गई जिसकी पूँछ के नीचे कीड़े पड़ गए थे और दर्द के कारण मक्खियों व पक्षियों को उड़ा नहीं पाती थी। उसकी आँखों की मूक वेदना रागिनी की आँखों में उतर आई थी। मुझे दोनों की बेचारगी व छटपटाहट एक जैसी लगी।"

महाभारत में शिखंडी तथा अर्जुन एवं अलुपी का पुत्र अरावण एक किन्नर था। यह भी कहा जाता है कि मोहिनी का रूप धारण करके श्री कृष्ण ने तमिलनाडु के सुप्रसिद्ध कुवागम मेले में अरावन से एक रात की शादी की थी। "पूरे कुवागम में 17 दिनों तक उत्सव जैसा माहौल होता है। देश के कोने-कोने से हिजड़े कुआंगम में जमा होते हैं।" (प्रदीप सैरभ तीसरी ताली वाणी प्रकाशन दिल्ली) सदियों पूर्व इस समाज को इज्जत की दृष्टि से देखा जाता था। जैसा कि बहुत लोग जानते हैं कि मुगल के दौरान किन्नर लोग रानियों के हरम में उनके सुरक्षा के लिए रहते थे। पर धीरे-धीरे ऐसा समय आया कि उन्हें अपना जीवन व्यतीत करने के लिए भीख मांगनी पड़ी इसका मूल कारण है, शिक्षा का अभाव। शिक्षा पाने के लिए भी सुसंस्कृत समाज का उन पर हंसना फब्तियां कसना इन कारणों के कारण उन्हें नाच गाकर शादी ब्याह के मौकों पर बधाई मांगना पड़ता है। यह एक बधाई मांग कर अपना गुजारा करने लगे जब कोई बच्चा धीरे-धीरे बड़ा होता है और वह अपने जन्म के लिंग के विपरीत व्यवहार करता है तो उसे ट्रांसजेंडर कहलाता है ,लेकिन ऐसे उदाहरण हमें फिल्मों में तथा बहूरूपी के रूप में देखने को मिलते हैं पर उन्हें हिजरा नहीं कहते। वह तो सिर्फ पैसा कमाने के लिए ऐसा करते हैं। हिजरा समाज में अपना ग्रुप बनाने की प्रथा है। इस तरह से थर्ड जेंडर का संघर्ष शुरू होता है। साहित्य को ऊर्जा देता है, और साहित्य आंदोलन की दूरदर्शिता सुनिश्चित करता है। समाज में बहुत समय तक इस समाज को उपहास तथा मनोरंजन के साधन में देखा गया। फिल्मों में मनोरंजन के साधन के तौर पर इनका इस्तेमाल किया गया। साहित्य में भी इस समुदाय का उल्लेख मिलता है पर वहां भी कई अंशों तक उनको समाज में सम्मान नहीं मिला पर उनकी अवस्था को उजागर किया गया। इस समाज ने भी अपने पहचान तथा मानव अधिकार के लिए 1990 को संघर्ष शुरू किया और यह देखा गया कि यह समाज देह व्यापार की ओर झुक रहा है देह व्यापार करना यानी पैसा कमाना उनका मूल उद्देश्य नहीं था। वह तो उस सुखद एहसास को बार बार अनुभव करना चाहते हैं तथा अपने आजीविका के लिए नाच गाने का कार्य करते हैं ,पर यह भी प्रगत समाज को मान्य नहीं है। आर्थिक असमर्थता, बेरोजगारी, शिक्षा का अभाव ,तकनीकी कुशलता और सबसे बड़ी समस्या परंपरागत पेशे का अज्ञान इन्हें वेश्यावृत्ति को पेशा बनाने पर मजबूर करता है। लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी इस समुदाय की आर्थिक सामाजिक स्थिति के संदर्भ लिखती है कि- "हिजड़ों के पास बुद्धि नहीं होती ?उसके पास प्रतिभा नहीं होती? बल नहीं होता ? वह राजनीति में नहीं जा सकते? फौज में नहीं जा सकते ? इस बातों को किन तर्कों के आधार पर तय किया है ? अपने कलाकारों प्रतिभावानों को मजबूर कर दिया पचास –पचास रुपयों में देह बेचने को ,ताली बजाने को।"[3] (त्रिपाठी लक्ष्मी नारायण मैं हिजड़ा मैं लक्ष्मी, दिल्ली वाणी प्रकाशन प्रथम संस्करण)

इस समुदाय के लोग अपना समुदाय छोड़कर कुछ काम करना चाहते हैं ,तो यह समाज स्वीकार नहीं करता। इनके लिए प्रशासन का भी दायित्व बनता है, कि उन्हें कुछ सुविधा प्रदान करें जैसे कि हाथ पैर आदि किसी की कमी के कारण उन्हें

विकलांग कहा जाता है, समाज में उन्हें अपना स्थान है ,उसी तरह से तृतीयपंथी को अपना स्थान मिलना चाहिए। समाज ने उन्हें स्वीकार करना चाहिए ऐसे ही अनेक किन्नरों के विचारों का उद्बोधन साहित्यकारों ने 'गुलाब मंडी' और 'मैं पायल' इस उपन्यास में किया है। 'मैं पायल' की नायिका उपेक्षा, उत्पीड़न, शोषण, सहन करती है। बिना आरक्षण और विशेष सुविधाओं के उसका और उस जैसे अनेक किन्नरों का आत्मनिर्भर बनने का सपना कभी सच नहीं होता लेकिन इतिहास के पन्नों को पलट कर देखते हैं, तो पुराने जमाने में बड़े-बड़े हवेली में रईसों के यहां, मुसलमान बादशाहों के परिवार में सबसे विश्वसनीय नौकर थे हिजड़े , परंतु आजकल हिजड़ों को इतना सम्मान नहीं मिलता इस कहानी की नायिका हिजड़ा थी, पर उसके मां-बाप उसको हिजड़ों की नजर से छिपाकर अच्छी शिक्षा प्रदान करते हैं। आज वह इतनी सक्षम बन गई है कि उसको समाज में दर्जा मिला है पर वह एक दिन ऑटो में कहीं जा रही थी, तब उस रिक्शा को कुछ हिजड़ों ने घेर लिया तब उस ड्राइवर ने कुछ पैसे निकाल कर दे दिए। पर उसके मन में सवाल आया कि हिजड़ों की इस परिस्थिति को कौन जिम्मेदार है ?वह इनके बारे में सोचती है कि - "अगर यह भीख मांगते हैं तो इसके जिम्मेदार कौन है ?जहां भी जाते हैं, तो इन्हें भगा दिया जाता है। दुकानदार इन्हें पास नहीं फटकने देते।" (डॉक्टर फिरोज खान- 'हम भी इंसान हैं' कहानी संग्रह) तब उसके समाज समझ में आता है कि इन लोगों को समाजमें तिरस्कृत भावना से देखा जाता है। इस कहानी से यह पता चलता है कि यह लोग सामाजिक अधिकार से समानता ,सम्मान ,न्याय से वंचित रहते हैं। ऐसे ही और एक उदाहरण से पता चलता है कि सरकार उनको कुछ अधिकार नहीं दे रहे हैं एक बार जब नायिका रेलगाड़ी से कहीं जाती है तो हिजडे यात्रा के दौरान आरक्षित सीट पर बैठ जाते हैं ,तब टी.टी.टिकट मांगता है, तो उन लोगों ने कहा कि "हम क्यों नहीं बैठ सकते? सरकार हमें राशन कार्ड देती है क्या ?पर हम अन्न तो खाते हैं ना ! सरकार हमें पहचान पत्र देती है क्या? वोट देने नहीं देते हैं क्या ?पर हम देश में रहते हैं ना ! इसी देश के नागरिक हुए ना !"[५] (डॉक्टर फिरोज खान- 'हम भी इंसान हैं' कहानी संग्रह) उनके इस बात से यह जाहिर होता है कि आज भी वह समाज में हाशियाकृत है , तिरस्कृत है। इस प्रकार हम पाते हैं कि इनके सेक्स रैकेट की ओर झुकाव में भी मुख्यधारा के लोगों और व्यवस्था की महत्वपूर्ण भूमिका है। व्यवस्था जहाँ उन्हें शिक्षा, आवास, रोजगार कि आवश्यकता देने में असफल रही है। वही हमारे पक्षपातपूर्ण की वजह से इन्हें अब तक सामाजिक स्वीकार्यता नहीं मिल पाई है। आर्थिक, मानसिक और शारीरिक शोषण के चक्रों से गुजर चुके इस समुदाय के लिए सेक्स रैकेट में शामिल होना एक मजबूरी बन जाती है। अतः सेक्स रैकेट के प्रति इनके झुकाव को कम करने के लिए इन्हें वह सारे मानव अधिकार दिलाने होंगे जिनसे यह अब तक अछूते रहे हैं।

निष्कर्ष

हिंदी कहानियों के थर्ड जेंडर विमर्श में इस समुदाय की व्यथा, वंचना और उपेक्षित जीवन को पर्याप्त स्थान दिया है। हालाँकि इस दिशा में अभी भी कई संभावनाएँ हैं। मुख्यधारा समाज से विलग रहने के कारण इनके जीवन की विस्तृत जानकारी भी दुर्लभ हो जाती है। इसके कारण इस समुदाय के प्रति कई तरह की गलत धारणाएँ भी चल पड़ी है। हालाँकि मानवीय संवेदना और सहानुभूति आधारित साहित्य की रचना करके इस वर्ग की सामाजिक स्वीकार्यता के लिए हिंदी साहित्य प्रयासरत है। इसके अलावा थर्ड जेंडर समुदाय के लोगों द्वारा स्वानुभूत आधारित साहित्य लिखे जाने की आवश्यकता है ताकि प्रामाणिक अभिव्यक्ति सामने आए। इसके लिए इस वर्ग की शिक्षा जैसी मूलभूत अधिकार तक पहुँच को आसान करना होगा। बदलते हुए सामाजिक परिदृश्य में तृतीय लिंगी समाज के मानवीय अधिकारों और सम्मानजनक स्थिति के लिए उम्मीद की जा सकती है। उत्तर आधुनिक काल में प्रौद्योगिकी और तकनीकी के बढ़ते प्रयोग से द्विलिंगी समाज (जेंडर बाइनरी) की सीमाओं को

तोड़ कर एक समावेशी समाज के निर्माण का अवसर भी है। समाज के एक बड़े तबके तक पहुँच बनाते हुए हिंदी कहानियों का स्थान इस दिशा में काफी महत्वपूर्ण हो जाता है।

संदर्भ सूचि

1. डॉ.एम. फिरोज खान – थर्ड जेंडर का विकास
2. प्रदीप सैरभ तीसरी ताली वाणी प्रकाशन दिल्ली
3. त्रिपाठी लक्ष्मी नारायण मैं हिजड़ा मैं लक्ष्मी, दिल्ली वाणी प्रकाशन प्रथम संस्करण
4. डॉक्टर फिरोज खान- 'हम भी इंसान हैं' कहानी संग्रह
5. डॉक्टर फिरोज खान- 'हम भी इंसान हैं' कहानी संग्रह
6. मैं हिजड़ा मैं लक्ष्मी: बदलाव के पदचिन्ह - लक्ष्मीनारायि त्रिपाठी, वानी प्रकाशन (२०१५)

jkth lB dk miU;kl ¨e ukjh pruk

nRrk=; vkl kjke fdVkG
"kk/k&Nk=] fgnh foHkkx]
Mk- ckck lkgc vkcMdj ejkBokMk
fo"ofo|kYk;] vkjxkckn& ¨É½É®É¹]

vkt ge 21 oÈ lnh e th jg g Y¨fdu vkt Òh gekj lekt e ukjh d¨ ijijkxr vk;u e n[ku dh vknr x;h ugÈ gA ukjh vkt Òh viu vkid¨ ljf{kr egll ugÈ djrhA mldh Òkouk, v©j bPNk, vkt Òh ,d fuf'pr vrjkYk d ckn ej lh tkrh gA ukjh d¨ noh dgdj ;k ml nxk dk vorkj dgdj ge ml mpkb ij fcBk vo'; nr g] Y¨fdu dkeuk ;gÈ jgrh g fd og viuh ijijkxr flekv¨ d¨ u Ykk?kA i#"k lekt u ukjh d¨ *oLr* v©j *tkfr* ekudj ,dkxh nf"Vd¨.k l dke fYk;k gA ukjh d Lo:i ,o fLFkfr d¨ viu vu#i ifjofrr ,o ifjÒkf"kr dju e i#"k u cMh gh pkYkkdh l dke fYk;k gA i#"k }kjk ukjh d ÁkÑfrd 0;fäRo ij viu ÁÒko dk Ñf«ke lkekftd 0;fäRo vkj¨fir fd;k gA vc t#jr bl ckr dh g fd ukjh ml e[k©V d¨ mrkj Qd t¨ mld eu v©j bPNk d fo#) iguk;k x;k gA

vk/kfud efgYkk Y¨[ku d lnÒ e jkth lB u fofÒé i«k & if«kdkv¨ d ek/;e l rFkk lkfgR; Y¨[ku d }kjk viu fopkj¨ d¨ er :i fn;k gA og efgYkk Y¨[ku d¨ viuh ihMk l xtju dk bfrgkl ekurh gA D;¨fd ,d ukjh gh nljh ukjh dk n%[k le>dj ml lgh ek;u e vfÒ0;ä dj ldrh gA vkt ukjh viuh n;uh; fLFkfr l mcju dk Á;kl dj jgh gA og viu g¨u dh [k¨t viu ifjo'k v©j viu ;FkkFk d ek/;e l dj jgh gA og vkt bruh ix ugÈ g fd i#"k vdY¨ gh mld Òfo"; v©j xfr d lc/k e fu'p; dj Y¨A lekt e og viuh fLFkfr d Áfr ltx v©j lrd g¨ pdh gA

jkth lB u n¨ miU;kl fYk[¨ g & *rr&le* v©j *fu"dop*A *rr&le* ;g miU;kl fo/kok leL;k l xLr ukjh d thou l?k"k dk thor nLrkot gA *rr&le* dh jpuk fo'o e ukjh vkn¨Yku dh xt FkhA fo/kok leL;k dk jkth lB u bl miU;kl e ,d uohu ifjÁ{; e mBk;k gA bl miU;kl e fo/kok fookg e ijijk ;k #f<;k ck/kd ugÈ g ;gk ij fo/kok ol/kk dh Lok/khurk mld vfLerk dk Á'u gA jkth lB u rRle d¨ *rr&le* d :i e Lohdkj fd;k gA oruh e cnYkko d lkFk gh vFk Òh cnYk tkrk gA **rr&le* vFkkr *Lo; dk Lo; d leku* ;k *Lo; dk vU; d leku*A og viuk ÁFke i#"k Òh g v©j vU; i#"k ÒhA**1 bl Ádkj jkth lB u bu 'kCn¨ d¨ mudh 0;kdjf.kd d¨Vh l eä dj ltukRed lÙkk e u; vFk d lkFk ÁLrr fd;k gA

rr&le ;g jkth lB dk ÁFke miU;kl gA ÁLrr miU;kl thou d Áfr ,d [kYkh lkFkdrk v©j [k¨t dk ifj.kke gA *ol/kk* bl miU;kl dh Áe[k ik«k gA food v©j vkun ;g n¨u¨ Áe[k ik«k g t¨ ol/kk d vklikl eMjkr utj vkr gA rr&le miU;kl e jkth lB u ol/kk d ek/;e l ukjh d Lor«krk dk elk mBk;k gA rr&le d dæ e vkReLokr«; dk fopkj gA lekt dk o/kO; d Áfr nf"kr nf"Vd¨.k ukjh d¨ o/kO; dh ghu Òkouk l eä ugÈ g¨u nrkA rr&le dh ol/kk o/kO; dh ghurk l eä g¨uk pkgrh gA ifjokj dk vfrfjä lgkuÒfrokYkk 0;ogkj Òh ml lgt ugÈ g¨u nrkA **?ke&fQjdj trk;k tkrk g fd vc rd r¨ lc Bhd FkkA og lkekU; Fkh thou dh /ki] rki] nkg lc lg ldrh FkhA vc nX/k g nYkVh gb ihVh gbA**2 bl rjg ml vkReLor«krk d¨ ckgj fudkYku dk volj gh ugÈ fn;k tkrkA

jkth lB u rr&le d ek/;e l ol/kk p©/kjh dh vre[kh ;k«kk d¨ Òkjrh; e/;oxÊ; lekt v©j ifjokj dh fo/kok d :i e ekuk gA miU;kl e bldk l{e fp«k.k gvk gA ol/kk tlh f'kf{kr ukjh dh 0;Fkk lkekftd LFkYkrkv¨ l vYkx gA mld tlh f'kf{kr] fpru'khYk ukjh dh ihMk v©j Òh c< tkrh gA ol/kk dh ihMk dk ,d dkj.k ;g Òh g fd ,d gh n%[k l lcf/kr óh&i#"k d fYk, vYkx&vYkx fo/kku D;¨ gA ÒkÒh }kjk dg x; okD; mld fnekx e /ker jgr gA 'kjr Ò¸;k v©j ÒkÒh dk l/kkjoknh 0;ogkj Òh ol/kk d fYk, ihMknk;d gh g¨rk gA viu thou ij eku¨ viuk vf/kdkj gh ugÈ jgrkA ol/kk viuh ihMk d¨ 0;ä djr g, dgrh g & **vthc rjg l ijk/khu g¨ x;k g thouA nlj¨ d fYk, lek/kku] le>©r d fYk, vfÒ'kIrA**3 ol/kk dk LokfÒekuh eu fdlh Òh Ádkj d ghu le>©r djuk ugÈ pkgrk **;g e[k©Vk Òh fQj viu e[k ij viu vkid¨ gh /kjuk g¨xkA viu gkFk¨ l blk d d/¨ d¨ t[eh djr dkB d Ø,l dh rjgA viuh gh ng eu dk nljk ukedj.k Òh dj nuk g¨xkA ng d¨ fongA eu d¨ v&euA lkjk llkj&vlkjA vFkghuA**4 ol/kk thou d bu vk?kkr¨ l u r¨ grk'k g¨rh g v©j u gh fujk'kA food d Áfr mldk Áe mldh ukjhoknh pruk dk ifj.kke g ftldk vk/kkj g ,d 0;fä d :i e ukjh dh Áfr"BkA rr&le miU;kl e jkth lB u ol/kk d ek/;e l ukjh tkfr d¨ Áj.kk nh gA viuh foo'krkv¨ l mij mBdj thou thu dh rFkk ftnxh l Áe dju dhA ol/kk dh ft thfo"kk thou d Áfr mldk Lohdkj Òko txkrh gA ol/kk v©j food ,d&nlj e ft l ft thfo"kk dk lpkj djr g

ogÈ mÙg thou d lgt Lohdkj dk e«k Òh n tkrh gA o l/kk r¨ vkun d :i e thou dh idkj d¨ Lohdkj dj pdh gA lgh ek;u e o l/kk dh 0;Fkk fd lh «kklnh l [kRe ugÈ g¨rh] cfYd ,d ;k«kk l 'k# g¨rh gA

fu"dop jkth lB dk nljk miU;kl gA ft le n¨ oÙkkr g] n¨u¨ dFkk, ,d&nlj dh ijd gA igY¨ oÙkkr d dæ e uhjk v©j ckl n¨ ;ok gA uhjk LoPNn óh dk Árhd gA uhjk Ò©frdrk l v¨rÁ¨r ukjhoknh ih<h dh YkMdh gA mld fYk, ufrd eY;] ekuoh; eY; d¨b egRo ugÈ j[krA uhjk Lor«krk d lPp ek;u tkurh gh ugÈA mld fYk, ukjh Lor«krk dk vFk g& foæ¨g djuk] c¨YM g¨uk] ;©u lc/k¨ e LoPNnrk d¨ c<kok nukA uhjk ckl d lkFk lc/k¨ d¨ [kYkdj Lohdkjrh g& **og e> vPNk Ykxrk gA viuk Ykxrk gA buk vPNk e> vkt rd d¨b ugÈ feYkkA**5 ckl mld fYk, flQ oreku dk Ákl; gA mld lkFk fd lh Òfo"; d lc/k e og ugÈ l¨prhA **vkx&ihN] YkkÒ&gkfu] oreku&Òfo"; ml ugÈ l¨puk gA t¨ g¨ jgk g ml g¨u nuk gA ml g¨u e 'kkfeYk g¨uk gA**6 uhjk d lkgl dh lhek nLlkgl rd igp tkrh gA ckl tlk i©#"kh; 0;fäRo Òh bldh xhj¶r e vkdj vlgk; lk g¨ tkrk gA **ik ldu d¨ egll dju d fYk, og fdlh Òh gn rd tk ldrh gA e [kn mld nLlkgl l Mjrk gA viu fYk, ugÈ] re lcd fYk,] ej fYk, ogÈ vlYkh Ykxke gA cYkkrh g r¨ tkuk iMrk gA u tkv¨ r¨ uhp l mij /k¨dj j[k nrh gA**7 fookg io ;©u lc/k¨ l uhjk d¨ d¨b ijgt ugÈ gA ckl l mldh vrjxrk gj gn ikj dj tkrh gA fdr ckl l fookg ml Ykk;d pht ugÈ YkxrhA Ò©frdrk dh pdkp©/k l ÁÒkfor g¨dj] lljf{kr Òfo"; dk fu'pr djr g, og vfÒ;rk je.k pkoYkk l fookg dk ÁLrko Lohdkj dj Y¨rh gA je'k no d erku lkj & **uhjk ,d rjYk Áe dh txg B¨l ifj.k; dh oLr cu tkrh gA uhjk dk ;g :ikrj.k jkth d vnj cB nn dh vuÒfr g t¨ ÁdV djrk g] Ò©frdrk, vkrfjd vk'ofLr;¨ d leLr vkn'k¨ dk vigj.k dj ldrh g u ogk lkekftdrk d eY; cpr g] u lkLÑfrd vkLFkk cprh g v©j u ufrd ifjÒk"kk, dke vkrh gA**8 bl rjg ge le> ldr g fd uhjk jkth lB dk ,lk pfj«k g t¨ fuEu e/;oxÊ; ifjokj l lcf/kr c¨YM] lkglh ijr vkRedfær gA

jkth lB d n¨u¨ miU;kl¨ e vk/kfudrk thor fopkj¨okYkh ukfj;¨ dh lonuk ,o thou d¨ lkeu Ykkrh gA óh&i#"k d e/; fd; tkuokY¨ Òn dk foj¨/k *rr&le* dh ÒkÒh djrh gA og fo/kok&fookg dh foj¨/kh vEek d¨ pu©rh nrh g& **Òxoku dh etÊ e viuh etÊ t¨Mdj re mldh ftnxh d¨ D;¨ gjke dj jgh g¨ vEek tjk l¨pdj r¨ n[k¨] fdlh dh v©jr ej tk, r¨ elku e gh fj'r vku Ykx tkr gA ejn¨ d v©j v©jrA**9 *fu"dop* dh uhjk r¨ foæ¨gh ik«k gA gj fj'r e ml vkReh;rk dh lx/k ugÈ ,glku dh nx/k vkrh gA blfYk, og ckl d¨ Òh viu thou l fudkYkdj ckgj djrh g & **ge'kk ,l gh fcgo djrk g tl e ml ij Ykknh tk jgh g] frdMeh] cVA**10 bud vYkkok *fu"dop* e :Fk v©j ekFkk ,l ik«k g t¨ ik'pkR; ukfj;¨ d Ákrfuf/k gA ekFkk li.k i#"k tkfr l ?k.kk djrh gA ekFkk fo'kkYk l viuh 'kr¨ d vulkj ;©u lc/k cukrh gA xÒ Bgju ij og fcuk ld¨p d xÒikr djk nrh gA :Fk uked ik«k Òh uhjk d leku gh vkØed gA :Fk vkØedrk d¨ ml gn rd rkudj Y¨ tkrh Fkh tgk lkeuokYkk Òh rurukdj ,dk,d [kM g¨ tku d¨ foo'k g¨ tk;A

jkth lB dk Y¨[ku mÙg lkfgR; dh e[; /kkjk e Ykkrk gA mÙg¨u viu n¨u¨ miU;kl¨ e ukjh thou d nk[kkRed ,o l[kkRed n¨u¨ i{k¨ dh vfÒ0;fä dh gA *rr&le* miU;kl dh o l/kk d :i e o/k0; dh «kklnh dk lkeuk djr g, viu thou d p;u d¨ er :i nrh ukjh d¨ i<uk jkth lB dh miYkfC/k gA rjle xtjkYk d vulkj & **e¨V r©j ij *rr&le* udkj l Lohdkj] tMrk l prurk] volkn l thorrk dh ;k«kk gA o l/kk d :i e mÙg ,lk ik«k feYkk x;k Fkk t¨ LoRo dh YkMkb thu dh xgjh vkdk{kk d cYk ij YkM ldrk gA**11 viu nlj miU;kl *fu"dop* e uhjk] ekFkk] :Fk d :i e vkRedfær ukjh&ik«k¨ dk lt dj fgnh lkfgR; txr d¨ jkth lB u vÁfre migkj fn;k gA *ukjh thou* d fofo/k Lrj jkth lB d miU;kl¨ e thor :i e gekj lEe[k vkr gA mud miU;kl¨ dh ukfj;k ifjfLFkfr;¨ ij fot; iku okYkh ukfj;k gA ÒY¨ gh uhjk v©j ekFkk vYkx&vYkx ifjo'k dh ukf;dk g] exj vkRekfÒeku dk Òko n¨u¨ e leku gA ekFkk l irk Ykxrk g fd vkuokYkh u;h ih<h ,lh g¨ ldrh gA

lnÒ lwph %

1- jkth lB dk dFkk&lkfgR; % fpru v©j f'kYi] M,- lj¨t 'kDYkk] i- 256&257
2- rr&le] jkth lB] i- 15
3- ogh] i- 45
4- ogh] i- 218
5- fu"dop] jkth lB] i- 29
6- ogh] i- 29
7- ogh] i- 34
8- jkth lB % lonuk dk dFkk n'ku] je'k no] i- 41
9- rr&le] jkth lB] i- 28
10- fu"dop] jkth lB] i- 84
11- pruk e nhokj ugÈ g¨rh] lik- rjle xtjkYk] i- 117

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

समकालीन आत्मकथाओं में अस्मितामूलक विमर्श

डॉ.अलका नारायण गडकर

प्रोफेसर, हिंदी विभाग
शिवाजी कला, वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय
ता॰ कन्नड़ जिला औरंगाबाद, महाराष्ट्र॰

शोध सारांश

महिलाओं के संदर्भ में अस्मिता मूलक विमर्श उनके प्रति मानवीय जीवन मूल्यों की दुय्मम दर्जे की संवेदना से विकसित मानसिकता को अधोरेखित करने का प्रयास है।समकालीन आत्मकथा साहित्य, महिला अस्मिता के मानवी पक्षों पर कई दृष्टियों से विचार विमर्श प्रस्तुत करता है। आज के इस भूमंडलीय युग में भी बहुतांश स्थानों पर महिलाओं की स्थिति दीन-हीन ही है। शिक्षित उच्च शिक्षित, कामकाजी महिलाओं ने उक्त स्थिति से छुटकारा पाने के लिए आर्थिक दृष्टि से सक्षम होकर पितृसत्ताक का समाज द्वारा निर्धारित मनुवादी संहिता को नकारा है। कविता, कहानी, उपन्यासों, रेखाचित्रों में इसका अंकन हुआ है। परंतु उसमें काल्पनिकता का अंर्तभाव है। आत्मकथा एक भिन्न विधा है। इसमें रचनाकार की आत्मा का सच होता है । क्योंकि आत्म वेदना से आत्मकथा का सृजन होता है। इसलिए इसमें जीवन के सत्य दर्ज होते है । संप्रति महिला आत्मकथाकार अपने अस्तित्व एवं अस्मिता के प्रति सजग होकर आत्मकथा लिख रही है। अपनी निजी पहचान बना रही है। अधिकारों से वंचित यह महिलाएं अपने पर किए गए अन्य अत्याचार और सदियों से होते आ रहे शोषण के खिलाफ खड़ी हो उठी है। अपनी आत्मकथाओं के माध्यम से रचनाकारों ने आत्म संघर्ष को शब्दबध्द करते हुए, अपने अस्तित्व एवं अस्मिता को भी प्रस्तुत किया है। अपनी हाशिए की स्थिति के लिए जिम्मेदार पितृप्रधान व्यवस्था का पर्दाफाश किया है। आत्मनिर्भर होकर समाज के सम्मुख अपनी सक्षमता को सिद्ध किया है। अतः हाशिए की साहित्यिक कृतियां और रचनाकार को अस्मितामूलक विमर्श केंद्रीय प्रवाह में ला रहा है। बीज शब्द ---अस्मितामूलक विमर्श, भूमंडलीय, आत्मावेदना, सर्जन, अस्तित्व, अस्मिता, आत्मकथा आत्मसंघर्ष, मानवीय मूल्य.

प्रस्तावना -

बीसवीं सदी विमर्शों की सदी है। साहित्य के विविध विधाओं में दलित, स्त्री, आदिवासी, अल्पसंख्याक, किन्नर, कृषक, पर्यावरण विमर्शों की रचनाएं आ रही है। इसी श्रृंखला के अंतर्गत अस्मितामूलक विमर्श भी है। यह विमर्श हाशिए पर स्थित लोगों की मौजूदगी और उनके निर्णय प्रक्रिया में भागीदारी एवं वास्तविक जीवन संघर्ष पर विचार विमर्श विवेचन करते हुए उनकी वास्तविकता का उद्घाटन करता है। यह विमर्श उनके प्रति मानवीय संवेदनाओं को उभारकर उनकी दशा में परिवर्तन लाने की मांग करता है।

समकालीन महिला आत्मकथाकारों ने अपनी आत्मकथाओं में इसे व्यक्त किया गया है। संप्रति हम लोकतंत्र में है, इसमें सभी को स्वतंत्रता, समानता, न्याय, अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य, एकसमान होना चाहिए, परंतु यहां की मनुवादी पितृसत्ताक व्यवस्था ने स्त्री -पुरुषों के लिए अलग-अलग मानदंड स्थापित कर रखे हैं। महिलाओं के अधिकार बस कहने भर के लिए है। उसे निर्णय लेने का कोई अधिकार नहीं है, पैतृक संपत्ति में भाइयों के बराबर अधिकार नहीं है। घर परिवार में उसका स्थान दुय्यम ही है। तात्पर्य यह है कि आज भी महिलाएं हाशिए की स्थिति पर है। यह केवल अशिक्षित महिलाओं के साथ होता है ऐसा नहीं है इसमें शिक्षित, उच्च शिक्षित और

नौकरी पेशा महिलाएं भी है । इसके मूल में भारतीय समाज की सामंतीय संरचना है। इसलिए महिलाओं की ओर सम्मानजनक नजरिये से देखा नहीं जाता।

समकालीन महिला आत्मकथाओं में रचनाकारोंने अपने जीवन की सच्चाई, संघर्ष, आत्मा संवेदना, स्त्री चेतना, अपने प्रति समाज में सम्मान की भावना का अभाव है, इसे व्यक्त किया है। सामाजिक, पारिवारिक संरचना को प्रस्तुत किया है| अतः अस्मितामूलक विमर्श की सशक्त अभिव्यक्ति समकालीन महिला आत्मकथाओं में हुई है। मैत्रेय पुष्पा, रमणिका गुप्ता, प्रभा खेतान, कौशल्या बैसंत्री, चंद्रकिरण सौनरेक्सा, सुशीला टाकभौरे, रजनी तिलक आदि लेखिकाओं की आत्मकथाओं में व्यक्त अस्मितामूलक विमर्श इस आलेख का उपजीव्य है।

शोधलेख --

बीसवीं सदी विमर्शों की सदी है। प्रतिभा मुदलियार ने विमर्श के संदर्भ में लिखा है"विमर्श का अर्थ है 'जीवंत बहस । साहित्यिक परिपेक्ष्य में देखे तो इस विचार का गहन विचार और 'सर्वस्व की प्राप्ति की आकांक्षा' कहां जा सकता है। अंग्रेजी में इसके लिए 'डिस्कोर्स' शब्द का प्रयोग किया जाता है, अर्थात किसी भी समस्या की स्थिति को एक-एक कोन से न देखकर भिन्न मानसिकता, दृष्टियों, संस्कारों और वैचारिक प्रतिबद्धताओं को समाहार कर देखना । उलट-पलट कर देखना, उसे समझने की कोशिश करना । मानवीय संदर्भो में निष्कर्ष प्राप्ति की चेष्टा करना स्पष्ट है कि, किसी निर्धारित विचार पर पुनः विचार करने की प्रक्रिया को विमर्श कहते हैं।

हिंदी साहित्य जगत में नई आदिवासी और किन्नर विमर्श पर विपुल मात्रा में लेखन और चर्चा हो रही है। इधर इन दिनों में अस्मितामूलक विमर्श को भी इसी कड़ी में जोड़ा गया है।"अस्मितामूलक विमर्श के अंतर्गत वे सभी विषय आते हैं जिन्हें मनुष्य की अस्मिता से जोड़कर देखा जाता है। अतः जिन्हें हास्य पर लाकर छोड़ दिया गया है। भाषा, धर्म, लिंग, वर्ण, जाति इत्यादि विषय अस्मितामूलक विमर्श के ही उदाहरण है।" एक्कीसवीं सदी में देश की आधी आबादी अर्थात महिलाएं हाशिए पर ही है। भूमंडलीकरण निजीकरण उदारीकरण के पश्चात भी उनकी स्थिति गति में बहुत अधिक बदलाव नहीं आया है| दृश्यमान स्थिति में महिलाएं उच्च शिक्षित होकर ऊंचे पदों पर कार्यरत है किंतु सवाल है कि ऐसी कितनी महिलाओं के जीवन में बदलाव आया है?..... मुझे लगता है स्थिति समाधान कारक नहीं है। आज भी महिलाओं को हाशिए की दृष्टि से ही देखा जाता है। चाहे वह शिक्षित हो या अशिक्षित। सदी बदलने पर हालात बदलने चाहिए किंतु सदियों से स्त्री के संदर्भ में मनुवादी पुरुष प्रधान संस्कृति में जो विचार किया है, वही आज भी चल रहा है। एक्कीसवीं सदी के महिला साहित्य का अध्ययन करने पर यह महसूस होता है। अपने अस्तित्व एवं अस्मिता के लिए संघर्ष करती हुई महिला साहित्यकार अपनी आत्मकथाओं के माध्यम से इसे उजागर कर रही है यह केवल उनका स्वयं का जीवन न होकर स्त्री जीवन के पूरी सामाजिक स्थिति-गति का अंकन है।

हिंदी साहित्य जगत में कविता,कहानी, उपन्यास, रेखाचित्र आदि विधाओं में महिला केंद्रित बहुआयामी लेखन हो रहा है। लेकिन आत्मकथा ऐसी विधा है जिसमें स्वअनुभव, सत्य, संघर्ष एवं विद्रोह का अंकन हुआ है। मैत्रेयी पुष्पा की 'कस्तुरी कुंडल बसै और गुड़िया भीतर गुड़िया', रमणिका गुप्ता 'हादसे', प्रभा खेतान 'अन्य से अनन्या', कौशल्या बैसंत्री ' दोहरा अभिशाप', चंद्रकिरण सौनरेक्सा 'पिंजरे की मैना', सुशीला टाकभौरे 'शिंकजे का दर्द', रजनी तिलक 'अपनी जमीं अपना आसमां', आदि और अन्य आत्मकथाओं में सभी लेखिकाओं ने अपने अस्तित्व और अस्मिता के लिए संघर्ष किया है जिसका लेखा-जोखा उनके द्वारा लिखे गए साहित्य में भी है किंतु आत्मकथा इसका जीवंत दस्तावेज है। मैत्रेयी पुष्पा ने अपनी आत्मकथा दो भागों में लिखी है 'कस्तूरी कुंडल बैसे'

और 'गुड़िया भीतर गुड़िया' आत्मकथाओं में लेखिका अपनी मां तथा अपने जीवन की कथा-व्यथा प्रस्तुत की है। दोनों भी अपने अस्तित्व एवं अस्मिता के प्रति सजग महिलाएं हैं। दोनों ने कड़ा संघर्ष करके अपना स्वाभिमान बरकरार रखा है। मैत्रेयी पुष्पा पर अपनी मां के संस्कार और विचारों का प्रभाव है। विपरीत परिस्थिति में भी रचनाकार को पढ़ाया, लिखाया और उच्च शिक्षित बनाकर नैतिक, पारिवारिक मान्यताओं से अवगत कराया है। अपने स्वयं के प्रगति में बाधक स्थिति बेटियों के जीवन में ना आए इसलिए बेटी को समझाते हुए वह मैत्रेयी से कहती है "बबली, तेरे पिता के परिवार की परंपरा क्या है? यह परिवार उसे समाज का हिस्सा है बबली, जहां औरतें केवल शरीर के रूप में होती हैं, जो पुरुषों की सेवा सुविधा के लिए श्रम करें। इसके अलावा वे केवल शरीर के रूप में होती है। इसके अलावा वे योनि रूप में रहती है की पुत्रवती होकर वंशबेल बढ़ाएं, बेटी पैदा करे तो अगली पुरुष पीढ़ी के काम आए।" लेखिका ने पितृसत्ता मानसिकता का पर्दाफाश किया है। पुरुषसत्ताक समाज की यह प्रवृत्ति आज भी ज्यों-कि-त्यों बनी हुई है। इसलिए तो मैत्रेयी की मां उसे अपने अस्तित्व के प्रति जागरूक करती है। मां से विरासत में मिले विचार आचरण में लाकर बेटी अपने हक के लिए लड़ती है। इतना ही नहीं तो मां की मृत्युपरांत पिता और पितामह की विरासत पर एकमात्र दावेदार होने के कारण अधिकार भी जतलाती है। उन्होंने अपनी आत्मकथा के माध्यम से महिलाओं को संदेश दिया है कि, "औरतों को घर के अंदर रहकर और घर से बाहर रहकर दोनों स्थितियों में अपने स्व को स्थापित करने के लिए संघर्ष तो करना ही है। उसे प्रेम, तिरस्कार और अवहेलना की चुनौती स्वीकार करनी ही है।" समय कितना भी तेज तर्रार गति से दौड़ता रहे, महिलाओं को अपने अस्तित्व के लिए स्वयं ही प्रयास करने होंगे।

रमणिका गुप्ता की 'हादसे' आत्मकथा लीक से हटकर है। उन्होंने सामाजिक, राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं की स्थिति को प्रस्तुत किया है। साथ अपने विद्रोह को विवाह के बाद भी जस-के-तस रखा है। इस संदर्भ में वह लिखती है, "अपनी अलग पहचान बनाने की धुन मुझ में इतनी तीव्र हो गई थी कि अगर किसी समारोह का निमंत्रण पत्र मेरे नाम पर ना आए तो मैं प्रकाश के साथ श्रीमती वी.पी .गुप्ता बनकर जाने से इन्कार कर देती थी। मुझे लोग मेरे कारण पहचाने, प्रकाश की पत्नी होने के कारण नहीं। मेरे मन में यह भावना अति तीव्र हो गई थी।" सामाजिक संरचना के अनुसार किसी भी परिवार में महिला के नाम से कोई निमंत्रण पत्र आते ही नहीं है। क्योंकि परिवार का मुखिया पुरुष ही होता है। रमणिका गुप्ता ने इस परंपरा को नकारा। मेरा अपना भी अलग अस्तित्व है मुझे भी सम्मान के साथ बुलाया जाना चाहिए यह मानसिकता महिलाओं में रचने, बसाने, कार्य करनेवाली वैचारिकी प्रस्तुत की है लेखिका ने । नहीं तो यह रमणिका गुप्ताने सामाजिक, राजकीय, आदिवासी क्षेत्र में कार्य करते हुए बिना हिचकिचाहट के सही गलत के अंतर को समझाया है।

प्रभा खेतान 'अन्या से अनन्या' मैं अपने पारिवारिक जीवन के साथ उद्योजक बनाने की कथा अंकित की है। 22 उम्र में प्रभा खेतान का नेत्र चिकित्सक सर्राफ के साथ प्रेम का रिश्ता बन गया था। डॉ.सर्राफ उनसे 28 साल बड़े थे किंतु प्रभा खेतान ने अविवाहित रहकर उनके साथ-सा जीवन बिताने का फैसला किया। अपने साहसिक निर्णय पर वह कहती है, "जो घट गया, जिससे प्रेम हो गया मैं उसे विवाह मानती हूं, और समाज? मुझे समाज की परवाह नहीं" प्रभा क्षेत्र ने पारिवारिक सामाजिक बंधनों को तोड़-मरोड़ कर अपनी इच्छा के अनुसार जीने का निश्चय किया था। वह जिद्दी तथा साहसी है। इसलिए समाज के निर्धारित मानदंड तोड़कर उसने अपने अस्तित्व को स्थापित किया। प्रभा खेतान इस आत्मकथा में बाजार उद्योग जगत में स्त्रियों की स्थिति गति रेखा अंकित की है। उन्होंने 'प्रभा खेतान' नामक संस्था अपने जीवन काल में स्थापित की जो मानव मात्र के कल्याण के लिए चलाई जाती है। अपनी अस्मिता बनाए रखने के लिए प्रभा ने संघर्ष किया। स्त्रीत्व के पारंपारिक दुय्यम स्थान को नकार दिया। भारतीय पारिवारिक जीवन संदर्भ के नियम केवल स्त्री के लिए ही बने हैं, पुरुषसत्ताक समाज ज्यों चाहे वह

करेगा ऐसा क्यो? पर वह डॉक्टर साहब से सवाल करती है। उनका मानना है कि स्त्री और पुरुष के लिए भिन्न-भिन्न मान्यताएं नहीं होनी चाहिए जब हम एक ही लोकतंत्र में रहते हैं तो नियम अलग-अलग क्यों? सारी शर्तें सारी परंपराएं महिलाओं के लिए ही है क्या?

कौशल्या बसैत्री 'अभिशाप में महिला जीवन की तथा दलित जीवन के दोहरे अभिशाप को व्यक्त करती है। परिवार की स्थिति अत्यंत गरीब थी। फिर भी शिक्षा ग्रहण की और विवाह के पश्चात उच्च शिक्षा प्राप्त की। विवाहोपरान्त पति से प्रताड़ना ही मिली। लेकिन संघर्ष करते हुए अन्याय के खिलाफ लड़ती रही। अपने पति के अत्याचार का वर्णन करते हुए वे लिखती हैं, "अपने मुंह से कहता हूं मैं बहुत शैतान आदमी हूं। उसने मेरी इच्छा, भावना, खुशी की कभी कद्र नहीं की। बात-बात पर गाली वह भी गंदी-गंदी और हाथ उठाता। मारता भी बहुत क्रूर तरीके से।"इसलिए उन्होंने ने पति से तलाक लिया। 10 वर्ष तक कड़ा संघर्ष किया। पति के अत्याचारों से मुक्ति पाली ली। अपने अस्तित्व के लिए समय आने पर विद्रोह करना पड़ता है यह संदेश उन्होंने अपनी आत्मकथा के माध्यम से दिया। वे महिलाओं को समझाते हुए कहती है कि, "अगर हम स्वाभिमानी अपनी उन्नति करना चाहते हैं, तब हमें अपने पांव पर खड़े होकर अपने पर भरोसा रख कर आगे बढ़ना होगा। हम हमें अपने अंदर शक्ति पैदा करनी होगी। किसी का सहारा लेकर चलने से काम नहीं बनेगा" महिलाओं का आर्थिक सक्षीमीकरण होने के बाद ही वह निर्भयता से जी सकती है। अन्यथा उसकी कमजोरी का फायदा उठाकर व्यवस्था उसे चाहे जब अन्याय-अत्याचार करने के लिए तैयार है ही।

चंद्र किरण सौनरेक्सा ने 'पिंजरे की मैना' में अपने जीवन की हर घटना को बिना झिझक प्रस्तुत किया है। उनके कथा के संदर्भ में ममता कालिया का कथन महत्वपूर्ण है "21वीं शताब्दी महिलाओं की है, सत्य पर मोहर लगाई है हिंदी की महिला रचनाकारोंने, जब एक के बाद एक स्मरणीय आत्मकथाओं की श्रृंखला उनकी कलम से नि:सृत हो रही है। प्रसिद्ध रचनाकार चंद्रकिरण सौनरेक्सा की आत्मकथा 'पिंजरे की मैना' इसी श्रृंखला की नवीनतम कड़ी है। रचनाकार पति द्वारा बहुत बार प्रताड़ित हुई है। उन्हें बार-बार मातृत्व भार धोने को भी मजबूर किया। फिर भी वह सब कुछ सहते हुए अपना लेखन और नौकरी करती रही। पति से उन्होंने कोई गिला-शिकवा नहीं किया। अपने अस्तित्व तथा अस्मिता को बनाए रखा। उनका विद्रोह सूप्त था, जो लेखन के माध्यम से उजागर हुआ। "इस देश मे हर नारी 'पिंजरे की मैना' के रूप मे पैदा होती रही है। पिंजरे समेत उड़ने की क्षमता रखने वाली महिलाएं मिल का पत्थर बन जाती है।"इसलिए दृश्यमान रूप में उल्लिखित महिला सबलीकरण को उदाहरण के रूप में देखा जाता है।

सुशीला टाकभौरे ने 'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा में लिखा है "शिकंजे का दर्द में संताप है, दलित का स्त्री होने का। इसमें शोषित, पीड़ित, अपमानित अभावग्रस्त दलित जीवन की व्यथा है। स्त्री होना ही जैसे व्यथा की बात है। चाहे हमारा देश हो या विश्व के अन्य देश हर शोषण, उत्पीड़न का शिकार स्त्री ही रही है। जिस देश में वर्ण भेद, जाति भेद की कलुषित परंपरा है वह दलित स्त्री शोषण की व्यथा और भी गहरी हो जाती है। सदियों से तिरस्कार और अभावग्रस्त परिस्थितियों में रहने के लिए मजबूर किए गए दलित जीवन की व्यथा कथा का दर्द 'शिकंजे के दर्द' में समाहित है। शिकंजे का दर्द लिखने का उद्देश्य दर्द देने वाले 'शिकंजे' को तोड़ने का प्रयास है।" रचनाकार ने अपनी सामाजिक जिम्मेदारी को निभाते हुए समाज में महिला अस्तित्व और अस्मिता को बनाए रखने के लिए जो भी शिकंजे इस व्यवस्था ने तैयार किए हैं उन्हें तोड़ना आरंभ किया है अपने लेखन के माध्यम से। कहां जाता है कि कलम तलवार से तेज होती है जिसका उपयोग महिला आत्मकथाकार महिलायें कर रही है। सुशीला टाकभौरे

ने डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के विचारों पर अमल कर अपने कार्य किए। विभिन्न संकटों का सामना करते हुए अपने अस्तित्व तथा अस्मिता को बनाए रखा।

निष्कर्षत: समकालीन महिला रचनाकारोंने अपनी आत्मकथाओं में निर्भीकता से अपने विचार रखे हैं तमाम बन्धनों एवं वर्जनाओं के बीच भी वह स्वयं को सिद्ध करने में सक्षम रही है। अपने अस्तित्व एवं अस्मिता को बनाए रखने में सफल हो रही है। यह अस्मितामूलक विमर्श का ही परिणाम है। हाशिए के लोग केंद्र में आ रहें हैं। समाज परिवर्तन के लिए इनका केंद्र में आना जरूरी है। साहित्य में यह ताकत होती है।

संदर्भ सूची

1) प्रो.प्रतिभा मुदलियार-2021-नागफनी पत्रिका--रोमी प्रकाशन

2) https://hi.m.wik books.orj -wik;

3) मैत्रेयी पुष्पा 2002 कस्तूरी कुंडल बैसे ---राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

4) वही, 2008, गुड़िया या भीतर गुड़िया -- राजकमल प्रकाशन

5) रमणिका गुप्ता -2005 -हादसे- राधाकृष्ण प्रकाशन

6) प्रभा खेतान --2007 --अन्या से अनन्या-राधाकृष्ण प्रकाशन

7) कौशल्या बैसंत्री ---1999--दोहरा अभिशाप ---परमेश्वरी प्रकाशन नई दिल्ली

8) चंद्किरण सौनरेक्सा --2010-- पिंजरे की मैना' --पूर्वोदय प्रकाशन नई दिल्ली

9) सुशीला टाकभौरे --2011--शिकंजे का दर्द---वाणी प्रकाशन नई दिल्ली

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

समकालीन हिन्दी कविता में मज़दूर वर्ग का जीवन यथार्थ

डॉ .प्रिया ए

असिस्टंट प्रोफेसर
हिंदी विभाग ,के.जी कॉलेज
पाम्पाडी, कोट्टयम, केरल -686502

शोध सार :

समकालीन हिन्दी कविता के क्षेत्र में भारतीय मज़दूर पर आज तक कई बार लिखा गया है। हमारे देश का बुनियादी ढाँचा और प्रगति उस देश के मज़दूरों, मेहनतकशों और किसानों पर निर्भर होती है। उत्तराधुनिक दौर में भी इस वर्ग का जीवन दूभर हालत में ही है। प्रारंभ से ही इस वर्ग को हाशिए पर रखा गया है तथा इनका शोषण भी लगातार होता रहा है। देश में आर्थिक विकास के दावे बड़े ज़ोर के साथ होते रहे हैं। लेकिन श्रमिक वर्ग के जीवन में कोई परिवर्तन नहीं आया है। समकालीन हिन्दी कवियों ने इस क्षेत्र में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए श्रमिकों को उनका वास्तविक अधिकार दिलाने हेतु प्रयास किया। समकालीन हिन्दी कविता उनके सम्मान देने की आवश्यकता को स्पष्ट करती है।

बीज शब्द : महानगर, श्रमिक, शोषण, अत्याचार, रोज़गार, परिश्रम, पलायन।

आमुख :

वैश्वीकरण के इस दौर में औद्योगिक क्राँति के साथ साम्राज्यवादी व्यवस्था भी फैल गयी है। पूँजीपति अपने धन के बल पर समाज के श्रम का अनवरत शोषण करते रहे। समाज में मानवीय संवेदना क्षीण होने लगी और शोषण बढ़ता गया। समाज के मज़दूर वर्ग भी शोषण के शिकार हुए। पूँजीवादी व्यवस्था ने मज़दूर वर्ग के आत्मविश्वास को अपने पैरों तले कुचला। शोषक और शोषित वर्ग के बीच का अन्तर बढ़ता गया। आज के समय में खेत, कारखानों एवं खदानों में काम करनेवाला मज़दूर वर्ग सबसे उपेक्षित, लाचार एवं गरीब बना हुआ है। समकालीन कविता ऐसे श्रमिकवर्ग की दयनीय हालत को प्रस्तुत करती है। उनके जीवन की असुरक्षा, गरीबी, संवेदनशून्यता, भुखमरी, अमानवीय कार्यों का विरोध जैसी समस्याओं का उल्लेख समकालीन कवि अपनी रचनाओं में करते हैं।

वर्तमान समय में समाज की आर्थिक पृष्ठभूमि में मज़दूर वर्ग का शोषण हो रहा है। एक ओर साम्राज्यवादी ताकतों की अर्थलिप्सा बढ़ रही है और दूसरी ओर श्रमिक वर्ग के शोषण के आयाम व्याप्त हो रहे हैं। आर्थिक विद्रूपताऐं, आर्थिक विसंगतियाँ, विडंबनाओं के चलते मज़दूरों को अपने घर व गाँव में काम न मिलने के कारण शहर की ओर पलायन करने के लिए विवश हो जाते हैं। ऐसी वास्तविकता को उमाशंकर चौधरी की कविता 'रामदास-२' व्यक्त करती है - "कोलकाता में जब हाथ गाड़ी खींचने पर / प्रतिबन्ध लगने वाला था / तब वह भविष्य की उन आशंकाओं को ध्यान में रखते हुए / रोज़गार की तलाश में दिल्ली आया था / दिल्ली, जो सपनों और संभावनाओं का शहर है / जहाँ कहते हैं कि पैसे सड़क पर बिछे हुए हैं / सिर्फ चुनने की समझ आनी चाहिए।"[1]

महानगरों में शरण लेने हेतु, दूर-दूर गाँवों से इन मज़दूरों को ट्रैन के सहारे या बस में सफर करना पड़ता है। एक बड़ी समस्या यह भी है कि इन्हें गाड़ियों में बैठने की जगह भी नहीं मिलती। जान की बाजी लगाकर इनको दुविधाग्रस्त ढ़ंग से सफर करना पड़ता है। अपने गाँव से विस्थापित होना निपति बन जाती है।

आज के राजनीतिक संदर्भ में भूखा विवश होकर श्रमिकवर्ग जीवन बिता रहा है। राजनीति के दाव-पेंच को झेलते हुए पूँजीवादी अर्थव्यवस्था को सहन करते हुए अपना दिमाग, शारीरिक बल पूँजीपतियों के काम करने के लिए प्रयोग करता है। वह रात-दिन कारखानों, मिलों, खदानों में काम करके अपने मालिकों की तिजोरियाँ भरता रहता है। पर उसका अपना जीवन गरीबी से युक्त रहता है। मज़दूर वर्ग की गरीबी की हालत को 'गरीब लोग' शीर्षक कविता स्पष्ट करती है - "गरीब लोगों की आत्माओं से भाप निकलती है। जिससे चलती है रेलें, दौड़ते हैं स्टीमर / उनके पसीने से बनता है पेट्रोल / उनके खून से बनते हैं दुनिया के सारे रंग / उनके पेट में धधकता धुंध आता रहता है चूल्हा / जिसमें सिंकती हैं रोटियाँ।"[2]

वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था एक आम आदमी की कमज़ोरी को अपनी ताकत बढ़ाने के हथियार के रूप में प्रयोग करती है। आम आदमी के चारों ओर राजनीतिक संघर्ष के उलझन बहुत अधिक हैं; राजनीतिक संस्कृति इन्हीं उपकरणों की सहायता लेकर मानव जीवन को बोझिल बना देती है। ऐसी अपसंस्कृति के चंगुल में पड़कर संवेदनात्मक क्रियाऐं अपना अर्थ खो देती हैं। श्रमिक वर्ग को अपनी आजीविका चलाने के लिए बहुत मेहनत करना पड़ता है। तीष्ण ताप में तपता रहता है, पर पूरे दिन की मज़दूरी के बाद भी उसे कुछ हासिल नहीं हो पाता। सामाजिक ढ़ाँचे में बेबस होकर जीवन बिताता पड़ता है।

उत्तराधुनिक युग में कई प्रकार की विकास योजनाऐं क्रियान्वित हुईं, उनका प्रभाव महानगरों में ही लक्षित होता है। ग्रामीण स्तर पर कुछ उल्लेखनीय बदलाव नहीं आए। सरकार ग्राम्य-विकास पर खर्चे की जीतनी चर्चा करें तो भी मज़दूर व किसान की समस्याओं का कोई समाधान नहीं हो पाया। ऐसी विषम परिस्थितियों से श्रमिक वर्ग को जूझना पड़ता है। सरकार दावा करती है कि गरीब लोगों के लिए रोज़गार के अवसर उपलब्ध कराए जा रहे हैं। पर सच्चाई यही है कि गाँव के गरीब लोगों को अपने परिवार का पेट पालने के लिए रोज़गार के अभाव में शहरों में आकर मंडी की वस्तु बनना पड़ता है। ऐसी पीड़ा ग्रस्त हालत को अंकित करती है 'इश्तहार' शीर्षक कविता - "आजकल सरकारी इश्तहार / दीवार पर / चिपका कोई देवता या अवतार है / xxxx देश कितनी तरक्की कर रहा है / कि दुनिया में हमारा रुतबा बढ़ रहा है / चीज़ों की कीमतें गिर रही हैं / और हमें विश्व बैंक से नया कर्ज़ा मिल रहा है / इस कर्ज़ा से कई कारखाने लगाए जाएँगे / कारखानों से उद्योग चलाए जाएँगे / उस लाभ से गरीबों के लिए घर बनाए जाएँगे।"[3]

औद्योगिक क्राँति के युग में श्रमिक मज़दूरों का जीवन सबसे दुविधाग्रस्त होता है। गरीबी के कारण उसका जीवन जटिल बना हुआ है। तानाशाही वर्ग मौकापरस्त बनकर मज़दूरों को शोषण की जाल में फँसाते हैं। अपनी बुनियादी ज़रूरतों को पाने के लिए उन्हें इधर-उधर भटकना पड़ता है। ग्राम्य-विकास हेतु निकली हुई सरकारी योजनाऐं मुख्यतः भ्रष्टाचार की भेंट चढ़ गईं। अल्प विकास के साथ गाँव या शहर के मज़दूर असुरक्षित हालत में जीने के लिए अभिशप्त है।

बढ़ते हुए नगरीकरण ने मनुष्य की सत्ता के विरुद्ध हस्तक्षेप किया है। कामगार वर्ग को आर्थिक तंगी, विपन्नता में जीवन बिताना पड़ता है। समाज उच्च-मध्य वर्ग को अन्न, कपडे का उत्पादन करनेवाला मज़दूर-वर्ग स्वयं अभावों में जीवन बिताता है। नगर-महानगरों की बदबूदार बस्ती में उसे जीवन बिताना पड़ रहा है। इस

जीवन यथार्थ को 'खुशबु रचते हैं हाथ' शीर्षक कविता शब्दबद्ध करती है - "कई गलियों के बीच / कई नालों के पार / कूड़े करकट / के ढ़ेरों के बाद / बद्बू से फटते जाते इस / टोले के अंदर / खुशबू रचते हैं हाथ / यहीं इस गली में बनती हैं / मुल्क की मशहूर अगर बत्तियाँ / इन्हीं गन्दे मुहल्लों के गन्दे लोग / बनाते हैं केवड़ गुलाब खस और रातरानी।"[4]

सुविधाभोगी उच्चवर्ग इन गन्दे मुहल्लों में रहनेवाले लोगों से घृणा करता है। शहर के गन्दे मुहल्लों में रहकर यह वर्ग सभ्य समाज के लिए खुशबूदार अगरबत्तियाँ बनाता है। इन अगरबत्तियों को ईश्वर के सम्मुख जलाकर प्रार्थनारत होता है। स्वयं गन्दे परिवेश में जीवन बिताकर यह वर्ग समाज को सुगन्ध का वितरण करता है। इनके श्रम का कोई मान-सम्मान नहीं होता है। उन्हें केवल तिरस्कृत दृष्टि में देखा जाता है।

समकालीन कवि अपनी रचनाओं के माध्यम से श्रम की प्रतिष्ठा करके शोषण को खत्म करना चाहते हैं। वे दिन-भर परिश्रम करनेवाले कामगार वर्ग की पीड़ा और दयनीय स्थिति को हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं और साथ ही हमें सोचने के लिए विवश भी करते हैं। 'रात का ढ़ाबा' शीर्षक कविता मज़दूरों की दूभर हालत को चित्रित करती है -"चौड़ी हो रही हैं सड़कें / चढ़ रही है रात धीरे-धीरे / आयेंगे रात की पाली के छूटे मज़दूर / ज़ोर-ज़ोर से बोलते / जब ठंडे हो रहे होते हैं सारे मज़दूर / तब पूरे ताव पर होता है रात का ढ़ाबा।"4

महानगरों में मज़दूर रात भर काम करके भोजन करने के लिए ढ़ाबे पर आते हैं। आनेवाले राहगीरों को भोजन पकाकर देने के लिए ढ़ाबे में काम करनेवाले मज़दूर तैयार रहते हैं। शहरीकरण के दौर में बड़ी-बड़ी इमारतें, पुल, बनाए जा रहे हैं। मज़दूरों को धूल में कारखाने से निकलते धुँए में काम करना पड़ता है। उनकी बस्तियों को उजाड़ दिया जाता है। समाज की आधारशिला ये मेहनतकश वर्ग ही होता है। पर शहरीकरण की भागदौड़ में दबकर इनकी नींव हिल जाती है।

मज़दूरों को अपने परिवार को पालने के लिए खतरनाक काम भी करना पड़ता है। कोयले के खदानों में भी इस वर्ग को काम करना पड़ता है। उनको ज़मीन से कई हज़ारों फीट खुदाई करनी पड़ती है। कई प्रकार के खतरे भी इनके सामने उपस्थित हैं - खदान की काली मिटटी के नीचे दबना होता है। कभी जहरीली गैस का दबाव बढ़ने पर उनकी मौत होने की संभावना है। ज़िन्दगी और मौत के बीच इतना कम अंतर होने के बावजूद भी हज़ारों मज़दूर काम करते हैं। कोयले के खान के कारण कई लोगों का जीवन दफन हो गया है। इस भयानक त्रासदी को चिन्हित करनेवाली कविता है 'आदमी को लीलती हैं खाने' - "आदमी को लीलती हैं खानें / ऐसे ही नहीं रतन उड़ेलती है यह रत्नगर्भा / कितनी-कितनी ज़िन्दगियाँ दफन हो जाती हैं / इनकी छाती में सेंध लगाते-लगाते / आदमी को लीलती है खाने / तब जाकर निकलता है कोयला / आदमी को चूसते हैं कारखाने / तब जाकर ढलता है लोहा।"[6]

कोयला खनन ने साम्राज्यवाद के विकास को बढ़ावा दिया। औद्योगिक क्राँति के युग में भी कोयला खनन के महत्व को खत्म नहीं किया जा सका है। यह आर्थिक विकास और तकनीकी नवाचार का एक प्रमुख चालक था। लेकिन कोयला खदानों में काम करनेवाले मज़दूरों को कम वेतन ही दिया गया। इस उद्योग ने नए सामाजिक वर्गों के निर्माण का नेतृत्व किया, जिसमें श्रमिक वर्ग और औद्योगिक पूँजीपति शामिल है। इस उद्योग ने समाज में नए ढ़ंग की आर्थिक संरचना को गठित किया। आम आदमी के जीवन के संघर्षों की खुली पहचान यहाँ देख सकते हैं। उच्चवर्ग मज़दूर समुदाय को अपना गुलाम मानता है एवं दास्तापूर्ण जीवन बिताने पर विवश करता रहता है। आम जनता का जीवन पूंजीपतियों, सूदखोरों एवं राजनीतिक नेताओं के गठबन्धन से जकड़ा हुआ है।

हमारे देश के श्रमिक वर्गों की हालत बहुत ही कष्टदायक होती जा रही है। उनके पास खाने के लिए अन्न की कमी है और विपन्नता से बचने के लिए कोई काम भी नहीं है। वर्तमान समय में देहातों में और शहरी क्षेत्रों में तमाम तरह के काम करनेवालों की संख्या बहुत है, साल के सभी दिन उनके पास काम भी नहीं है। रोज़गार की तलाश में इनको महानगर की ओर पलायन करना पड़ता है। अपनी बस्ती से काम की तलाश में महानगर की तरफ जानेवाले मज़दूरों की जीवन गाथा को 'कलकत्ता एक जादुई नगरी है' शीर्षक कविता वाणी देती है - "कोलकाता में चारों तरफ ही जादू है / यहाँ की सरकार भी जादू जानती है / सरकार की पुलिस / और सरकार के कर्मचारी भी जादू जानते हैं / और कोलकाता से / और किसी दूसरे शहर में मज़दूरी करता।"[7]

मज़दूरों को गरीबी की पीड़ा सहनी पड़ती है, साथ ही यह वर्ग राजनीतिक कुचक्रों से भी संत्रस्त रहता है। सत्तारूढ़ और विपक्षी दल की खींचतान में शिकार हो जाता है। श्रमिकों की सहायता के लिए कई योजनाओं की घोषणा सरकार करती रहती है। अफ्सरशाही कुचक्रों में पड़कर मज़दूरों का जीवन कठिनाइयों से भरा रहता है।

निष्कर्षः

वर्तमान मशीनी युग ने मनुष्य के नयी ढ़ंग की जीवन शैली को जन्म दिया है, जिसमें पूँजीपति, साम्राज्यवादी ताकतें ज़्यादा विकसित हो रही है और गरीबों का जीवन ज़्यादा बदत्तर बनता जा रहा है। मज़दूर वर्ग भी समाज की एक इकाई है। इसमें स्त्री, पुरुष और बच्चे भी शामिल हैं। आर्थिक तंगी के कारण मज़दूरों के परिवार के सभी सदस्यों को मज़दूरी करनी पड़ती है। समयानुसार श्रम में बदलाव आया है, पर इनके जीवन में कोई विशेष सुधार नहीं हो पाया है। समकालीन हिन्दी कविता श्रमिकों की दुर्दशा का ऐतिहासिक दस्तावेज़ बनती है। समकालीन कवियों का कविकर्म शोषित, असहाय, विवश एवं मेहनतकश व्यक्तियों की व्यथा कथा को प्रस्तुत करने के साथ ही उनको प्रश्रय देने का दायित्व भी संभालता है।

संदर्भ

1. उमाशंकर चौधरी - दू.सं. 2011 - कहते हैं तब शहंशाह सो रहे थे - रामदास-२ - भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली - पृ. १०
2. ऋतुराज - चुनी हुई कविताऐं - प्र.सं. 2008 - कवि ने कहा - गरीब लोग - किताबघर, दिल्ली - पृ. ५३
3. कुमार विकल - संपूर्ण कविताऐं - प्र.सं. 2013 - इश्तहार - आधार प्रकाशन - पृ. ५५
4. अरुण कमल - प्र.सं. 2004 - अपनी केवल धार - खुशबू रचते हैं हाथ - वाणी प्रकाशन, दिल्ली - पृ. ८०
5. अरुण कमल - प्र.सं. 1996 - नए इलाके में - रात का ढ़ाबा - वाणी प्रकाशन, दिल्ली - पृ. ३८
6. मदन कश्यप - चुनी हुई कविताऐं - प्र.सं. 2008 - कवि ने कहा - आदमी को लीलती है खानें - किताबघर प्रकाशन, दिल्ली - पृ. ४७
7. निशांत - दू.सं. 2011 - जवान होते हुए लड़के का कुबूलनामा - कलकता एक जादुई नगरी है - भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली - पृ. १३

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

अनामिका की कविताओं में अभिव्यक्त स्त्री विमर्श

डॉ.अनिल ढवळे

प्रोफे. हिन्दी विभागाध्यक्ष
जोशी-बेडेकर महाविद्यालय, ठाणे – महाराष्ट्र

प्रस्तावना -

"स्त्री विमर्श" वर्तमान साहित्य जगत् का एक महत्वपूर्ण विषय है जो समाज में महिलाओं के स्थान, अधिकार, और समानता के संबंध में सकारात्मक विचार करता है। यह विमर्श समाज में लिंग भेदभाव, और महिलाओं के प्रति उत्कृष्टता की प्रतिष्ठा के संदर्भ में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है। दुनिया भर के समाज में स्त्रियों का स्थान यह अत्यंत महत्वपूर्ण विषय है जिस पर आधुनिक काल में विचार किया जा रहा है। स्त्री को मानव के रूप में देखना तथा उसके मानवाधिकारों को स्वीकार करते हुए वे अधिकार उसे देना यह कहने-सुनने के लिए बडी आसान बात लगती है। परंतु समाज और परिवार में स्त्री को मानव के रूप में देखा जाता है या नहीं यह आज भी एक बड़ा सवाल है। समाज में, महिलाओं का स्थान संवेदनशीलता और सामाजिक परिवेश के प्रति उनके दृष्टिकोण के अनुसार बदलता है। स्त्री विमर्श का मुख्य उद्देश्य समाज में महिलाओं के समान अधिकार, समानता, और सम्मान को बढ़ावा देना है। समाज में महिलाओं के स्थान के विमर्श के दृष्टिकोण से, हमें यह देखने को मिलता है कि कैसे वे प्रतिबद्धता, संघर्ष, और साहस के साथ अपने अधिकारों की लड़ाई लड़ रही हैं। स्त्री को देवी के रूप में पूजना एक अलग बात है और स्त्री को घर-परिवार में बराबरी का सम्मानिक दर्जा देना अलग समझा जाता है। कहने के लिए हमारे साहित्य में स्त्री के संबंध में बहुत आदर्श सुक्तियों को गढा गया है किंतु प्रत्यक्ष जीवन में, यथार्थ रूप में उन सुक्तियों पर अमल करने की बात आती है तो पुरुष का अहंकार आडे आ जाता है।इसके अलावा, स्त्री विमर्श हमें ध्यान में लाने के लिए आवश्यकता है कि कैसे सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश में महिलाओं के स्थान को समान अधिकार, स्वतंत्रता, और सम्मान के साथ स्थापित किया जा सकता है। महिलाओं के स्थान पर विचार करते समय, हमें यह भी समझना चाहिए कि स्त्री विमर्श निर्देशित कैसे किया जाता है और यह कैसे समाज में संजीवनी प्राप्त करता है। स्त्री विमर्श के माध्यम से, हम समझ सकते हैं कि महिलाओं के स्थान के संदर्भ में आधुनिक समाज कैसे सोच रहा है, और कैसे हम सभी मिलकर इसमें सुधार कर सकते हैं। स्त्री विमर्श हमें यह सिखाता है कि महिलाओं के स्थान के संबंध में जिस तरह की सोच हमारे समाज में प्रबल है, उसे पुनर्विचार किया जाना चाहिए। यह एक नई सोच की आवश्यकता है, जो समाज में समानता, न्याय, और समानता के लिए लड़ने के लिए प्रेरित करती है। हिन्दी साहित्य में उत्तरआधुनिक काल खंड में जिन विमर्शों ने खलबली मचा दी है उनमें से एक महत्वपूर्ण विमर्श स्त्री विमर्श या नारीवादी साहित्य है। नारी विमर्श को विमर्श के रूप में स्थापित करने के लिए अनेक महिला रचनाकारों ने अपनी लेखकीय प्रतिबद्धता बडी इमानदारी से निभाई है। स्त्री विमर्श की सशक्त हस्ताक्षरों में एक महत्वपूर्ण नाम अनामिका जी का है। अनामिका ने अपनी कविताओं में स्त्री जीवन के विविध पहलुओं को समस्त संवेदनाओं के साथ प्रस्तुत किया हे।

शोधालेख के उद्देश्य -

1. 'स्त्री विमर्श' अवधारणा का विवेचन करना।

2. स्त्री विमर्श की सशक्त सहस्ताक्षर अनामिका का परिचय देना।

3. समकालीन स्ती विमर्श में अनामिका के योगदान को समझना ।

4. अनामिका कविता में अभिव्यक्त स्त्री विमर्श के बिंदुओं का विवेचन करना।

अनामिका : व्यक्तित्व एवं कृतित्व -

समकालीन स्त्री विमर्श का सर्वविदित नाम अनामिका का जन्म 17 अगस्त 1963 को बिहार के मुज़फ़्फ़रपुर में हुआ। पिता प्रोफे.श्यामनंदन किशोर बिहार विश्वविद्यालय के कुलपति रहे और माता आशा किशोर उच्च विद्याविभूषित थे। **"इनके पिता स्वर्गीय श्यामनंदन किशोर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अत्यंत प्रिय शिष्यों में थे। आचार्य द्विवेदी ने अनामिका का नाम प्रज्ञा पारमिता रखा था।"1** परंतु अनामिका यही नाम रखा गया। घर परिवार में शैक्षिक तथा साहित्यिक वातावरण था। अनामिका के जन्म को उनके माता-पिता ने उत्सव के रूप में मनाया। अत्यंत लाड-दुलार से उनका लालन पालन हुआ। अनामिका के माता-पिता उन्हें लिखने-पढने के लिए प्रेरित करते थे। अनामिका का काव्य लेखन का आरंभ बचपन में ही हुआ। उनके भाई अमिताभ राजन भी अनामिका को लेखन के लिए प्रोत्साहित करते थे। अनामिका की शिक्षा अंग्रेजी माध्यम से हुई। उच्च शिक्षा के लिए वे दिल्ली आ गयी। यहीं पर उन्होंने अंग्रेजी साहित्य में पीएच्.डी. की उपाधि प्राप्त की। अनामिका अंग्रेजी की छात्र प्रिय प्राध्यापिका है। दिल्ली विश्वविद्यालय के सत्यवती कॉलेज में वे लेक्चरर के पद पर नियुक्त हुई। अनामिका का विवाह दिल्ली के सफदरगंज अस्पताल के विख्यात डॉक्टर बिंदु अमिताभ से हुआ।

अनामिका का साहित्यिक कृतित्व भी अत्यंत समृद्ध है। पारिवारिक जिम्मेदारियों को निभाते हुए अनामिका ने विपुल मात्रा में साहित्यसृजन किया है। गलत पते पर चिठ्ठी, समय के शहर में, बीजाक्षर, अनुष्टुप, कविता में औरत, खुरदरी हथेलियाँ, दूब धान यह अनामिका के कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इसके साथ ही उपन्यास, संस्मरण, अनुवाद, शोध तथा शैक्षिक सामग्री के रूप में साहित्य प्रकाशित है।

अनामिका की कविताओं का अनुभव-संसार विविधतापूर्ण है । उनकी कविताएँ उनके भावुक अंतर्मन का प्रकाशन है। भाषा-शिल्प-बिंब में वह अलग से पहचानी जाने वाली कवयित्री हैं। साहित्यिक योगदान के लिए अनामिका को अनेक लब्धप्रतिष्ठित पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है। जिसमें भारतभूषण अग्रवाल पुरस्कार, राजभाषा परिषद पुरस्कार, साहित्यकार सम्मान, गिरिजाकुमार माथुर सम्मान, साहित्य सेतु सम्मान आदि महत्वपूर्ण हैं।

स्त्री विमर्श – अवलोकन

विमर्श से तात्पर्य - विमर्श शब्द की व्युत्पत्ति 'वि' उपसर्ग मृश धातु से धञ् प्रत्यय लग कर बना है। विमर्श के अनेक अर्थ दिए जाते हैं - विचार विनिमय, सोच-विचार, परीक्षण, चर्चा, तर्कना, विपरीत निर्णय, संकोच, संदेह, पिछले शुभाशुभ कर्मों की मन के ऊपर बनी छाप आदि। इससे स्पष्ट हो जाता है कि विमर्श से अभिप्राय है- किसी विषय वस्तु या रचना पर विचार करते हुए परीक्षण करना ।

स्त्री विमर्श - स्त्री विमर्श का एक महत्वपूर्ण लक्षण है कि स्त्री को स्त्री के नजरिए से देखना। जहां स्त्री को स्त्री की दृष्टि से देखकर विचार किया जाता है वही स्त्री विमर्श है। पितृसत्ताक समाज में यह संभव नहीं तब स्त्री ही अपने परंपरावादी सोच से उपर उठकर अपनी मुक्ति-कामना के लिए खुला तथा उन्मुक्त आसमान खोजती है, तब वह स्त्री विमर्श का आदर्श कहलाता है। स्त्री विमर्श का सशक्त हस्ताक्षर तसलीमा नसरीन इस संबंध में लिखती है कि, **"स्त्री दलित है। स्त्री की कोई जाति नहीं होती, उसका कोई धर्म नहीं होता। वह सिर्फ इस्तेमाल की वस्तु है।**

चूंकि धर्म में उसके इस्तेमाल का प्रावधान है इसलिए मैं नास्तिक हूँ, धर्म के खिलाफ हूँ। धर्म से मजबूत होता है पुरुष-तंत्र। मैं पुरुषों के खिलाफ नहीं हूँ किंतु धर्म अनुमोदित पुरुष-तंत्र के खिलाफ हूँ।"2 धर्म के द्वारा अनुमोदित पुरुष तंत्र को अनपढ स्त्री पहचान नहीं पाती थी। वह उसे अपनी नियति और भाग्य समझकर ढोती थी। संस्कारों के नाम पर तथा धर्म के नाम पर स्त्री को बाल्यावस्था से मानसिक रूप से गुलाम बनाने की प्रक्रिया आरंभ होती है। स्त्री को अपनी गुलामी की अहसास होना जहाँ से आरंभ होता है स्त्री विमर्श वहां आरंभ हो जाता है।

अनामिका के काव्य में अभिव्यक्त स्त्री विमर्श

अनामिका एक संवेदनशील कवयत्री के साथ-साथ उच्च शिक्षित, महाविद्यालय में अध्यापन कार्य करनेवाली वरिष्ठ अधिव्याख्याता हैं। अंग्रेजी भाषा तथा साहित्य का गहन अध्ययन उन्होंने किया था। इसके कारण अनामिका के काव्य में तथा समस्त लेखन में स्त्री विमर्श का एक तेजस्वी रूप उभरता दिखाई देता है।अनामिका के काव्य में स्त्री जीवन के विविध रूप अत्यंत सहज तथा सरल रूप में प्रकट हुए हैं। घर में तथा समाज में, कार्यक्षेत्र में, विविध स्थानों पर विविध भूमिकाओं को निभानेवाली स्त्रियों का भावात्मक अंकन उनकी कविता में बडे ही सहज रूप में हुआ है। समाज में स्त्री की स्थिति हर जगह लगभग एक जैसी है। स्त्री विमर्श को साहित्य चर्चा के केंद्र में स्थापित करने का महत्वपूर्ण कार्य स्त्री लेखिकाओं ने बडी इमानदारी से किया है। उनके अथक परिश्रमों का तथा तर्क-विमर्श का ही परिणाम है कि भारतीय साहित्य सजगत में स्त्री वादी साहित्य को गंभीरता से देखा जाने लगा। विमर्शवादी साहित्य को हिकारत की नजर से देखने वालों की नीति और नियत को पहचानते हुए अनामिका लिखती हैं, **"कुछ लोग विमर्शों के नाम से चिड़ते हैं। वे समझते हैं कि साहित्य की गंगा इनसे दूषित हो रही है। इससे बड़ी भांति कोई हो ही नहीं सकती। विमर्श सांझा चूल्हा है और इनका लक्ष्य है संवाद। संवाद तब तक होते हैं जब तक परिवर्तन और परिष्कार की कोई उम्मीद हो वरना अबोल हो जाता है या मारकाट शुरू हो जाती है।"3** अत्यंत व्यापक भूमिका को लेकर अनामिका अपना स्त्री विमर्शवादी सक्षम तर्क प्रस्तुत करती हैं।

हिन्दी की महान महिला रचनाकारों ने अपनी योग्यता तथा प्रतिभा से स्त्री विमर्श को सिंचने का, समृद्ध करने का महत्वपूर्ण कार्य किया है, परंतु इनमें अनामिका का योगदान विशेष माना जाता है। इस संदर्भ में डॉ. मंजू रस्तोगी जी लिखती हैं, **"कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग, ममता कालिया, मृणाल पांडे, प्रभा खेतान, अनामिका, अरविन्द जैन, राजेन्द्र यादव, राकेश कुमार आदि ऐसे नाम इस सन्दर्भ में लिए जा सकते हैं, लेकिन अनामिका का इस विषय पर जितना बेबाक और गहन अध्ययन चिन्तन देखने को मिलता है, वह स्त्री-विमर्श को एक नयी दिशा देता है। उन्होंने हर वर्ग, वर्ण, जाति, नस्ल की स्त्री को उसके अन्तर्जगत से लेकर बहिर्जगत तक, वेद-पुद-पुराण से लेकर भूमंडलीकरण इस दौर तक तथा भारतीय सभ्यताओं के साथ-साथ पश्चिमी मान्यताओं के अन्तर्गत स्त्री की स्थिति की निष्पक्ष जाँच-पड़ताल की है; जिसका साक्षात् प्रमाण है उनके द्वारा रचित स्त्री-विमर्श पर चार पुस्तकें । स्त्री अस्मिता से जुड़े हर प्रश्न को उन्होंने अपनी पुस्तकों में स्थान दिया है तथा समाधान भी प्रस्तुत किया है।"4** अनामिका भारतीय स्त्री की सामाजिक और मानसिक बनावट को अच्छी तरह से जानती हैं। भारतीय स्त्री की विचार करने का, सोचने का तरिका बहुत भिन्न है। अनामिका जानती है कि भारतीय स्त्री तर्क के आधार पर नहीं भावना के आधार पर सोचती है। समाज व्यवस्था द्वारा मर्यादित दायरे में रहकर ही वह सोचती है। नैतिकता, शुचिता, संस्कार, जीवन की सार्थकता आदि को वह अपने दृष्टिकोण से नहीं बल्कि पितृसत्ताक समाज ने जो मानदंड निर्धारित किये हैं उन आधारों पर ही वह सोचती है। भारतीय स्त्री को स्वतन्त्रतापूर्वक अपने जीवन के बारे में सोचने की अनुमति यह समाज नहीं देता। बाल्यावस्था से उसकी मानसिक बनावट कुछ इस तरह से की जाती है

कि वह चाह कर भी अपने दायरे को लाँघने का साहस जुटा नहीं पाती। अनामिका की कविता स्त्री को अपने नज़रिए से सोचने की नज़र देती है।

स्त्री विमर्श को भारतीय वैचारिक पृष्ठभूमि पर स्थापित करने वाली अनामिका जी ने महात्मा बुद्ध के जीवन-दर्शन को आपना आदर्श मानते हुए स्त्री विमर्श आगे बढाया है। आम्रपाली के माध्यम से स्त्री की ओर देखने का समाज का दृष्टिकोण बदलने का आदर्श महात्मा बुद्ध ने स्थापित किया था। इसी प्रसंग को अनामिका ने अपनी कविता की विषयवस्तु के रूप में चुनकर वर्तमान स्त्री विमर्श की एक सशक्त रचना प्रस्तुत की है। अनामिका द्वारा लिखित "अम्रपाली कविता में स्त्री विमर्श का अनूठा रूप प्रस्तुत हुआ है –

" जीवन मेरा बदला, बुद्ध मिले, बुद्ध को घर न्योतकर
अपने रथ से जब में लौट रही थी /कुछ तरुण लिच्छवी कुमारों के रथ से टकरा गया/
मेरे रथ का धुर से धुर, चक्के से चक्का, जुए से जुआ!
लिच्छवी कुमारों को ये अच्छा कैसे लगता, बोले वे चीखकर-
"जे आम्रपाली, क्यों तरुण लिच्छवी कुमारों के धुर से धुर अपना टकराती है?"
"आर्यपुत्रो, क्योंकि भिक्खुसंघ के साथ भगवान बुद्ध ने भात के लिए
मेरा निमन्त्रण किया है स्वीकार!"5

बुद्ध और आम्रपाली की कथा अत्यंत प्रेरणादायी है। एक बार भगवान बुद्ध विचरते हुए वैशाली के वन-विहार में आए। नगर में उनके दर्शन करने के लिए आमजनों के साथ ही नगर के बड़े-बड़े श्रेष्ठिजन भी उनके दर्शन के लिए पहुंचे। हर किसी की इच्छा थी कि तथागत उसका निमंत्रण स्वीकार करें और उसके घर भोजन करने के लिए पधारें। वैशाली की सबसे सुंदर और प्रतिष्ठित गणिका आम्रपाली भी बुद्ध के तपस्वी जीवन को देखकर प्रभावित हो चुकी थी तथा वह भी अपना यह घृणित जीवन छोड़कर भिक्षुणी बनना चाहती थीं। यही सोचकर वह भी गौतम बुद्ध को निमंत्रण देने पहुंच गई। बुद्ध ने उनका निमंत्रण स्वीकार कर लिया और वे उसके घर हो भी आए। जब उनके शिष्यों को इस बात का पता चला तो उन्होंने बुरा मान कर उनसे स्पष्ट रूप से कहा कि उन्होंने एक गणिका के घर जाकर बड़ा ही अनुचित कार्य किया है। अपने शिष्यों की बात सुनकर तथागत उन सबसे बोले, 'श्रावको! आप लोगों को आश्चर्य है कि मैंने गणिका के घर कैसे भोजन किया। उसका कारण यह है कि वह यद्यपि गणिका है किंतु उसने अपने को पश्चाताप की अग्नि में जलाकर निर्मल कर लिया है। आम्रपाली ने धन को तुच्छ मानकर लात मारी है और अपना घृणित जीवन त्याग दिया है। ऐसे में में उसका निमंत्रण कैसे अस्वीकार कर सकता था। आप लोग स्वयं सोचे कि क्या अब भी उसे हेय माना जाए?' गौतम बुद्ध की बात सुनकर सभी शिष्यों को महसूस हुआ कि बुद्ध तो सही बात कर रहे हैं। इसलिए उन्हें बहुत पश्चाताप हुआ और उन्होंने तथागत से क्षमा मांगी।

अनामिका स्त्री विमर्श की सशक्त रचनकार के रूप में विशेष विख्यात है। हिन्दी साहित्य में उनका विशेष स्थान हैं । अनामिका की कविताओं के समाज के विभिन्न रूपों का अत्यंत वस्तुनिष्ठ चित्रण हुआ है। अनामिका की कविताओं में स्त्री के विविध रूप देखने को मिल जाते हैं, जैसे माँ, बहन, बेटी, पत्नी, सहेली, मौसी, नानी, दादी और वेश्या आदि। एक सशक्त स्त्री विमर्श की कविताओं में वे स्त्री की नियति, आशा-निराशा, स्वप्न, संकल्प, जीवननिष्ठा, संघर्ष आदि का अत्यंत मार्मिक तथा मनोवैज्ञानिक चित्रण करती हैं। अनामिका अपनी 'विसंगति' नामक कविता में लडकियों के भाव जगत का मनोवैज्ञज्ञनिक चित्रण किया है, जो स्त्री विमर्श के अनूठी पहलु को भी उजागर करता है -

"मगर वे तो लड़कियाँ थीं
और लड़कियाँ चाहे जितनी छोटी हों
भीगने से उनको बचाया जा सकता नहीं।
भीगी हुई ही पैदा होती हैं वे तो
(भीगी बिल्लियाँ नहीं, उस अर्थ में
भींगी जिस अर्थ में भीगती है पत्ती बारिश में,
या भीगता है दूध से कलेजा) ।"6

अनामिका स्त्री को उसके शरीर से परे उसकी भावना और विचार के स्तर पर न केवल देखा है बल्कि शब्दों के रूप में अभिव्यक्त भी किया है।

स्त्री को सहनशीलता की प्रतिमूर्ति कहा जाता है। स्त्री की सहनशीलता को एक नये अंदाज में प्रस्तुत करने वाली अनामिका द्वारा लिखित 'गालियाँ सुन लेने का शील' नामक कविता स्त्री विमर्श एक नया अंदाज प्रस्तुत करती है-

"वैसे तो रहती हैं शाश्वत डायटिंग पर स्त्रियाँ,
पर गालियाँ खाने में उनका जवाब नहीं।
गोलगप्पों की तरह गपागप
घोंटती हुई थूक, / नाक-आँख से पानी / इमली का छलकाती
खाये ही जाती / शाम से सुबह तक / खूब मिर्चीदार गालियाँ।"7

अनामिका ने राष्ट्रीय तथा आंतर्राष्ट्रीय स्त्री आन्दोलनों का गहन अध्ययन किया है तथा भारतीय संदर्भों में इनकी व्याख्या कर स्त्रीवाद को नये रूप में प्रस्तुत करने का भी प्रयास किया है। अनामिका के अनुभवों दायरा काफी विस्तृत रहा है। अनामिक एक करुणामयी, संवेदनशील स्त्री की नजर से अपने समय तथा समाज को देखती हैं। **"स्त्री विमर्श के दौर में स्त्रियों के संघर्ष और शक्ति का चित्रण तो अपनी-अपनी तरह से हो रहा है। लेकिन महादेवी वर्मा ने जिस वेदना और करूणा को अपनी कविता के केन्द्र में रखा था, (वेदना में जन्म, करुणा में मिला आवास) उसका विस्तार केवल अनामिका ही कर पाती है।"8** अनामिका के काव्य लेखन का अवलोकन करने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उनके रचनात्मक जीवन में उन्होंने ने अपने परिवेश को कभी छोड़ने का प्रयास नहीं किया।

बदलती अर्थव्यवस्था और भूमंडलीकरण और स्त्री के बीच गहरा संबंध है। भूमंडलीकरण या ग्लोबलीज़ेशन के चलते विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में अर्थव्यवस्था, सामाजिक संरचना, और राजनीतिक प्रक्रियाओं में सुधार होता है। इसके परिणामस्वरूप, यह महिलाओं के जीवन में भी विभिन्न प्रकार के परिवर्तन लाता है। भूमंडलीकरण स्त्रियों के जीवन को प्रभावित करता है। भूमंडलीकरण ने महिलाओं के लिए नए रोजगार की संभावनाओं को खोला है। अब वे विभिन्न क्षेत्रों में नौकरियां प्राप्त कर सकती हैं, जिनमें पहले वे पहुंच नहीं पा रही थीं। भूमंडलीकरण ने महिलाओं की शिक्षा में भी वृद्धि की है। अब अधिक महिलाएं उच्च शिक्षा प्राप्त कर रही हैं और अपने करियर में प्रगति कर रही हैं। भूमंडलीकरण दौर में महिलाओं को समाज में एक बढ़ती हुई भूमिका के लिए प्रेरित किया है। अब वे नेतृत्व, न्याय, और शासन में अपनी भूमिका को अधिक महत्वपूर्ण बना रही हैं। बदलती अर्थव्यवस्था ने महिलाओं के स्वास्थ्य और प्रभाव पर भी प्रभाव डाला है। अब वे अधिक स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुंच सकती हैं और अपनी स्वास्थ्य को बेहतर तरीके से देखभाल कर सकती हैं। भूमंडलीकरण ने स्त्रियों की जीवन और समाज में भूमिका को

बदल दिया है। हालांकि, इसके साथ ही कई चुनौतियां भी हैं, जैसे कि भेदभाव, असमानता, और सामाजिक दबाव। इसलिए, समाज को समानता और न्याय की दिशा में अग्रसर होने की आवश्यकता है, ताकि स्त्रियाँ अपनी सार्थक और सम्मानित जीवन जी सकें। इस दृष्टि से अनामिका की 'बीसवीं सदी' यह कविता अपने आपमें अत्यंत महत्वपूर्ण है।

"कितना अच्छा है... / यह बीसवीं सदी है
अब पिटकर जा सकती हूँ मैं ब्यूटी पार्लर !
वहाँ मुझे आरामकुर्सी मिलेगी, / और लड़कियाँ बिना कुछ पूछे
कर देंगे मेरी बरफ़-पट्टी !
कितना अच्छा है... / यह बीसवीं सदी है
अब पिटकर जा सकती हूँ मैं बाज़ार, / अपने लिए एक टॉफी खरीदकर
जल्दी भुला सकती हूँ / मुँह का कड़वापन, सारा मीयादी बुख़ार।"9

मानसिक प्रताड़ना तथा अपमान भूलने को भूलाने की कला में स्त्रिया माहीर होती हैं। संतों ने हमें यही शिक्षा दी है कि कड़वी बातों का स्मरण दुखदायक होता है, इसलिए उन्हें भुल जाना ही अच्छा होता है। अपमान को भूलने से मानसिक तनाव और चिंता कम होती है। यह व्यक्ति को शांति और सकारात्मकता का अनुभव कराता है और मानसिक स्वास्थ्य को सुधारता है। अपमान को भूलने से व्यक्ति के संबंधों में सुधार हो सकता है। यह उन्हें दूसरों को माफ़ करने और उनके साथ संबंध बनाए रखने की क्षमता प्रदान करता है। अपमान को भूलने से व्यक्ति की सकारात्मकता बढ़ती है। यह उन्हें आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करता है और उन्हें अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए पुनः प्रयास करने की प्रेरणा देता है। अपमान को भूलने से व्यक्ति का मानसिक संतुलन बना रहता है। यह उन्हें अपने जीवन में स्थिरता और संतुलन का अनुभव करने में मदद करता है। अपमान को भूलकर व्यक्ति अपने अंदर की नकारात्मक भावनाओं से मुक्त होता है और स्वयं की स्वाधीनता का अनुभव करता है। बीसवीं शताब्दी में औरतों के पास अनेक पर्याय हैं जहां वह अपने जीवन की कटूता को भूलकर स्वयं को तरोताजा महसूस करें।

संवाद कौशल एक व्यक्ति की क्षमता होती है जो उन्हें अन्य लोगों के साथ संवाद में सक्षम बनाती है। स्त्रियों का संवाद कौशल गजब का होता है। क्योंकि यह उन्हें अपने विचारों, भावनाओं, और जरूरतों को सही ढंग से व्यक्त करने में मदद करता है और समाज में अधिक सकारात्मक परिवर्तन लाने में सहायक होता है। स्त्रियाँ सामाजिक और भावनात्मक परिवेश में अधिक सहानुभूति और संवेदना रखती हैं, जिससे वे दूसरों की भावनाओं को समझने में सक्षम होती हैं और सही तरीके से प्रतिक्रिया करती हैं। स्त्रियों का संवाद कौशल उन्हें स्पष्टता और संवेदनशीलता से बोलने में मदद करता है। एक महत्वपूर्ण संवाद कौशल है सहजता और अभिव्यक्ति की क्षमता। स्त्रियाँ अपने विचारों को सरलता से और विवेकपूर्ण ढंग से व्यक्त करती हैं, जिससे उनके संवाद में अधिकतर लोगों को आसानी होती है। अनामिका की यह कविता स्पष्ट करती है कि किस तरह स्त्रियाँ अपने संवाद कौशल के माध्यम से अपने सामर्थ्य का प्रदर्शन करती हैं। इन संवाद कौशलों का उपयोग करके, स्त्रियाँ अपने विचारों को समाज में सही ढंग से प्रभावी रूप से प्रकट कर सकती हैं और अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए साथी बना सकती हैं। अनामिका जी ने 'चिट्ठी लिखती हुई औरत' कविता में स्त्रियों के इसी संवाद कौशल को एक अलग रूप में प्रस्तुत किया है-

"औरतों के बारे में माना जाता है कि / वे चिट्ठियाँ लिखती हैं धारावाहिक!
इतना उनके भीतर क्या है-/ शताब्दियों का संचित-

कि टीक राकस की / पड़ जाती है उनकी बातों में,
द्रौपदी की साड़ी हो जाती हैं बातें उनकी! /
चिट्ठी लिखती हुई औरत पी.सी. सरकार का जादू है।
औरत को मिला है ये वरदान / कि वह कहीं भी बैठी-बैठी हो सकती है अन्तर्धान।
बस में या प्लेटफ़ॉर्म की उकहूँ बेंच पर / ऊँघते-उचकते अचानक सिहरकर /
वह मार सकती है पालथी / और सर्कुलर ठोंगा पोस्टर पलटकर /
लिख सकती है कुछ भी, मसलन कि 'बहुत याद आती है, आ जाओ!' "10

अनामिका की कविताएँ स्त्री विमर्शवादी कविता का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। उनकी कविताएँ महिलाओं के अधिकार, समस्याएं, और सामाजिक स्थिति पर ध्यान केंद्रित करती है। यह कविता महिलाओं के अनुभव, भावनाएं, और संघर्षों को व्यक्त करती है और उनके अधिकारों की रक्षा करने का संदेश देती है। अनामिका ने अपनी कविताओं में महिलाओं की सामाजिक समस्याओं पर ध्यानाकर्षण करने का प्रयास किया है। उनकी कविताएँ समाज में महिलाओं के सम्मान एवं अधिकारों की कमी, दोयम स्थिति और सामाजिक अन्याय पर ध्यान केंद्रित करती है। यह कविताएँ महिलाओं के समर्थन में उठी हुई सामाजिक प्रश्नों को उजागर करती हैं।

निष्कर्ष -

उपर्युक्त विवेचन से हम निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि अनामिका की कविताएँ महिलाओं को मानसिक रूप से स्वस्थ तथा संघर्षसिद्ध होने के लिए प्रेरित करती हैं कि वे अपने अधिकारों की रक्षा करें और अपनी आवाज़ को उठाएं। अनामिका की कविताओं को पढने के बाद स्पष्ट हो जाता है कि यह कविताएँ महिलाओं को आत्म-विश्वास और स्वतंत्रता का संदेश देती हैं। वे महिलाओं को अपने अधिकारों को पहचानने और समाज में समानता के लिए लड़ने के लिए प्रोत्साहित करती हैं। बेशक अनामिका की कविताएँ सच्चे अर्थों से स्त्री विमर्शवादी कविताएँ हैं।

- हिन्दी साहित्य में उत्तरआधुनिक काल खंड का एक महत्वपूर्ण विमर्श स्त्री विमर्श या नारीवादी साहित्य है।
- नारी विमर्श को विमर्श के रूप में स्थापित करने के लिए हिन्दी की अनेक रचनाकारों ने अपनी लेखकीय प्रतिबद्धता बडी इमानदारी से निभाई है।
- स्त्री विमर्श की सशक्त हस्ताक्षरों में एक महत्वपूर्ण नाम अनामिका जी का है।
- अनामिका के कविता स्त्री जीवन की समग्रता को समेटे हुए है।
- समकालीन स्त्री विमर्शवादी साहित्य में अनामिका का योगदान संस्मरणीय एवं अमिट है।
- वैश्विकता के साथ निजता का समन्वय अनामिका की कविता की प्रमुख विशेषता है।

संदर्भ संकेत -

1. अनामिका: एक मूल्यांकन, कश्यप अभिषेक, पृष्ठ. 508
2. हिन्दी साहित्य की वैचारिक पृष्ठभूमि, विनयकुमार डॉ. पाठक, पृष्ठ 137
3. त्रिया-चरित्रं:उत्तर कांड, अनामिका, पृष्ठ 14
4. अनामिका का काव्य :आधुनिक स्त्री विमर्श, मंजू रस्तोगी पृष्ठ 5
5. दूबधान, अनामिका, पृष्ठ 18
6. अनुष्टुप, अनामिका, पृष्ठ 30
7. दूबधान, अनामिका, पृष्ठ 76
8. अनामिका: एक मूल्यांकन, संपा. अभिषेक कश्यप, पृष्ठ 49
9. दूबधान, अनामिका,पृष्ठ 61
10. -वही- पृष्ठ 63

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

SELF-DISCOVERY: A STUDY OF GEETANJALI SHREE'S TOMB OF SAND

Dr. Ahilya B. Barure.
Dept of English
Yashwantrao Chavan College, Ambajogai

Abstract:

Tomb of Sand is a story of two women Ma and Beti and one death that is Ma's husband Booker committee has appreciated Tomb of Sand as "an urgent yet engaging protest against the destructive impact of borders, whether between religions, countries or genders". Novel is divided into three parts: Ma's Back, Sunlight and Back to The Front. There are women who had never questioned any authority all through her life. Such novels is a kind of inspiration to express their inner turmoil, storm and past. The narrator beautifully weaved the roles of Ma and Beti, Their physical appearance, way of living style.

Keywords: Refugee, Partition, Mental Trauma, Feministic, Tomb of Sand.

Introduction:

Geetanjali Shree is the first Hindi author, winning International Booker Prize in 2022 for her translated Hindi novel Tomb of Sand. She has literary contribution notably very famous works like *Mai*, *Hamara Shahar Us Baras*, or *Khali Jagah to her. Tomb of Sand* is a Hindi book written by Geetanjali Shree and translated to English by translator of South Asian literature, American author Daisy Rockwell. ***R**et Samadhi* is Shree's fifth novel. *Ret Samadhi* was published in 2019, is the original title of Hindi Novel *Tomb of Sand* .

"Daughters are made of wind and air. Invisible even in moments of stillness, when only the very sensitive perceive them. But if not still, then stirring …and oh, how they stir. And the sky bows down so low you could reach out and touch it with your hand." **(Shree, 24)** Beti in the *Tomb of Sand* says that daughters are made of wind and air symbolically invisible.

This is a story of mother and daughter. There are many references kept as it is because translator didn't want to disrupt the emotional touch of the words. This book is a bildungsroman of a lady Ma. Ma is eighty years old woman whose world is clouded after her husband's death. It is a story of hidden wishes, buried dreams and a woman born in silencing culture. Ma erased her dreams after her husband's death. The story is related to body and boundaries, Youth and old, Ma's home land Pakistan and India.

In the first part, Ma who is a protagonist and she is from middle class family and depressed lady after her husband's death. There are three stages of Ma's life. She is shown bedridden for about one-third of the book. She has two children one is Bade and second one is Beti. Both are exactly opposite in nature. Bade is stereotyped, orthodox mindset of an Indian male and influenced by patriarchal system. Where Beti is free minded, feministic, independent unmarried woman. Narrator explains the inferiority of women in families throughout the world is same. She says "men always receive the best dal, while women just have to eat left over mush. Do they not?" (Shree, p.12)

These lines shows the traditional system dominant everywhere. It starts from birth to death. This book is a kind of Partition story, penned different political affairs in different stages of Ma's life. This novel also depicts boundaries of our open mindedness go, what it means to be truly liberal and liberated through the relationship of Ma and Beti when Ma started to enjoy the life by denying the old things . Beti disliked the relationship of Ma with third gender Rosie. After Rosie's death Ma feels "…And the lake burst into flames" (Shree p. 499)

When Ma started to live with Beti she breathed freely. Beti was engaged in mothering the mother. There are some references showing that Ma wish to enjoy life. She started wearing gown, stopped wearing sarees**I**n the third part, the story touches on the wounds of partition. Ma decides travel to Pakistan, accompanied by Beti. She relives the trauma of partition and reveals her true identity. Ma was invisible to the people around her.

"Here we are Wagah the tale is drama and the story is partition. Is this the chronicle of the getting-smaller woman or is every story really a Partition tale – love romance longing courage in pain –in-separation bloodshed? It's an absent presence."(Shree P. 535). These lines shows the narrators pain and memories related to homeland.

Both Mother and daughter went to Pakistan without visa, without permission. They spend there some days, meet different people. Anwar is a friend of Ma. They meet and asked what she want. She says *Maffi* Anwar also utters the word *Maffi.* In Pakistan Polis asks, "Sarhad nahi manti" at the time she says do u know what is mean by border it not ends it shapes, it increases identity, and it celebrates *ekata* of two nations. Very beautifully she has explained the meaning of *Sarhad* means shadow line. For Ma, a border has altogether different connotations: What is a border? It's something that surrounds an existence; it is a person's perimeter. No matter how large, no matter how small. The edge of a handkerchief, the border of a tablecloth . . . A border does not enclose; it opens out. It creates a shape. It adorns an edge . . . A border stops nothing. It is a bridge between two connected parts. (Shree, p. 652).

Ma used to tell story to butterflies. At the time of partition how women, girls are suffered. She describes screams, terrified situation, kidnapping, trafficking etc. She explains that during those days she used to wear double salwars because of Mama's instructions.

During riots girls loaded onto the truck and locked up. She describes the condition in the words, "The girls are so quite now. Someone says, they are going to whore us out. Someone says, they are going to pounce on us. Then silence."(Shree P. 600.)Narrator describes the situation how they fears and holds hands and departs after some time. Nadia Murad Nobel prize awardee also described the women condition in the novel Last Girl. She says, "I want to be the last girl in the world with her story like mine". (Murad, p. 167) Nadia Murad expects she should be the last girl exploited in such a way.

She was invoked to save this though she is a victim of physical and mental trauma. She says about her experiences in militant's camp:

"Inside the bathroom, I splashed the some water on my face and arms. A mirror hung over the sink, but I kept my gaze down word. I couldn't look at myself. I suspected that I already wouldn't recognise the girl who looked back. On the wall above the shower, I saw the blood the women from the night before had warned me about. The small reddish brown stains high up on the tiles where all that was left some Yazidi girls who had come before me."(Murad, p. 132-133)

Narrator also had gone through the same situation. She exclaims "Why don't they give us poison? Oh, God! Oh Lord!"

There was one relief that is Anwar. Anwar is a friend of Ma. They meet and asked what she want. She says *Maffi* Anwar also utters the word *Maffi.* In Pakistan Polis asks, "Sarhad nahi manti" at the time she says do u know what is mean by border it not ends it shapes, it increases identity, and it celebrates *ekata* of two nations. Shree has also discussed the life of third gender. After the death of Rosie, Ma sys," "Artistry. A curiosity. A monstrosity. And those? Breasts or boils? And was that a penis at half-mast?" (Shree 511). Shree has focused on women's life in detail and she has focused on third gender's life minutely.

Conclusion:

Tomb of Sand is a notable contribution to Partition Novel. Novel depicts the message how women surface to gain a new lease on life. Narrator is confronting the unresolved trauma of her teenage experiences of partition. She had tried to reevaluate role of woman as a mother, a daughter, a woman. There are various twists and turns at the starting bedridden Ma, Life of Ma with Beti and a chorus of narrating voices. Geetanjali Shree focusses on the themes of alienation, search for identity, partition and women through the indirect character of Ma's dead husband. It also focusses on the theme of death, inevitability of death, Ma's introspective journey reflects her quest for self-realization and a sense of belonging in an increasingly fragmented and chaotic world. Ma, protagonist in the end goes to Pakistan. She crosses not only the boundary of tradition but crosses every boundary to live life to take breath, boundary of India Pakistan to meet the love of her life.

References:

1. Beauvoir, Simone de. The Second Sex. Ed. Translated by H.M. Parshley. Harmondsworth, Penguin,1986
2. Geetanjali Shree. Tomb of Sand, translated by Daisy Rockwell, Penguin Books, 2022 India.
3. Murad, Nadia and Jenna Krajeski. The last girl: My story of captivity, and my fight against the Islamic state.
4. Tim Duggan books, 2018
5. https://thefinancialexpress.com.bd/views/analysis/geetanjali-shrees-ret-samadhi-1654880416

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

समकालीन हिंदी साहित्य में बाल विमर्श

डॉ. सुजाता जगन्नाथ रगडे
मिलिंद कला महाविद्यालय,नागसेनवन
औरंगाबाद महाराष्ट्र -431002.

शोध सारांश

बाल साहित्य बच्चों को ध्यान में रखकर लिखा जाता है| बाल साहित्य लेखन की परंपरा पुरानी है| बाल साहित्य की आवश्यकता इसलिए है कि वर्तमान में जीवन मूल्यों का पतन होता हुआ दिखाई देता है| उन जीवन मूल्यों को बालकों में जीवित करने के लिए बाल साहित्य का सहारा लिया जा सकता है| बाल साहित्य के महत्व को पहचानना जरूरी है| क्योंकि सब कुछ करने वाला बच्चा कुछ समय में कुछ न करने वाला बच्चा बन जाता है क्योंकि वह इस भाग दौड़ भरी जिंदगी में माता-पिता के समय न देने के कारण मनोरुग्ण बनता जा रहा है इसीलिए वर्तमान में बाल साहित्य की सबसे ज्यादा जरूरत है ऐसा मुझे लगता है| मोबाइल टीवी संगणक आदि माध्यमों का बढ़ता चलन बच्चों को किताबों से दूर करता हुआ दिखाई देता है| बच्चों की किताबों के प्रति जिज्ञासा को पुर्नजागृत करने के लिए बाल साहित्य सबसे अच्छा माध्यम हो सकता है | 'पंचतंत्र' नाम से नारायण sujatasitपंडित ने एक पुस्तक लिखी जिसमें बच्चों के लिए पशु पक्षियों को माध्यम बनाकर शिक्षा देने का कार्य कहानियों के माध्यम से किया है| बच्चों को कहानी सुनना सबसे ज्यादा पसंद होता है| बच्चों को शिक्षा देना वह भी कहानियों से सबसे अच्छा माध्यम है| क्योंकि बचपन से ही हम कहानी सुनते आए हैं- हमारे दादा-दादी से और नाना नानी से| या हम कह सकते हैं कि हमारी रात उनकी कहानियों के बगैर अधूरी है| वह हमें परियों की कहानी सुनाते हैं और धीरे-धीरे यथार्थवादी, साहसी, बलिदान की, त्याग और परिश्रम आदि गुणों से भरी कहानी सुनाया करते हैं | यही कहानी हमारे जीवन की पथ प्रदर्शक बनती रही है| कहानियों को हम तक पहुंचने वाली दूसरी व्यक्ति हमारे मां-बाप भी रहे हैं| मन तो हमारे लिए ज्ञान कोष का भंडार होती है| वह हमें साहित्य, शिक्षा और दुनियादारी से संबंधित जानकारी देती रही है और आज भी दे रही है|

बीज शब्द :- शिक्षार्थी, पथ प्रदर्शक, समर्पण, व्यक्तित्व, प्रतियोगिता, निष्पाप |

प्रस्तावना

बाल साहित्य लिखने का उद्देश्य केवल बच्चों का मनोरंजन करना ही नहीं है बल्कि उन्हें जीवन की सच्चाइयों से रूबरू कराना रहा है | इसीलिए तो हम कहते हैं कि, आज का बालक कल का नागरिक बनेगा और कल का नागरिक कैसा होगा? इसकी शुरुआत आज से ही करनी होगी| कहानियों के माध्यम से हम बच्चों में केवल शिक्षा प्रदान नहीं करते हैं बल्कि उनके चरित्र का निर्माण करने में सहायक भी होते हैं जिससे वे अपने जीवन में संघर्षों का सामना कर सके| बाल साहित्य की एक खास बात यह रही है कि, इस साहित्य के माध्यम से बालकों के मनोविज्ञान का भी ज्ञान प्राप्त होता है | बालकों के केवल शारीरिक विकास का ही ध्यान नहीं रखा जाता बल्कि उनका मानसिक विकास कैसा हो रहा है यह भी देखा और परखा जाता है | बच्चों का मन बहुत निर्मल, निष्पाप होता है उन्हें हम कहानियां और कविताओं के माध्यम से मन की शक्ति प्रदान कर सकते हैं जिससे उनमें संस्कार, समर्पण, सद्भावना के गुण निर्माण हो सके और बालक एक अच्छा मानव या मनुष्य बनने में सहायक हो|

बच्चों के लिए अलग-अलग रूपों में बाल साहित्य लिखा गया | उनके विषय इस प्रकार से रहे हैं - जैसे पौराणिक कथाएं, ज्ञानवर्धक, रहस्य रोमांच, महान व्यक्तित्व, वन्य जीवन, पर्यावरण आदि से संबंधित है | बच्चों के लिए साहित्य अलग-अलग भाषाओं में लिखा गया है| अलग-अलग विधाओं में लिखा गया है- जैसे उपन्यास, कविता, गीत, कहानी, आत्मकथा, संस्मरण, आदि |

बच्चों के लिए चिल्ड्रन बुक ट्रस्ट ने अलग-अलग भाषाओं में सचित्र पुस्तक के प्रकाशित की है | यही नहीं 16 साल के बच्चों तक के लिए डॉ.राय मेमोरी चिल्ड्रन वाचनालय तथा पुस्तकालय भी खोला गया है|

इस प्रयास के चलते 1991 में शंकर आर्ट अकादमी की स्थापना बच्चों के लिए की गई है| इसके माध्यम से पुस्तक, चित्र, आर्ट और ग्राफिक के कार्यक्रम भी चलाए जाते हैं | यह अकादमी बच्चों के लिए देश में शंकर इंटरनेशनल चित्रकला प्रतियोगिता का भी आयोजन करती है जिसका उद्देश्य बच्चों में सृजनात्मक रुचि का विकास करना रहा है|

बच्चों के लिए अनेक पत्र पत्रिकाओं का अनेक भारतीय भाषा में प्रकाशन किया जाता है जिसमें प्रमुख रही है- बाल हंस, बाल भारती, नन्हे सम्राट, नंदन आदि | वर्तमान में भी हमें देख हम देखते हैं की समाचार पत्रों का एक कोना बच्चों के लिए प्रकाशित किया जाता है जिसका नाम 'बालकों का कोना' रहा है | यह पंजाब केसरी, नवभारत टाइम्स, हिंदुस्तान समाचार पत्रों में देखने को मिलता है|

हिंदी बाल साहित्य विमर्श :-

हिंदी बाल साहित्य बहुत समृद्ध रहा है| बाल साहित्य में वह साहित्य आता है जिसमें बच्चों के मानसिक स्थिति यासर को ध्यान में रखकर लिखा जाता है | बाल साहित्य के नाम से बहुत सारी पुस्तक भी प्रकाशित हो चुकी है जिसमें हिंदी बाल साहित्य का इतिहास- प्रकाश मनु, हिंदी बाल साहित्य- नई चुनौतियां और संभावनाएं - प्रकाश मनु, बाल गीत साहित्य (इतिहास एवं समीक्षा) - निरंकार देव सेवक, संपूर्ण बाल साहित्य- 1और 2 - श्री रामवृक्ष बेनीपुरी, हिंदी बाल साहित्य के निर्माता - प्रकाश मनु, आइये बाल साहित्य रचते हैं - साहित्य prakashan.com से तथा बाल साहित्य (कहानियां एवं कविताएं)- राजू मौर्य केतन |

आधुनिक बाल साहित्य के प्रणेता डॉक्टर हरे कृष्ण देव सारे को माना जाता है क्योंकि उन्होंने 300 से अधिक बाल साहित्य से जुडी किताबें लिखी है| इसीलिए बाल साहित्य के क्षेत्र में कार्य करने वाले डॉ. देव सारे को वर्ष 2011 को साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया है| बाल साहित्य का युग प्रवर्तक के रूप में श्री जयप्रकाश भारती को देखा जाता है| हिंदी साहित्य में बाल साहित्य को समृद्ध करने का योगदान उनके साथ-साथ सोहनलाल द्विवेदी, श्री प्रसाद, डॉ. नागेश पांडे, रामधारी सिंह दिनकर, प्रेमचंद, डॉ. राष्ट्र बंधु आदि का रहा है |

हिंदी बाल साहित्य में मुख्य रूप से प्रचलित रही विधाए है -कहानी , कविता और गीत | प्रेमचंद ने भी समृद्ध बाल साहित्य लिखा है|

बाल साहित्य का अर्थ:-

बाल साहित्य का सरल अर्थ बालकों के लिए, बालकों के नजरिए से उन्हीं की भाषा में लिखा गया साहित्य है | बाल साहित्य एक सामाजिक पद है जो 'बाल' और 'साहित्य' शब्द से मिलकर बना है | बाल का अर्थ बच्चा, नन्ना-मुन्ना बालक होता है | बाल के लिए शब्दकोश के अनुसार अर्थ है- शिक्षार्थी हिंदी शब्दकोश - बाल - सं. (पु.) बच्चा,बालक जैसे- बाल गोपाल 16 वर्ष के कम आयु वाले बालक, नेत्र वाला, नवोदित,बाल इंदु, बाल रवि, सुगंध वाला |"

" Child- चाइल्ड (सं.)शिशु, बच्चा |" इस प्रकार से बाल शब्द का अर्थ या बालक का अर्थ लिया जा सकता है |

बाल साहित्य की परिभाषा :-

बाल साहित्य की परिभाषा कुछ विद्वानों के अनुसार निम्न युक्त कहीं जा सकती है- डॉ लक्ष्मी नारायण दुबे के अनुसार, " बच्चों की दुनिया सर्वथा पृथक होती है | उनका अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व होता है| वे संस्कृत, साहित्य तथा समाज के लिए नए होते हैं | अपितु बच्चों के जीवन तथा मनोभावों को जीवन के सत्य एवं मूल्यों को पहचान की स्थिति से जोड़कर जो साहित्य उनको सरल एवं उनकी अपनी भाषा में लिखा जाता है और जो बच्चों के मन को भाता है वही बाल साहित्य है |"

हार्वे डार्टन (पश्चात समीक्षक के अनुसार, " बाल साहित्य से मेरा अभिप्राय इन प्रकाशक जो से है जिनका उद्देश्य बच्चों को सहजृति से आनंद देना है ना कि उन्हें मुख्य रूप से शिक्षा देना अथवा उन्हें सुधारना अथवा उन्हें उपयोगी रीति से शांत करना|" डार्टन का मानना था कि, बाल साहित्य के द्वारा बच्चों को सहज आनंद मिलना जरूरी है|

बाल साहित्य बालकों को ध्यान में रखकर लिखा जाता है, जो उन्हें मनोरंजन के साथ आनंद से भी भर देता है| बाल साहित्य ऐसा होना चाहिए जिसे बालक सरलता से समझ सके| पाल साहित्य का पाठक तो एक नन्हा मुन्ना छोटा बच्चा होता है जो स्वभाव से तो बड़ा नटखट, चंचल, मासूम, शरारती होता है,उसकी दुनिया बड़ों से भिन्न होती है, विचित्र होती है,

अद्भुत होती है जहां वह कभी भी आसमान में पंख लगाकर भ्रमण करते हुए दिखाई देते हैं विचारों में|

कविताएं :-

बाल साहित्य में बहुत मात्रा में कविताएं लिखी गई है| ताकि बच्चों को वह आसानी से समझ में आ सके | खेलते हुए बच्चे उसे दोहराते हैं और याद कर लेते हैं जिससे उनका मनोरंजन होता है|" पर्वत कहता शीश उठाकर, तुम भी ऊंचे बन जाओ| सागर कहता है लहराकर, मन में गहराई लाओ |" यह बाल कविता सोहनलाल द्विवेदी ने लिखी थी| यह बाल कविता 1932 में लिखी गई है जिसमें बाल मन की उलझन आज भी दिखाई देती है| यह कविता उसे समय में बहुत लोकप्रिय रही थी| इसी प्रकार से अलग-अलग कवियों ने अलग-अलग बाल कविताएं लिखी है| उन में मैथिलीशरण गुप्त की स्फूर्ट बाल कविताएं, शंभू दयाल सक्सेना की बाल कवितावली, थे वीक रमेश की 101 बाल कविताएं आदि |

कहानी :-

कहानी का निर्माण मानव की वाणी के कारण हुआ है| बच्चों की कहानियों के पात्र जंगली जानवर,परिया, चमत्कारीक घटनाएं, राक्षस, देवी-देवता, पौराणिक घटनाएं, राजा - रानी आदि रहे हैं | समय के अनुसार इनमें सदा परिवर्तन होता रहा है| कहानियों के माध्यम से बालकों का मनोरंजन तो होता है साथ संस्कारों के विचारों पर होते हुए जिज्ञासा और कुतूहल को बनाते हुए कल्पना शक्ति और क्रियाशीलता को सशक्त किया जाता है | इस संदर्भ में डॉ. नागेश पांडेय लिखते हैं कि, " कहानी ऐसा माध्यम है कि वह बच्चों की कल्पना शक्ति के विकास में सर्वाधिक योगदान करती है| बाल साहित्य में कथा साहित्य बालकों के लिए अत्यंत उपयोगी है, इससे बालक अपनी कल्पना द्वारा सब पत्रों से तादात में स्थापित करता है और उनसे सद्गुणों की प्रेरणा लेता है|" बाल कहानियां आकार की दृष्टि से लागू होती है उनके संवाद चटपटे होते हैं वाक्य भी छोटे-छोटे होते हैं जिससे बच्चे उसे आसानी से समझ सके | इस कहानियों में प्रेमचंद की 'कुत्ते की कहानी', 'ईदगाह', गीतिका गोयल की 'चुनमुन की कहानी', अलका पाठक की 'नटखट बाबू', शिवराज श्रीवास्तव की 'फुल चिड़िया और मेरा देश' आदि देखी जा सकती है|

निष्कर्ष अतः कहा जा सकता है कि बाल साहित्य लिखना प्रारंभ तो 20वीं साड़ी में हुआ लेकिन उसे सही पहचान और विश्व व्यापी रूप मिला भारतेंदु के समय से | बाल साहित्य अलग-अलग रूपों में हमारे सामने आए हैं जैसे गीत, कहानी, कविता, पहेलियां आदि कहा जा सकता है |

उपलब्धियां :-

बाल साहित्य बालकों के लिए जितना आवश्यक होता है उतना उपयोगी भी होता है| बाल साहित्य बच्चों को खुश कर देता है| बच्चों में कल्पना शीलता का विस्तार करने में सहायक होता है | इससे बालकों की क्रियात्मक और सृजनात्मक क्रिया का विकास होता है|

संदर्भ सूची:-

1. डॉ.हरदेव बिहारी –२०१९ -शिक्षार्थी हिंदी शब्दकोश –राजपाल प्रकाशन पृ. क्र. ५८१
2. डॉ.प्रसाद द्वारका –२०१२ -अंग्रेजी हिंदी व्यावहारिक कोर्स –राधाकृशन प्रकाशन - पृ क्र. ८४
3. डॉ.नागेश पांडेय संजय –२००९ -बाल साहित्य के प्रतिमान -राष्ट्रीय प्रकाशन - पृ. क्र.१२
4. ४) वही - पृ. क्र.३
5. ५) वही - पृ. क्र.१४८

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

रमेश कुरे की कहानियां और वर्तमान अस्मितामूलक विमर्श

डॉ. मुकुंद राजपंखे

पदवी,पदव्युत्तर तथा संशोधन इंग्रजी विभागप्रमुख
यशवंतराव चव्हाण महाविद्यालय,अंबाजोगाई, जि.बीड, महाराष्ट्र

'जनमोर्चा तथा अन्य कहानियां' यह कवि तथा कहानीकार रमेश कुरे की बारह कहानियों का संग्रह है। यह संग्रह सन 2021 में यश पब्लिकेशन, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित हुआ है । आकर्षक मुखपृष्ठ के साथ हार्ड जैकेट बुक बाइंडिंग किताब निर्माण की बाह्य और अंतरंग गुणवत्ता की ओर इशारा करती है । कहानीकार रमेश कुरे ने बड़ी कृतज्ञता से इस कहानी संग्रह को आरक्षण संकल्पना के जनक राजर्षी शाहू महाराज और भारतरत्न डॉ. बाबा साहब अंबेडकर जी को अर्पित किया है। पुस्तक के आरंभ में ही वर्तमान समय में हिंदी साहित्य के वरिष्ठ प्रतिभा संपन्न साहित्यकार रत्नकुमार सांभरिया जी का 'डॉ. कुरे की कहानियां' यह प्रशंसायुक्त अभिनंदन पर आशीर्वचन है। जिसमें यह कहा गया है कि, " कहानियां जीवन के यथार्थ को जीती समकाल का दिग्दर्शन कराती है । यहां दलित जीवन की दुश्वारियां महज दुश्वारियां ही नहीं रह जाती, व्यवस्था से जूझती संघर्ष और चेतना का मार्ग प्रशस्त करती हैं । खोखली वर्ण व्यवस्था को खंगाल कर नवाचार के निर्माण की ओर उन्मुख उनकी रचना धर्मिता में संवेदनशीलता का जो गुंफन है, वह सहानुभूति से इतर समभाव की अपेक्षा करता है।"01 तत्पश्चात कहानीकार 'अंधेरा चरते शब्द' और 'जिन्हें याद करना बहुत जरूरी है' इस आत्मकथात्मक भूमिका और प्राकथ्थन में संपूर्ण सृजन प्रक्रिया की पीड़ा के प्रेरणा स्रोत आदरणीय साहित्य संस्कार योगी गुरुवर्य, साहित्यकार, अनुवादक और समीक्षक डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे जी का उल्लेख करते हुए संग्रह के कहानियों की सृजन भूमि को स्पष्ट करते हैं। उनके मन में बरसों से चली आ रही आरक्षण नीति और दबे कुचले शोषित पीड़ित और दलित तबके के बारे में बहुत सारे प्रश्न खड़े होते हैं। जब वह इन्हीं प्रश्नों का उत्तर ढूंढते हैं, तो उत्तर के रूप में एक-एक कहानियों का जन्म होता है । यह कहानी उनके मानस पटल पर निर्माण हुए प्रश्नों या समस्या की प्रतिक्रिया स्वरूप समाधान या उत्तर ही है। उनके ही शब्दों में, "कुछ भी हो परंतु आज आरक्षण के आधार पर पिछड़े समाज ने हर क्षेत्र में अपनी मजबूत उपस्थिति दर्ज करना शुरू किया है। बरसों से केवल अपमान और गुलामी की जिंदगी जीने वाले अब सार्वजनिक सेवाएं और राजनीति में आदेश देने लगे हैं। इसी बदलते दलित, पीड़ित पिछड़े और स्त्री परिवेश को मैंने अपनी कहानियों के कथानक बनाए हैं।"02

'जनमोर्चा तथा अन्य कहानियां' संग्रह की कहानियों में कहानीकार रमेश कुरे ने सन 1970 से लेकर सन 2020 के अर्धशति कालखंड में विशेष कर ग्रामीण भारत की सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों की अत्यंत संयम के साथ संवेदनशील और विवेकपूर्ण मानसिकता से विश्लेषणात्मक गवेशना की है। इनकी हर एक कहानी में राजनीतिक स्थानिक किरदार या नेता किस तरह से आरक्षण नीति के अमल का ढोंग करते हैं या उसके संवैधानिक महत्व को किस तरह तहस-नहस कर सत्ता को अपने हाथ में पीढ़ियों से रखने के लिए किसी भी हद तक गुजरते हैं इसका सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन किया गया है। यह कहानी संग्रह वर्तमान समय में जितने भी अस्मिता मुलक विमर्श हैं उन विमर्शों पर आरक्षण के विविध आयामों की दृष्टि से प्रकाश डालता है। जैसे आरक्षण विमर्श, दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श ,अन्य पिछड़ा विमर्श, अल्पसंख्यक विमर्श, बेरोजगार विमर्श और किन्नर विमर्श आदि। कहानीकार रमेश कुरे की शिक्षा यात्रा अपने पैतृक गांव पनगांव तहसील राणापुर जिला लातूर के जिला परिषद प्राथमिक विद्यालय से शुरू होकर वैद्यनाथ महाविद्यालय,

परली वैद्यनाथ , शासकीय अध्यापक महाविद्यालय, अंबाजोगाई और दयानंद कला महाविद्यालय लातूर आदि संस्थाओं में अलग-अलग पड़ाव को हासिल करते हुए गुजरी है। उन्होंने हिंदी साहित्य का अध्ययन कर्ता छात्र, अध्यापन कर्ता अध्यापक, संशोधक ,मार्गदर्शक, हिंदी अध्ययन मंडल सदस्य, कवि और कहानीकार के रूप में हिंदी साहित्य सृजन और भाषा के प्रचार प्रसार में अपना योगदान दिया है। उनकी कहानियों के बीज प्रचंड स्फोटक हैं लेकिन शैली और शिल्प में जो निर्मलता, सहजता, स्पष्टता और संयमी संवेदनशीलता दिखाई देती है यह उनके गहन जीवन अनुभव की मजबूत नींव के कारण ही संभव हो पाया है। उनका समाज की दोहरी और एकांगी मानसिकता को समताधिष्ठत मूल्यों की ओर परिवर्तित करने का विनम्र प्रयास बहुत ही प्रशंसनीय है। इसलिए मैं आरंभ में ही रमेश कुरे का हार्दिक अभिनंदन करता हूं।

संत रविदास से मोची अर्थात चमार महाराष्ट्र में चांभार समाज का प्रतिनिधित्व करने वाली हिंदी साहित्य परंपरा की शुरुआत हुई ऐसा माना जाता है। उसमें भी महाराष्ट्र में तो बहुत ही कम नाम सामने आते हैं। साहित्यिक जगत में संत रविदास जी की विद्रोही परंपरा को चलाने वाले राम दोतोंडे जी, डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे जी तथा रमेश करे आदि साहित्यकारों के नाम ही स्पष्ट रूप से हमारे सामने आते हैं। समताधिष्ठत समाज व्यवस्था निर्माण के लिए रविदास कहते हैं,

“ऐसा चाहूं राज मैं जहां, मिले साबन को अन्न छोट बड़ो सब सम बसें, रविदास रहे प्रसन्न ।”

ऐसी क्षमता मूलक विचारधारा अपने दोहे, पद, भजन कीर्तन की कला के द्वारा तत्कालीन समाज में स्थापित करने वाले धैर्यशील संत तथा महान साहित्यिक इ सन 640 में ही भारत में हुए थे। उनकी इसी परंपरा को उनके बाद अनेक कवियों और साहित्यकारों ने अपने साहित्य के माध्यम से जलती चिंगारी की तरह जीवित रखा है। जैसे सूरत बदलने की बात करने वाले क्रांतिकारी दुष्यंत कुमार, गोदान उपन्यास के द्वारा किसान और मजदूरों की पीड़ा को अभिव्यक्त कर उसे विश्वस्तर तक पहुंचाने वाले प्रेमचंद, समकालीन मराठी हिंदी साहित्य के वैचारिक ऊर्जा स्रोत डॉ.सूर्यनारायण रणसुभे, राम दोतोंडे, मोहनलाल फिलौरिया आदि की परंपरा में रमेश कुरे के ‘जनमोर्चा तथा अन्य कहानियां’ इस कहानी संग्रह का समावेश करना पड़ेगा। जिसमें आजादी के बाद जब छोटे-छोटे गांव और कस्बों में पंचायत स्तर पर दलित पिछड़ों के आरक्षण के रूप में संविधान का अमल शुरू हुआ तो वहां किस तरह सवर्ण समाज की अत्यंत क्रुरता पूर्ण अहंकार युक्त विरोध करने वाली मानसिकता दिखाई देती है इसका हु-ब-हु चित्रण हुआ है।

कहानी संग्रह की पहली कहानी ‘जनमोर्चा’ यह संग्रह की शीर्षक रचना है । सरकार द्वारा “जिन कार्यालय में कर्मचारियों की संख्या दस है वहां आरक्षण नहीं होगा ।”03 ऐसा शासन आदेश निकलता है। यह आदेश गांव के दलित, पिछड़े समाज के सुशिक्षित बेरोजगार युवकों को अस्वस्थ करता है। वह अब अच्छी तरह से जान गए हैं कि सरकार धीरे-धीरे आरक्षण नीति में जहर घोलकर समाज को अस्थिर कर अपना राजनीतिक स्वार्थ साध रही है। गांव की महार, मांग, चमार और ढोर जातियों में आपस में उंच्च नीचता का बेबनाव पहले से ही विद्यमान था । कहानी का नायक महेश और उसके सभी जातियों के साथी पिछड़ी जातियों को सरकारी आदेश के खिलाफ जनमोर्चा निकालने के लिए तैयार करते हैं। महेश अपने चमार समाज को जय भीम कर बाबा साहब अंबेडकर जी की प्रतिमा अपने घर में लगाने के लिए प्रेरित करता है। वह जय भीम का विरोध करनेवाले किशनू चाचा को समझाते हुए कहता है, “ओ चाचा हमें जय भीम बोलने में क्या हर्ज है, जिस भीमराव अंबेडकर जी ने हमारे लिए इतना सब कुछ किया है उनकी जय बोलने और उनकी प्रतिमा अपने घर में लगाने से हमें परहेज नहीं होना चाहिए।”04 देखते ही देखते गांव का माहौल बदलने में देर नहीं लगती और गांव का अन्य पिछड़ा वर्ग साळी,

माळी, लुहार और सुनार आदि भी सरकार के आदेश का धिक्कार करने के लिए रास्ते पर उतरने को तैयार होते हैं। देखते ही देखते गांव ने पहले कभी इतना विराट जन्म मोर्चा नहीं देखा होगा ऐसा एक विराट जनमोर्चा सरकार के खिलाफ घोषणाएं देता हुआ पहली बार निकलता है। 'जनमोर्चा' यह कहानी दलित पिछड़े वर्ग के विकास के लिए आरक्षण की आवश्यकता बयां करती है। साथ ही आरक्षण नीति के प्रामाणिक अमल की वकालत करती है।आरक्षण मिला लेकिन वह जरूरतमंद समाज तक सही रूप से पहुंचा क्या? नहीं पहुंचा तो क्यों नहीं पहुंचा ? आजादी के पिच्याहत्तर साल हो गए परंतु दलित पिछड़ों के जीवन में जितना सुधार होना चाहिए था उतना नहीं हुआ क्योंकि किसी भी सरकार ने संविधान की आरक्षण नीति का सही अमल नहीं किया ? केवल अपने राजनीतिक स्वार्थ सिद्धि के लिए आरक्षण के नाम पर समाज को गुमराह किया। यह कहानी दिन दलितों को अभी भी आरक्षण की आवश्यकता पर बल देते हुए सत्ता के द्वारा साम, दाम, दंड, भेद नीति के प्रयोग से उत्पन्न डर को दर्शाती है। साथ ही सत्ताधारी ,साहूकार, व्यापारी और जमींदारों का गरीब दलित पीड़ितों पर दबाव तंत्र, सत्ताधीशों, सवर्णों का सत्ता और संपत्ति का अहंकार युक्त रौब और गरीब, दलित, पिछड़े समाज द्वारा अपने मूलभूत अधिकारों की प्राप्ति के लिए किए गए संघर्ष की अभिव्यक्ति करती है।

संग्रह की दूसरी कहानी 'जाति न पूछिए' आरक्षण को प्रेम, विवाह और राजनीति के त्रिकोण से नई दृष्टि प्रदान करती है। इसमें दलित गीता और सवर्ण मोहन संत कबीर, रविदास आदि संतों के क्रांतिकारी विचारों से प्रभावित हैं। इसलिए वे अपने मन में जाती-पाती और धर्म पंथ का भेदभाव नहीं रखते । दोनों एक दूसरे को चाहते हुए घर से भाग कर विवाह करते हैं । यहां कबीर दास के जाति व्यवस्था का खंडन करने वाले दोहे को की याद आती है।

" जाति न पूछिए साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान मौल करो तलवार का पड़ा रहने दो म्यान ।"

गीता और मोहन के विवाह से चिढ़कर मोहन का परिवार गीता के परिवार पर हमला कर उन्हें मारपीट करता है। गीता के पिता को अपमानित कर आत्महत्या के लिए मजबूर किया जाता है। साथ ही गीता की मां और भाई को गांव छोड़ने की धमकियां दी जाती है। लेकिन जब गांव का सरपंच पद अनुसूचित जाति की महिला के लिए आरक्षित होता है तब यही हमला करने वाला परिवार गीता को बहू के रूप में स्वीकार करने को तुरंत तैयार होता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि जब सत्ता को हथियाने की बात आती है तब जात, धर्म, रोटी बेटी, रंग रूप किसी भी बात से आसानी से समझौता किया जाता है। इससे राजनीति के विद्रुप चेहरे की असलियत का पता चलता है। गीता की जीत के बाद वे उसे अपने हाथ की कठपुतली बनाना चाहते हैं। परंतु गीता अपने कर्मठ , ढोंगी, पाखंडी ससुर के सपनों को कभी पूरा नहीं होने देती। वह अपने ससुर से कहती है, "आपने जो दलितोध्दार का नाटक खेला है न उसकी सब असलियत जान चुकी हूं मैं। मुझे मेरे पिता की मौत आज भी याद है और मैं पूरे होशोहवास के साथ कह रही हूं कि आज से गांव का कारोबार रामप्रसाद जी नहीं... मैं... मैं करूंगी... मैं..।"05 गीता के रूप में पहली बार किसी दलित पिछड़े वर्ग की कोई स्त्री संवैधानिक आरक्षण अधिकार से गांव की मुखिया बन ससुर और पति के दबाव को ठुकरा देती है। यह आरक्षण, स्वातंत्र्य और समता के तत्वों का ही कमाल और जीत है। गीता के इस व्यवहार के पीछे संत कबीर और संत रविदास जी की राज व्यवस्था संबंधी समतामूलक विचारधारा को प्रेरणा स्रोत के रूप में देखा जा सकता है।

प्रस्तुत संग्रह की तीसरी कहानी 'क्या हम हिंदू है ?' आजादी के पिच्याहत्तर साल बाद भी गांव के जातीय भेदभाव को अभिव्यक्त करते हुए दलितों पर किया जाने वाले अन्याय अत्याचार का चित्रण करती है। साथ ही आज भी दलितों को वे स्वयं हिंदू होते हुए भी कई गांवों में मंदिर में प्रवेश करने नहीं दिया जाता इस

वास्तविकता को समाज और पाठक के सामने प्रस्तुत कर दलितों के हिंदू होने पर ही बहुत बड़ा प्रश्न चिन्ह उपस्थित करती है। अनुसूचित जाति मांग समाज के सरपंच बली की बेटी मीरा के विवाह में दूल्हा अशोक हनुमान मंदिर में जाकर हनुमान जी के दर्शन करता है तब विषमता के नींव पर खड़ी जाति वादी समाज व्यवस्था में भूचाल आता है। बली का परिवार, दूल्हा और बारातियों पर जानलेवा हमला किया जाता है। "मारो सालों को मंदिर में प्रवेश करते हैं शहर से आए हैं तो क्या हुआ? यहां शहर का कानून नहीं चलता। हमारा चलता है, सिर्फ हमारा ।... हां हां मुखिया का दामाद है तो क्या हुआ? है तो दलित ही । नीचे से हाथ जोड़ता तो क्या फरक पड़ता । गीदड़ कितनी भी ऊंचाई पर जाए गरुड़ नहीं बनता । मारो सालों को, लै... खट्यांक ।"06 देश आजाद होकर सत्तर साल बीत गए क्या दलितों पर होने वाले अत्याचार में कमी आई हैं? नहीं , देश के हर कोने-कोने में दलितों पर होने वाले अत्याचार की घटनाएं बढ़ती जा रही है और इन समाचारों से देश के हर समाचार पत्र का कोना-कोना चिल्ला चिल्ला कर समाज के सामने दलितों पर होने वाले अत्याचारों के जीवंत प्रमाण दे रहा है की क्या दलित सचमुच में हिंदू हैं।

'कठपुतली का विद्रोह' यह कहानी खुले प्रवर्ग के महिला आरक्षण पर प्रकाश डालती है। प्रस्तुत कहानी किस तरह से लोकप्रिय नेता विलासराव की मृत्यु के बाद उनकी पत्नी शारदा को जबरदस्ती से चुनाव में उतार दिया जाता है । उसकी जीत के बाद शारदा को अपने हाथ की कठपुतली बनकर सारी सत्ता का उपयोग अपना घर भरने के लिए किया जाता है । इसका यथार्थ चित्रण हुआ है। गांव की पढ़ी-लिखी महिला प्रतिभा जब शारदा को समझाती है कि, किस तरह तुम्हारे नाम और हस्ताक्षर से लाखों का भ्रष्टाचार किया जा रहा है, गांव को लूटकर अपने घर भरे जा रहे हैं तब शारदा को असलियत का पता चलता है। प्रतिभा शारदा से कहती है, "देखो बहन, मैं आपका बहुत सम्मान करती हूं। हम दोनों ने चुनाव एक दूसरे के खिलाफ लड़ा है, मगर हम एक दूसरे की दुश्मन नहीं हैं। लेकिन पिछले तीन सालों से गांव में जिस तरह की राजनीति हो रही है वह मुझसे देखी नहीं जा रही है। बहन महिला आरक्षण का मतलब यह नहीं है कि उसके नाम पर पुरुष ही सत्ता का उपभोग ले और महिला केवल कठपुतली की तरह हां में हां मिलाकर हस्ताक्षर करें।"07 तब शारदा की आंखें खुल जाती है और उसके अंदर की कठपुतली स्त्री दुर्गा बनकर विद्रोह के लिए तैयार होती है। दूसरे ही दिन वह ग्राम पंचायत कार्यालय जाकर घरकुल योजना के लाभार्थियों से संबंधित निर्णय को बदलकर स्वयं नया निर्णय लेती है। एक स्वाभिमानी और जागरूक सरपंच के रूप में वह आबासाहब के हाथों की लिस्ट छीन कर सबके सामने उसके टुकड़े-टुकड़े कर फेंकते हुए क्लर्क से कहती है, "लच्छी, भोलाराम, रसूल के साथ गांव के सभी गरीबों के नाम की नई घरकुल लाभार्थियों की लिस्ट जल्दी से जल्दी तैयार करो।"08

'मजहब नहीं नहीं सिखाता' संग्रह की पांचवी कहानी राजनीति में हिंदू मुस्लिम संघर्ष और दंगों का विश्लेषण करते हुए अल्पसंख्यक विमर्श की बात करती है। किस तरह से राष्ट्रीय स्तर पर मंदिर मस्जिद विवाद के परिणाम स्वरूप गांव में दोनों समाज के अरबाज और जगन की हत्याएं होती हैं। गांव में मुस्लिम समाज की संख्या अधिक होने के बावजूद भी सन 1952 में जब ग्राम पंचायत की स्थापना हुई तब से अब तक एक बार भी मुस्लिम सरपंच नहीं बना था। लेकिन जब सरपंच का चुनाव सीधे जनता से होने का शासन निर्णय आता है और गांव का सरपंच पद ओपन पुरुष को आरक्षित होता है तब गांव के वरिष्ठ बुजुर्ग अब्दुल चाचा सभी मुसलमानों से सलाह मशवरा कर अरबाज के सुशिक्षित बेटे अलहाज को चुनाव में खड़ा करने का निर्णय लेते हैं। इससे वर्तमान सरपंच सूर्यभान आग बबूला होते हैं और वह गांव के दलित, आदिवासी मतदाताओं को मुसलमान को मतदान न करने की धमकियां देते हैं। वे दलित युवक अमर के द्वारा जब मुखिया जी को हम सब मिलकर तय करेंगे कि हमारे लिए कौन अच्छा और कौन बुरा उम्मीदवार होगा, हमें भी स्वयं निर्णय का अधिकार है ऐसा कहा जाता है

तब सूर्यभान कहते हैं, "स्वयं निर्णय यह क्या होता है? प्रतापराव जरा समझा दो इन्हें, अगर घी सीधी उंगली से ना निकले तो उंगली टेढ़ी करने हमें अच्छी तरह से आता है। हमारे मुंह में दूध के दांत नहीं हैं, जो घुट घुट दूध पियेंगे। कुछ धोखा हुआ तो कच्चा चबा जाएंगे कच्चा।"09 चुनाव में मंदिर मस्जिद, भारत पाकिस्तान, मुसलमान आतंकवादी के साथ गांव के मंदिर में मांस डालने की अफवाह फैलाकर मुसलमानों के खिलाफ हिंदुओं के मत विभाजन की भरसक कोशिश की जाती है परंतु सुशिक्षित अलहाज, अमर और महेंद्र गांव को धार्मिक दंगों से बचाकर पुलिस की सहायता से शांतिपूर्ण मतदान के बाद अलहाज के रूप में पहली बार किसी मुसलमान को गांव का सरपंच बनाने में सफल होते हैं।

उपर्युक्त पांच कहानियों के साथ ही 'अधूरा सपना' यह कहानी बेरोजगार विमर्श पर प्रकाश डालते हुए शिक्षा क्षेत्र में फैला भ्रष्टाचार का पर्दा फास करती है। शिक्षा के क्षेत्र में किस तरह शासन, संस्था चालक, बुद्धिजीवी मार्गदर्शक आदि की मनमानी मानसिक प्रवृत्ति तानाजी जैसे कई बेरोजगार बुद्धिमान युवकों के भविष्य के साथ खिलवाड़ कर उनके सपनों पर पानी फेर रही इसका बहुत ही मार्मिक चित्रण इस कहानी में हुआ है। 'आगे ना पीछे' कहानी किन्नर विमर्श की वास्तविकता को अभिव्यक्त करते हुए गांव के विकास की कुंजी एक किन्नर के हाथ में सौंपती है। इसी तरह इस संग्रह की अन्य कहानियां जैसे 'ईंदू' , 'बीस साल बाद', 'अग्निगर्भा', 'जूते की जिंदगी' और 'पथरीली जमीन' यह आरक्षण के विविध आयामों के साथ समकालीन हिंदी साहित्य में अस्मिता मुल्क विमर्शों की वास्तविकता को पाठक और समाज के सामने रखती है।

कुल मिलाकर 'जनमोर्चा तथा अन्य कहानियां' संग्रह की सभी कहानियां स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद महाराष्ट्र की राजनीति में सत्ता पर कुंडली मारकर बैठे हुए शोषक सत्ताधिश समाज के द्वारा पिछड़े समाज पर होने वाले अघोरी कहर, शोषण, दमन की कहानियां हैं। साथ ही आजादी के बाद आरक्षण नीति की दुरावस्था का का सूचक और मार्मिक चित्रण भी करती है। यह सारी कहानियां आरंभ में किसी एक समस्या या प्रश्न को उपस्थित कर अंत में धैर्य और साहस के साथ उसे एक सकारात्मक आशावादी प्रवाह में प्रवाहित करती है। इन कहानियों के केंद्र में सदियों से अपेक्षित, दलित, वंचित समाज के लोग हैं जो आरक्षण के सहारे अपने मूलभूत अधिकारों की प्राप्ति के लिए हमेशा संघर्षरत हैं। मानों संघर्ष ही उनका जीवन है।

संदर्भ संकेत :

1 जनमोर्चा तथा अन्य कहानियां, रमेश संभाजी कुरे,यश पब्लिकेशन,नई दिल्ली,2021, पृष्ठ -09

2 वही, पृष्ठ -13

3 वही, पृष्ठ -18

4 वही, पृष्ठ - 21

5 वही, पृष्ठ - 38

6 वही, पृष्ठ - 42

7 वही, पृष्ठ - 55

8 वही, पृष्ठ - 57

9 वही, पृष्ठ - 66

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

अस्तित्व से अस्मिता तक विमर्श का दौर

डॉ. *राजश्री कल्याणकर*

प्रो. कै.लक्ष्मीबाई देशमुख महिला महाविद्यालय
परली - वैजनाथ

शोध सारांश

अस्मिता विमर्श की अवधारणा ही यहीं से शुरू होती है कि मैं कौन हूं और समाज में मेरी क्या हैसियत है , समाज में मेरा क्या वजूद है , मेरा अस्तित्व क्या है, मेरा अधिकार और कर्त्तव्य क्या है ? इन तमाम प्रश्नों के संदर्भो का अनुसंधान भारत वर्ष में यहाँ की सामाजिक संरचना और सामाजिक सांस्कृतिक जीवनशैली में निहित है। उपर्युक्त सवालों ने अस्तित्वबोध की चेतना पैदा की और यहीं से अस्मितां का निर्माण होता है। समाज में अस्तित्व का संकट सामूहिक अस्मिता को जन्म देता है।डा. अंबेडकर ने भारतीय समाज में सबसे निचले पायदान पर जीवन यापन कर रहे समुदाय और वर्ग में इसी चेताम को निर्मित किया। यही वर्ग समय के साथ अस्मिता व की एक नई अवधारणा देकर उसे राष्ट्रीय अस्मिताका सावाल बनाया।

संकेत शब्द

अस्मिता , आंदोलन, समुदाय, चिंतन , दर्शन, युगबोध, सामाजिक, संगठन आदि ।

अस्मिता विमर्शमानव की अस्मिता को ओर हम परिभाषित करे तो उसका अर्थ होगा मानव की अपनी अलग पहचान। जो उसने अपनी बुद्धी के बल पर प्राप्त की है। सभी प्राणी मात्रों में मानव ही अपनी अस्मिता को बना पाया है और उसे बरकरार भी रखा है। हम अपनी अर्जित अस्मिताओं और अपने अंदर की मै की भावना को स्वर्य स्वीकृत मानते हैं। हम अपनी आलग पहचान रखते है क्योंकि हम जानते है कि हम कौन है , किस प्रदेश विशेष से आये हैं, हमारी भाषा कौन सी है, हमारी संस्कृती क्या है, हमारे रीति-रिवाज कौन से है। हमारा सामाज के प्रति व्यवहार हम अन्य संस्कृति , धर्म को कितना जानना चाहते है इस बात पर निर्भर करता है। हम मानव समूहों को भाषा के आधार पर वर्गीकृत कर समाज को समय और स्थान के आधार पर आदि विविध प्रकार से वर्गीकृत कर सकते हैं। भारतीय संस्कृति, पाश्चात्य संस्कृति विभिन्न संस्कृतियों और समूहों के आधारपर भी वर्गीकृत किया जा सकता है ।

उपर्युक्त समूह या संस्कृति में से कोई भी व्यक्तीजअपने आप को जोड़ता है संस्कृति जिनमें ऐतिहासिक कालों के समयानुसार परिवर्तन होता चलता है। मानव की अस्मिता परिवर्तनशील होती है । अस्मिता निर्माण एक जटिल प्रक्रिया है जो समय के साथ बदलती रहती है। इसतरह अस्मिता को हम निम्नलिखित रूप से परिभाषित कर सकते है। "अस्मिला से हमारा तात्पर्य समझौते से है जो आमतौर पर स्वीकृत सामाजिक रीति-रिवाज, मतों और जीवन शैली पर आधारित होता है जो व्यक्तियों को एक दूसरे से बांधता है तथा वह किसी समुदाय तथा व्यक्ति विशेष की ओर इंगित करता है।""अस्मिता विविध प्रकार की होती है जैसे राष्ट्रीय अस्मिता, धार्मिक और जातीय अस्मिना, लिंगीय अस्मिता, पारिवारिक अस्मिता, व्यावसायिक अस्मिता आदि अस्मिता विमर्श किसी भी घटना / विषयवस्तु । समस्याओं का समाजशास्त्रीय विश्लेषण का हग्टिकोण है। उसका नजरिया है इसी संदर्भ में सामाजिक सरोकार की भूमिका की भी परीक्षा होती है ।

अस्मिता विमर्श, साहित्य और चिंतन में भले ही आधुनिक युग की देन लगती हो लेकिन इतिहास के पन्नों में यह प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से मानव सभ्यता के इतिहास से जुड़ा हुआ है । जब से मानव की सभ्यता - संरकृति है । तभी से उसकी अस्मिता अलिखित रूप में उपस्थित है। लिखित रूप में वह चेतना का आकार लिया है और आधुनित युगबोध के साथ सभ्यता-संस्कृति के विकासक्रम में विकसित हुआ है। अपना स्वरूप ग्रहण किया है और अपनी वैचारिकता के साथ चिंतन व दर्शन का अवधारणात्मक पदबंध धारण किया है। दूसरे शब्दो में कहा जा सकता है कि सत्ता संघर्ष के इतिहास में अस्मिता विमर्श पदबंध हमेशा उपस्थित रहा है। उसका एक इतिहास रहा है जो अधिकार वजूद , पहचान , अस्तित्व, गरिमा ,न्याय आदि विभिन्न रुपों में विविध आयामों में सामाजिक , सांस्कृतिक भौगोलिक, नैसर्गिक, जैविक, धर्म, जाति - प्रजाति, भाषा इत्यादि रुपों में आबद्ध रहकर जीविता रहा है। "दलित स्त्री, आदिवासी, पिछडे, अल्पसंख्याक अधिकार विहीन विभिन्न अस्मिताओं की आवाजे समकालिन अस्मितावादी आंदोलन का पर्याय है। सही मायनो में कहा जाए तो समतावादी सामाजिक परिवर्तन का पर्याय है समकालीन अस्मितावादी आंदोलन ।.इस आंदोलन का मूलस्वर रहा है समानता और करुण आधारित सामाजिक व्यवस्था की मांग है क्योंकि भारतीय सुमार के बहुसंख्य भाग हिंसा, अपमान अन्याय और आधिकार विहिन रहे है इसीलिए प्राथमिक तौर पर आत्मसम्मान, गरिमा और अधिकार की मांग लिये समकालीन अस्मितावादी आंदोलन जुड़े हुए है। पितृसत्ताक व्यवस्था पर प्रश्न उठाकर स्त्री-पुरुष समानता के सवाल अस्मतावादी आंदोलन के सबसे महत्वपूर्ण सवाल है । समकालीन अस्मतावादी आंदोलन का दायरा बहुत विस्तृत है । लेखन, सोच ,संगठन, समकालीनता और मिडिया के कारण विभिन्न हाशिए की आवाजों को अस्मितावादी' नाम से जाना जाने लगा है। जबकि सभी आवाजों की समस्याएं एक सा नही है। हालांकि सभी समस्याओं की जड में हिंदु व्यवस्था की वर्चस्ववादी सोच संगठन और मीडिया के कारण क्चस्वशाली सोच , दृष्टी और व्यवस्था को सुनियोजित तरिके से यदि किसी ने चुनौती दी है तो वह है समकालीन दलित आंदोलन जिसके प्रेरणास्रोत एवं आदर्श बुद्ध , फुले दम्पति और डॉ. आंबेडकर है । अस्मिता विमर्श एक राष्ट्रीय विमर्श है । अस्मिता का सवाल राष्ट्रीय अस्मिता का सवाल है । दलित, स्त्री और आदिवासी मिलकर बहुजन समाज का पर्याय बनता है । इस अर्थ में यह बहुजन विमर्श भी हो सकता है ।

आज भूमंडलीकरण का दौर है।भूमंडलीकरण के दौर में आधुनिक युगबोध व चेतना के साथ अस्मिता विमर्श सदियों से सत्ता - अर्थात ज्ञान सत्ता व भौतिक सत्ता से वंचित समुदायों के संचर्ष, आंदोलन व चिंतन- दर्शन के तौर पर उभरा है। इसमें मुख्यरुप से दलित विमर्श स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श व अल्पसंख्याक विमर्श मुख्यरूप से समाज में अपने जीवन मूल्यों से वंचित समुदायों व वर्गो का है जो विभिन्न देशकाल में विभिन्न समुदायों द्वारा समय-समय पर उठाया जाता रहा है लेकिन जैसा कि पहले कहा जा चुका है यह विमर्श आधुनिक युगबोध व चेतना की देन है भारतवर्ष में यह युगबोध और चेतना फूले आंबेडकरवादी चिंतन और दर्शन से निकलकर मुक्कमल स्वरूप धारण करता है यही कारण है कि भारत में अस्मिता विमर्श को वैचारिकी और उसकी अवधारणा दोनों ही फुले- अंबेडकर के चिंतन व दर्शन का प्रतिफलन है।

अस्मिता विमर्श की अवधारणा ही यहीं से शुरू होती है कि मैं कौन हूॅ और समाज में मेरी क्या हैसियत है , समाज में मेरा क्या वजूद है , मेरा अस्तित्व क्या है, मेरा अधिकार और कर्त्तव्य क्या है ? इन तमाम प्रश्नों के संदर्भो का अनुसंधान भारत वर्ष में यहाँ की सामाजिक संरचना और सामाजिक सांस्कृतिक जीवनशैली में निहित है। उपर्युक्त सवालों ने अस्तित्वबोध की चेतना पैदा की और यहीं से अस्मितां का निर्माण होता है। समाज में अस्तित्व का संकट सामूहिक अस्मिता को जन्म देता है।डाॅ. अंबेडकरने भारतीय समाज में सबसे निचले

पायदान पर जीवन यापन कर रहे समुदाय और वर्ग में इसी चेताम को निर्मित किया। यही वर्ग समय के साथ अस्मिता व की एक नई अवधारणा देकर उसे राष्ट्रीय अस्मिताका सावाल बनाया।

संदर्भ सूची :

1. आधुनिकता , भूमंडलीकरण और अस्मिता : अभिजित पाठक, प्रकाशक : आकार बुक्स -- जनवरी 2013
2. अस्मिता का संघर्ष : शशी थरूर, वाणी प्रकाशन
3. अस्मिता : सूर्यकांत जाधव , मेहता पब्लिशिंग

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

समकालीन हिंदी कहानियों में नारी अस्मिता

डॉ. गंगा एकनाथ शेळके, (गायके)

हिंदी विभाग

खोलेश्वर महाविद्यालय अंबाजोगाई

शोध सार :

समकालीन जीवन में अपनी विवश एवं असहाय परिस्थितियों में मानव, प्रारम्भिक मनोभाव अमर्ष, घृणा आदि के. स्थान में परिष्कृत मनोभाव दुःख, आत्मग्लानि आदि का अनुभव करता है। साथ ही मन में करुणानुभूमि प्रमुख एवं प्रधान रूप में रहती है। नारी चाहे शहरी, ग्रामीण या शिक्षीत, अशिक्षित हो, उसके जीवन में दर्दभरी कहानी होती है।

बीज शब्द :

नारी में मातृत्व की कुष्ठा, असहाय नारी, बेटों के बीच झूलती माँ, वात्सल्यमूर्ति, मानवीय संवेदनाओं को अभिव्यक्त करनेवाली नारी के करून रस ।

प्रस्ताविक :

अस्मिता का अर्थ गौरख, आत्मसम्मान प्रकृति होता है अपनी संतान को अस्मिता नाम देकर छाप उसके जीवन को एक नई दिशा दे सकते है। मिजी पहचान के साथ-साथ उस क्षेत्र और समाज की पहचान भी है जो हमारे संदर्भ तय करते है। ये संदर्भ जाति, रंग, वर्ग, नस्ल क्षेत्र, भाषा, पेशे इत्यादि के रूप में हमारे अंतरंग के हिस्सा है। अस्मिता प्राप्ति के लिए संघर्ष करके पहचान या हक के किसी है। पहचान को विमर्श की आवश्यकता होती है।

स्वतंत्रतापूर्व की कहानियों के मानदण्ड एवं जीवन मूल्य अलग थे। आज की कहानियों में उनमें लक्षणीय बदलाव आया है। वस्तुतः प्रत्येक कहानी में नारी पात्र किसी-न-किसी रूप में उपस्थित रहते हैं। कुछ नारी पात्रो ने हमें बहुत अधिक प्रभावित किया। स्वाभाविक भी है, एक नारी होने के नाते, नारी की बेदना से पेर भली भांति परिचित है। वैसे नारी के विषय में कहा भी गया है- 'नारी तेरे रूप अनेक' स्त्रियों में चारित्रिक दृष्टि से नाना रूपों का वर्णन मिलता है। जिन यातनाओं, पीड़ाओं, कुंठाओ वेदनाओं के बीच आज की नारी जी रही है। उसे नये कहानीकारों ने मानसिक धरातल पर विश्लेषित करने का प्रयत्न किया है। जीवन का कोई भी पुण्य कर्म नारी के बिना सार्थक नहीं माना गया है। वह बेटी, माँ, पत्नी, प्रेयसी जो भी है, उसी सम्बन्ध में जीवित रहने को अभ्यस्त है। बिना प्यार का सहारा पाये रहना उसके लिये अकल्पनीय है। कवि प्रसाद जी कहते है - "नारी तुम केवल श्रद्धा हो। विश्वास रजत नग पंगतल में रबिहाकरी, जीवन के सुन्दर समतल में"[1] प्रसाद कामायनी : लज्जासर्ग : पृ.क.84 ब्राहमण ग्रंथों में माता सबसे पहला गुरु माना गया है उसमे माँ की देवता की भाँति पूजा करने का विधान है।

समकालीन हिंदी कहानियों में पीढ़ियों के संघर्ष में संयुक्त परिवार की ढहती दीवारों को लांघती नारी और उसके जीवन के अनेक सन्दर्भ इन कहानियों में मिलते है। कही आर्थिक संकटों से जूझती नारी है, कहीं सामाजिक रुढ़ियों एवं धार्मिक अन्धविश्वासों की वेदी पर बलि होती नारी है । तो कही शिक्षित शहरी नारी और कही अशिक्षित ग्रामीण की दर्दभरी जिंदगी का चित्रण हुआ है ।

विषय विवेचन

दोपहर का भोजन (अमरकान्त)

माँ सहज मानवीय संवेदनायों की कलात्मक अभिव्यक्त यह कहानी है ।

अमरकान्त की प्रसिध्द कहानी 'दोपहर का भोजन' सहज मानवीय संवेदनाओं को लेकर जीनेवाली माँ की कहानी है। आर्थिक अभाव के कारण माँ अपने बच्चों की भर पेर भोजन तक नहीं जुटा पाती।

"माँ तो माँ होती है। वैसे माँ सिध्देश्वरी की असहायता एवं विवशता कई जगह स्टस्ट होती है। दर्दभरी घर की फटेहाली के देखकर रोंगटे खड़े होते हैं। बड़े लडके रामचन्द्र की सिध्देश्वरी बड़े प्यार से भोजन करवाती है। वह नहीं जानती कि उसका मंझला लड़का मोहन कहां गया है। मोहन जब भोजन करने आता है तो वह कहती है " बड़का तुम्हारी बडी तारीफ कर रहा था।"[2] गद्य विभा- हिंदी अध्ययन मंडल राजकमल प्रकाशन 2023,पृ.क.14

हर एक के हिस्से में दो रोटियाँ, कटोरी भर दाल का निश्चित प्रमाण है। छोटे लड़के प्रमोद की याद आते ही बची हुई एक रोटी में से आधी रोटी खा कर पेट भर लेती है। इस कहानी में पती-पत्नी और उनके तीन बेटे है। यह एक ऐसे निर्धन परिवार के उस समय का करूण चित्रण है। जो वे दोपहर के भोजन के लिए बैठते है, परन्तु भरपेट खा भी नहीं सकते। परिवार के सभी लोग इस स्थिति से परिचित होकर भी एक दूसरे को संभाल लेते हैं। अत्यंत दयनीय, निर्धन परिवार के बोस को ढोनेवाली सिध्देश्वरी हमारी संवेदनाओं को झकझोरती है। सिध्देश्वरी मोहन से कहती है- "नहीं, बेटा, मेरी कसम, थोड़ी ही ले लो। तुम्हारे भैयाने एक रोटी ली थी।" [3] वहीं पृ.क.14 मोहन माँ को गोर से देखता है और एक कटोली दाल माँगता है। इसीतरह परिवार में प्यार से गरीबी को छूपाने का वर्णन है।

'ममता! तू न गई मेरे मन ते'- मालती जोशी

यह कहानी मातृत्व प्रधान कहानी है। जो मातृत्व के लिए, आतुर है। नारी को अपनी ममता प्रकट करने के लिए कोई न कोई अवलंबन चाहिए । एक स्त्री के लिए मातृत्व की भुख ही सबसे बड़ी भूख होती है। पूरी कहानी में शैली में कही गई है। इस कहानी में निवेदिका पति की इच्छा के विरुद्ध जमादार के बेसहारा बालक की ठंड से बचाने के लिए घर के भीतर सुलाती है। निस्संतान पत्नी की आतुरता देखकर पति अपने नाई के बेटे विजय को अपने घर ले आता है। पति के कड़े अनुशासन के कारण विजय विचलित हो जाता है। उनका कहना है कि आदते शुरू से ही डाली जाती है। एक बार लड़का सिर चढ़ गया तो खूब नाम रोशन करेगा।" [4] मालती जोशी : ममता! तू न गई मेरे मन ते : एक घर सपनों का: पृ.क.95

विजय बाहर चला जाता है निव दिता पति के मना करने पर भी जमादार के लड़के भीमा को अपने घर रख लेती है। कभी उसको निरीहता पर प्यार आता, तो कभी तंग आकर झिड़क देती है। उसे अपने जैसा ही असहाय और अकेल देखकर उसका मन भर बा आता है। पति को ऐसी आशा नहीं थी कि संतान की भूख पत्नी को इतनो निचले स्तर पर ले जायगी। एक स्त्री की संतान भूख तथा अपने वात्सल्य को उडैलने के लिए अवलंबून ढूंढना दिल दहलाने वाली बात है।

'सपूत' - ऋता सुक्ता कहानी में मातृत्व की कुण्ठा दिखाई देती है। प्रस्तुत कहानी में दादी की वेदना, दुःख, वियोग आदि को लेखिका ने रुपायित किया है। आजी बीमार बुढी पार्वती है। उसकी साँसे न जाने कब से अटकी हुई है। दोनों बेटों में किसी को उसके पास रहने की फुर्सत नहीं है। एक बेटा श्रीकृष्ण तिवारी पिछले पन्द्रह वर्षा से अमरीका में बस गया है। दूसरे बेटे डॉ. राघव को अपने दवाखाने से फुर्सत नहीं है। दादी एक अनाथ बच्चे वीरेन्द्र को पाल-पोस कर बी.ए. तक पढ़ाती है। वहीं, उसके पास रहता है। वीरेन्द्र से वह कहती है। वीरू तू तो छोड़कर

नहीं जायगा न बेटे ?लकड़ी के धुएं में आँखें खप गई- अब तरी बहु आयेगी तो आयेजी में आराम करूँगी''[5] सपूत ऋता शुक्ल कथानक सितम्बर 1881,. पृ.क.64 प्रकाशन दादी का स्वभाव जिदी है और वह स्वयं सारे काम करती है। जिन हाथों से दोनों बेटों को पाल-पोसकर बड़ा किया है वे अब बीमारी में पूछते तक नहीं। दोनों बेटे कोई न कोई बहाना बना कर टाल देते है दोगों बेटों को पूछने तक नहीं। । दादी की झिल मिलाती आँखों में वियोग तृप्त मातृत्व की कुष्ठा अनेकबार झांकती है। कभी वह सोचती है कि दोनों को बनाम में उसका कितना बडा हाथ रहा है। वह वीरेन्द्र से कहती है- "तू मेरा इतना ख्याल कैसे रखता है बेटे । - राघव और किसना दोनों मेरे कोख जाये बेटे है, लेकिन भूल गये, इनकी कोई माँ भी है रात दिन उनकी चिन्ता में घुलनेवाली।"[6] जि वही है. के. 65 राघव और कृष्ण की याद में दम तोड़ने वाली पार्वती- आजी पर गांवभर के लोग आँसू बहाते है। लेखिका ने सपूत शीर्षक व्यंग्यात्मक रूप से प्रयुक्त किया है।

चीफ की दावत – भिष्म साहनी कहानी में वात्सल्य हेतु अपमान सहनेवाली माँ है। इस कहानी में एक ऐसी माँ का चित्रण भीष्म साहनी ने किया है जो वात्सल्य हेतु अपने बेटे द्वारा किये गये अपमान सहते चली जाती है।

चीफ की दावत पर बुलाकर पदोन्नति पाने में शामनाथ और उनकी पत्नी को अपने ही घर में सबसे बड़ी अड्चन है। अपने बेटे की सुविधा के लिए एक कोठरी में दीवार से सहकर वह माला जपती है। लाचार और बेबस होकर बेटे की बौखलाहट से सहती चली जाती है। अतः वह सहनशीलता की प्रतिमूर्ति लगती है। है जिस बेटे की पढ़ाई लिखाई में माँ अपनी चूड़िया तक बेच देती है। वही आज उसकी डाँट सुनती है। वह श्यामनाथ से कह देती है- "तुम कह देना- माँ अनपढ़ है- कुछ जानती समझती नहीं वह नहीं पूछेगा।"[7] भीष्म साहनी चीफ की दावतः भीष्म साहनी व्यक्ति और रचना : पृ.क.127 जब चीफ के आते ही माँ हडबड़ा कर उठती है। और थरथर कापने लगती है।शराब की बू से माँ 37 कुचनाः पृ.का दम घुटने लगता है ।

माँ का व्यक्तित्व और कलाकृति चीफ को बहुत प्रभावित करती है। माँ को आँखों से स्पष्ट दिखाई नहीं देता फिर कभी बेटे की पदोन्नति के लिए फुलकारी बनाना शुरू कर देती है। बेटे की पदोन्नति | चीए के व्यवहार से तो माँ संतुष्ट है, पर बेटे के अपमानजनक व्यवहार से उसके नेत्रों में आँसू छलछलाते है। वह लज्जित होकर कहती है- "तुम अपनी बहु के साथ मन चाहे रहो मैने अपना खा-पहन लिया तुम मुझे हरिद्वार भेज दो।"[8] वहीं पृ.क्र. 132)

'आत्मकथा' का मनोभाव - सिम्मी हर्षिता, कहानी में असहाय नार का चित्रण है। एक असहाय एवं बेसहारा वृध्दा नानी ही मानसिकता का चित्रण सिम्मी हर्षिता ने प्रस्तुत कहानी में किया है। ग्यारह बच्चों की माँ होकर भी उसे कोई अपने साथ नहीं ले जाता। वह कहती है - सभी चले गये, पर मेरी भूख नहीं गयी ?"[9] सिम्मी हर्षिता : आन्मकथा का मनोभाव : घराशयी : पृ.क्र.35) इस बुढापे में भी उसके पास कथायें पहेलिया, गीत शांति, स्थिरता एवं घुलमिल जाने का तरल भाव है । उसके पास केवल मन बहलवाव ही नहीं आश्वासन और आशीर्वाद भी है। नानी में गुस्सा बिलकुल नहीं है। वह कान की कच्ची है और जल्द ही दूसरों की बातों में आ जाती है।

वह अकस अपने दुःख को हलका करने के बहाने बेटियों के पास चली जाती है। न जाने कैसे वह बैठे-ठाढे या दौड़ कर रिश्ते जोड़ती है। नानी को दूसरे के व्यक्तिगत जीवन में सेघ लगाने और गलत वक्त पर मही उपदेश देने की आदत् है। पैसों की जररूरत पड़ने पर वह सोचती है- " मैंने जीवन में कोई पाप नही किया नुकसान नहीं पहुँचाया-- करती रही या दूसरों के पैदा करवाती रही फिर भी मेरा जीवन ऐसा क्यो ? "[10] वही पृ.क्र.22

खूब बच्चे पैदा 'अकेली'- मन्नू भण्डारी,कहानी में गरीब बुआ के कोई रिश्ते नहीं होते। अकेली कहानी में मन्नू भण्डारी ने ऐसी नारी का चित्रण किया है जिसे पति के रहते हुए भी असहाय और अकेलेपन की यातनाओं से गुजरना पड़ता है।

सोमाबुआ का पति साल में एक बार घर आता है, बाकी साल के ग्यारह महिने उन्हें अकेलेपन का सामना करना पड़ता है। वह एक कोठरी में अपना गुजारा कर लेती है। पति के स्नेह-हीन व्यवहार का अंकुश उनके रोजमर्रा के जीवन की अबाध गति को कुंठित कर देता है ।

अपने पति की मर्जी वह अभी भी संभालती है। दूसरों के घरों में वह दम फुलने तक जी तोड़ काम करती रहती है। उन्हें और कोई सहारा न रहने से पडोसवालो के भरोसे ही जिन्दगी कर रही है। वह परित्यक्ता है और अकेली रहती है। फिर भी सबसे सम्बन्ध जोरे इखती है। वह कहती है- "सामाजिक सम्बन्ध बनाये रखने का काम तो मरदों का है"- मैं तो मरदवाली हो कर भी बेमरदकी हूँ।"[11] वहीं पृ. क्र 33 वह बडी व्यवहार कुशल है । उपहार में कुछ देने के लिए अपनी जमा पूँजी ठिकाने लगाती है। बड़ी भोली है सोमा बुआ। पति के कहने पर कि बुलाये न आये तो मत जाना, बुआ कहती है- "मुझे क्या बावली समझ रखा है जो बिना दुलाये चली जाऊँगी वह पड़ोस वाली नन्दा बुलावे की लीस्ट में मेरा नाम देखकर आयी है ।"[13] वहीं पृ. क्र 36 दूसरों को महत्वपूर्ण बनाने के प्रयत्न में स्वयं नष्ट होते रहना और दूसरों के लिए हास्यासाद बन कर उनके व्यंग्य को सहना ही बुआ की नियति है। जिसका कोई अपना नहीं होता, वह औरों को अपना मानने की भूल कर बैठता है। रिश्तों का आधार अर्थ से होने के कारण रिश्तेदारों द्वारा बुआ की उपेक्षा होती है, किन्तु वह अंत तक विश्वास बनाये रखती है। यदि घर में पति न होता तो शायद बुआ बिना बुलायें भी शादी घर पहुँच जाती। कभी-कभी कुछ व्यक्ति सम्बन्धों के पुल अपनी ओर से बनाने का प्रयत्न करते है किन्तु न बना पाना उनकी त्रासदी है।

निष्कर्ष :

हम कह सकते है कि नारी के करुण रूप की अभी तक उपेक्षा हुई है। कहानीकार का ध्यान अभी तक नारी के रूप- सौन्दर्य तक सीमित होने से यौवन के ही अधिकांश रूप हमारे समुख आये है। किन्तु, जिन कथाकारों की दृष्टि उन करुण रूपों पर गयी है, उन्होंने उनके चरित्र को बड़ा न्याय दिया है। कही आर्थिक संकटों से जूझती नारी है, कहीं सामाजिक रूटियो एवं धार्मिक अन्य विश्वासों की वेदी पर वक्ति होती भारी है। तो कही शिक्षित शहरी नारी और उही अशिक्षित ग्रामीण नारियों की दर्दभरी जिंदगी का चित्रण हुआ है।

सन्दर्भ :

1) प्रसाद कामायनी : लज्जासर्ग : पृ.क.84.
2) गद्य विभा- हिंदी अध्ययन मंडल राजकमल प्रकाशन 2023,पृ.क.14
3) वहीं पृ.क.14.
4) मालती जोशी : ममता! तू न गई मेरे मन ते : एक घर सपनों का: पृ.क.95.
5) सपूत ऋता शुक्ल कथानक सितम्बर 1881,. पृ.क.64.
6) वही है. के. 65
7) भीष्म साहनी चीफ की दावत: भीष्म साहनी व्यक्ति और रचना : पृ.क.127.
8) सिम्मी हर्षिता : आन्मकथा का मनोभाव : घराशयी : पृ.क्र.35
9) सिम्मी हर्षिता : आन्मकथा का मनोभाव : घराशयी : पृ.क्र.35
10) वही पृ.क्र.22
11) वहीं पृ. क्र 33.
12) वहीं पृ. क्र 36.

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

सविता सिंह की कविताओं में नारी विमर्श

डॉ.मृणाल शिवाजीराव गोरे
सहाय्यक प्राध्यापक
खोलेश्वर महाविद्यालय, अंबाजोगाई

हिंदी कविताओं में वर्तमान कालीन लगभग सभी कवियत्रियों ने अपने लिखने से भारतीय परिवेश में मुक्ति के लिए छटपटाती नारी को दर्शाने का कार्य किया है। साहित्य के प्रारंभिक दौर में ऐसी स्थिति नहीं थी। 'सबसे पहली बात तो यह की 19 वीं सदी का नवजागरण एक प्रकार से स्त्री-केंद्रित था। पहली बार, नारी को एक मानवी की तरह पहचान की कोशिश की जा रही थी। जैसे ही यह कोशिश शुरू हुई, यह साफ दिखाई देने लगा कि साहित्य इतिहास से स्त्री निर्वासित है स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय भागीदारी ने यह तय कर लिया था कि साहित्य के क्षेत्र में भी स्त्रियों की और अपेक्षा अब संभव नहीं।'[1] साठोत्तरी कलसे से महिलाओं द्वारा लिखित स्त्री वादी लेखन की संख्या बढ़ती गई। ममता कालिया, सुधा अरोरा, मृणाल पांडे, उषा प्रियवंदा, चित्र मुगदल, राजी सेठ, सूर्यबाला, मृदुला गर्ग, मनिका मोहिनी, मन्नू भंडारी आदि महिला साहित्यकारों के कृतियों में स्त्री केवल दर्द ही नहीं साहस की भी प्रतिमूर्ति दिखती है। इसी महिला साहित्यकारों की श्रृंखला में एक महत्वपूर्ण नाम है कवियत्री सविता सिंहजी का।

सात-आठ साल की उम्र में ही सविता जी का लेखन कार्य शुरू हुआ। उनकी कविता का मुख्य पात्र स्त्री बना। इसके बारे में उन्होंने स्वयं कहा है कि मुझे ऐसा लगता है की पीड़ा ने ही स्त्री को गढा है। उसपर जो अत्याचार होते हैं उसी में वह दबी रहती है। समाज हमेशा से स्त्रियों को पराधीन ही बनाना चाहता है। अपनी इसी विचारधारा को उन्होंनें हिंदी और अंग्रेजी भाषा में अभिव्यक्ती दी हैं।

'सविताजी' का पहला कविता संग्रह 'अपने जैसा जीवन' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। पहले ही कविता संग्रह को पाठकोंद्वारा खूब सराहा गया। सन 2005 में उनका दूसरा कविता संग्रह नींद थी और रात थी पाठकों के समक्ष आया। सन 2012 में उनकी 50 कविताएं नई सदीके लिए चयन नाम से छपी। तीसरा संकलन 'स्वप्न समय' प्रकाशित हुआ। हाल ही में सन 2021 मैं उनका चौथा संग्रह 'खोई चीजों का शोक' प्रकाशित हुआ। 'प्रतिरोध का स्त्री स्वर' का संपादन कार्य भी उन्होंने किया।

'नई सदी के लिए चयन पचास कविताएं' संग्रह 2012 को प्रकाशित हुआ। इस संग्रह की कविताओं में नारी के अंतर्मन को बारीकी से समझा जा सकता है। उनकी सर्वश्रेष्ठ 50 कविताओं का यह संकलन में के विभिन्न रूपों को अधूरी करते हुए उसके अस्तित्व को दर्शाता है। प्रस्तुत कविता संग्रह मैं कवित्री में बारिश सवेरे नाथ कथा शोषण की प्रक्रिया को प्रकाशित किया है।

'मैं कथा कहूंगी' कविता में सविता जी ने प्राचीन काल से नारी की दशा को चित्रित करते हुए लिखा है कि तब और आज में ज्यादा बदलाव नहीं हुआ है स्त्री को बेतहाशा श्रम और जिम्मेदारियां का बोझ तब भी था आज भी है स्त्री तो की शर्म से उसे तब भी गार्डन जुकनी पड़ती थी वर्तमान में भी यही सिलसिला जारी है।

'देखूंगी तुम्हारे प्राचीन चेहरे
जो अब तक दस्तावेजों की तरह सुरक्षित होंगे वहाँ
उनसे ही जान लूंगी तुम्हारा हाल
और यह भी समझ लूँगी की बहुत फर्क नहीं है
एक दूसरे के हाल-चाल में अब भी'[2].

'मैं किसकी औरत हूं' कविता में सविता जी ने रेल यात्रा में मिली एक 7075 साल की स्त्री को रेखांकित किया है। जो अपने चेहरे पर दुख का पत्थर लिए पूछती है। मैं किसकी औरत हूं कौन है। मेरा परमेश्वर किसका दिया खाती हूं किसकी मार खाती हूं उस बुजुर्ग महिला के उपायुक्त प्रश्न उसी के अस्तित्व को खोजने में प्रयासरत है। जीवन के प्रारंभिक साल पिता के घर गुजरने के बाद बाकी का जीवन पति के घर नोचावार कर देती है। अपना मंथन अर्पित कर उसे घर को सजाती है।

'बारह साल की उम्र में
जब वह गई पति के घर पहली बार
उस घर को उसने बनाया अपना
लोप-पोत कर चमकाया उसे'[3].

लेकिन पति और पिता दोनों के घर में उसे पराया ही ठहराया जाता है। नारी की यह व्यथा सोचनीय है।

एक अन्य कविता में इसी भावना को प्रस्तुत करती पंक्तियां देखें –

'एक घर से दूसरे घर जाते हैं वही
नहीं होता जिनका अपना कोई घर'[4].

'सविताजी' उसे वृद्ध महिला के सवालों को सुलझाते हुए उसे नारी सम्मान उसके अस्मिता को जगाने का प्रयास करते हुए कहती है –

'मैं किसी की औरत नहीं हूं
मैं अपनी औरत हूं
मैं किसी की मार नहीं सहती
और मेरा परमेश्वर कोई नहीं'[5].

यह उत्तर सुनकर महिला के चेहरे पर अचरज भाव है। जैसे वह पूछ रही है यह कैसे संभव है? परंपरा से चली आ रही वीडियो के तहत नई को सब शहनाई होता है चुपचाप। अपमानों को झेलना होगा बार-बार धिकारों को सहना होगा बार-बार, अस्तित्व के करते हुए में दबना होगा बार-बार, इस सब में छुटकारा लेती औरत का जीवन क्या सार्थक होता है? इसलिए वह आगे कहती हैं।

'आह! कैसे कटेगा इस औरत का जीवन!'[6].

अपने अधिकारों के प्रति जागृत नई तथा हक के लिए संघर्ष करके नई समाज से हमेशा अलग तरह जाती है इसी वास्तविकता को 'सविताजी' कविता द्वारा पाठक सम्मुख रख देती है।

सविताजी की 'नमन करुँ छोटी बेटियों को' कविता में भृणहत्या समस्या को उजागर करती है । आज समाज के कई लोग अपनी छोटी सोच क कारण बेटि को बोझ मानकर गर्भ में ही उसे मार डालते है और तथाकथित कूल को चलानेवाले लडके को लाड प्यार से बडा पाला-पोसा जाता है । एक माँ जब बेटि को जन्म देती है तो आनंद की बजय वह उस बेटी के भविष्य का को सोच-सोच चिंतित होती है ।

'सविताजी' के शब्दों में

नमन करुँ उस माँ को
अपनी बेटियों को जनती हुई जो
रोती है – 'अब क्या होगा इनका ईश्वर
इस संसार में'[7]

निराशा से शुरुआत हुई जीवन यात्रा में अनगिनत दु:खद प्रसंगो का सामना बेटियों को करना पडता है, बचपन में हार के कामों मे हाथ बटाना उसकी जिम्मेदारियाँ घोषित की जाती है दहेज कारण उसकी बारात लौट जाती है, शादी के बाद प्रतिव्दारा उसे जिंदा जलाया जाता है या रुप रंग के कारण उसे कौसा जाता है फिर अगर वही बेटी को जन्म देती है तो उसे पापी माना जाता है। इसी दर्दभरी कहानियों को प्रस्तुत करती निम्न कविता देखें –

'नमन करुँ उन छोटी बेटियों को
जो जी लेती हैं जैसे-तैसे मिला यह जीवन
हो लेती है पार कागज की नौकाएँ होते हुए भी डूबती है कई
कई गल भी जाती है बीच में ही
कुछ लगती हैं पार
खरतनाक इन गहरे जलाशयों के'[8].

नारी कहीं पर भी सुरक्षित नहीं है । परिवारों मे हिंसा की शिकार होती है तो बाहर समाज मे विकृत मानसिकता भरे व्यवहारसे। 'याद रखना नीता' नामक कविता में कामयाब पुरुषों की स्त्री के प्रति दृष्टिकोन बेणाकी से रखती है। 'सविताजी' कहती है कामयाद आदमी हमेशा ऐसी स्त्रियों को प्रमिका के रुप में चूनता है जो सुंदर बाहोंवाली हो, खूबसुरत चेहरेवाली हो जो उनका मनोरंजि करे लेकिन पत्नी के रुप में वो उन्ही स्त्रियों का चयन करते है। जो हर वक्त उनसे डरी सहमी रहे। उनकी हाँ में हां मिलाये क्योंकी कामयाब बनकर वह उसी रुढियों का निर्वाह करना चाहता है जिसमें पत्नी की सोच, इच्छाएँ कोई एहमियत नही रखते। कवयित्रि के शब्दों में-

'कामयाब आदमी यूँ ही नहीं बनता कामयाब
उसे आता है अपने पूर्वजों की तरह चुनना
भेद करना
और इस भेद को एक भेद बनोय रखना।[9].

प्रस्तुत संग्रह की अत्य एक कविता हैं 'चित्र में लडकियाँ'। यहाँ सविताजी स्त्रियों की देह की देह दर्शायी जाने वाले चित्र पर गौर करती है। एक चित्र ऐसा है जिसमें स्त्री की नंगी पीठ दर्शक की है और ऐसा प्रतित हो रहा है की वह दिवार से बाहर देख रही हो। अर्थात 'सविता जी' की सोच यहाँ उस भाव को दर्शाती है जिसमें स्त्रियों को केवल मांसल दृष्टि से देखाजाता है जबकि स्त्री इसी पुरुषी मानसिकता भेट दिवार से पेट जाकर खूद को इन्सान के रुप में स्विकार कराने की इंतजार में हो। अर्थात 'यदि कविता की स्थिती स्त्री जैसी है, तो कहना होगा कि जिस

तरह कविता अभी तक अपना संपूर्ण अर्थ प्राप्त नहीं कर सकी है, स्त्री भी अपने जीवन का पूरा अर्थ नहीं पा सकी है। जिस तरह घनी आबादी वाली बस्तियों में मकान की तलाश कठिन है और यदि कोई मकान मिल भी जाए तो उसका मनमुताबिक होना असंभव सा होता है। स्त्री के जीवन में प्यार मिलना कठिन होता है। प्यार के अभाव में वह केवल देह बनकर रह जाती है। स्त्री का जीवन देह से आगे नहीं बढ पाता, वह अर्थहीन बनकर रह जाता है। स्त्री को कमजोर, अबला मानकर उसे ताउम्र इस धोखे में रखा जाता है कि तुम केवल प्रेम करती ही पसंद की ती हो। यहीं तक तुम्हारा दायरा है, यहीं तुम्हारी पेहचान है जिसे लांघकर तुम कभी आगे नहीं जा सकती। यह इस प्रकार उसके दिमाग में बिठाया जाता है। जिससे वह सच्चाई समझ नहीं पाती और जब समझने लगती है तो विलंब हो चूका होता है।

'प्रेम करती हुई स्त्री ही अब भी पसंद की जाती है
छल में भी एक अजीब जादू है जो झूट में नहीं'[11]

'मुझे वह स्त्री पसंद है' शीर्षक की कविता में स्त्री के उस रूप को प्रस्तुत किया गया है, जिसमें वह निर्भीक है। समाज के अन्यायकारक प्राचीन रूढियों को ठेंगा दिखाने के लिए तत्पर है। स्त्री जो अपने स्त्रीत्व को कमजोर न समझे बल्कि उसे अपनी ताकद बनाकर आत्मनिर्भर बने –

'मुझे वह स्त्री पसंद है जो कहती है अपनी बात साफ-साफ
बेझिझक जितना कहना है बस उतना
निर्भीक जो करती है अपने काम
नहीं डरती सोचती हुई आत्मनिर्भरता पर अपने'[12]

अर्थात सविताजी ने यहाँ उन आत्मविश्वासी मानसिकता रखनेवाली स्त्रियों की विचारधारा को बडी ताकद के साथ व्यक्त किया है। इसी श्रंखला में 'चाँद तीर और अनश्वर स्त्री' कविता में नारी मनोदशा के भाव प्रकट करती तथा आशा और निराशा भरे मानसिक स्थिती को दर्शाया गया है। आखिर में स्त्री शक्ति का प्रमाण सिध्द करती प्रस्तुत पंक्तियाँ दृष्टता है –

'मैं स्वयं काम हूँ स्वयं रति
अनश्वर स्त्री
संभव नहीं, नहीं, मृत्यु मेरी।'[13]

'देश के मानचित्र पर' शीर्षक की कविता सांप्रदायिक दंगो के आतंक पर आधारित है जिसमें दंगलकर्ताओं द्वारा नारी पर किये अत्याचार को दर्शाया गया है। एक अन्य कविता में भिन्नभिन्न धर्म में जन्में लडका लडकी पडोसी होकर मुँहबोली आई-बहन के रिश्ते को निभाते हैं। लेकिन सांप्रदायिक दंगो के चलते वहीं भाई अपनी बहन की हत्या करने पर उतारु है। अपनी और कोख में पल रखे बच्चे की जिंदगी की भीख माँगती बहन पाठक को भावविभोर कर देती है।

'मैं वही हूँ नसरीन तुम्हारी मुँह बोली बहन
जब तुम बेहद बीमार थे याद करो
भागकर मैं ही डॉक्टर के पास गयी थी
पहली बार जब तुम नौकरी के लिए निकले थे
मैंने तुम्हारे लिए दुआ माँगी थी
मुझे बक्श दो'
आज भी पहले ही की तरह तुम्हें अपना भाई मानती हुँ।'[14]

सारांशः सविता सिंहजी के प्रस्तुत कविता संग्रह में नारी अस्मिता जगाती अत्याधिक रचनाएँ है। 'क्यों होती हो उदास सुमन,' 'मुक्ति', 'प्रेम करती बेटियाँ', 'शाम में एक कामना', 'प्रेम के बारे में' आदि कविताओं का मूल उद्देश्य यह बताना है कि स्त्री का प्रतिपक्ष 'पुरूष' नहीं है, 'जडीभूत रूढियाँ' है जिनके विरूध्द वे स्वयं भी खडी होती हैं और दूसरों को भी खडा करने की कोशिश करती हैं।

संदर्भ सूची –

1. सुमन राजे, 2012, 'इतिहास में स्त्री', भारतीय ज्ञनपीठ, पृ. 15
2. सविता सिंह, 2012, पचास कविताएँ, नयी सदिके लिए चयन, वाणी प्रकाशन, पृ.20
3. – वहीं – पृ. 25
4. – वहीं – पृ. 25
5. – वहीं – पृ. 22
6. – वहीं – पृ. 23
7. – वहीं – पृ. 27
8. – वहीं – पृ. 28
9. – वहीं – पृ. 19
10. डॉ.प्रमोद कोवप्रत. 2015, समकालीन हिंदी साहित्य और नये विमर्श जवाहर पुस्तकालय, पृ. 187
11. सविता सिंह, 2012 'पचास कविताएँ', नयी सदी के लिए चयन, वाणी प्रकाशन, पृ. 17
12. – वहीं – पृ. 41
13. – वहीं – पृ. 75
14. – वहीं – पृ. 54

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

हिंदी बाल कहानी साहित्य : मनोरंजन एवं व्यक्तित्व विकास

डॉ. अमोल पालकर

प्रोफेसर, स्नातक एवं स्नातकोत्तर हिंदी विभाग
बलभीम महाविद्यालय, बीड

मनोरंजन के क्षेत्र में कथा साहित्य का विशेष महत्व है। मनोरंजन और कहानी एक दूसरे से अभिन्न है। अभिव्यक्ति का विषय, भाषा, शैली और जीवन के सुख-दुख मनुष्य को कहानी के साथ जोड़कर रखते हैं। हिंदी भाषा इस प्रकार की कहानियों से समृद्ध है। हिंदी बालसाहित्य में कई अनगिनत आयाम हैं जो बच्चों को कई बातें सिखाते हैं, सही-गलत फैसले लेने की सूझ-बूझ प्रदान करते हैं। चाहे बालगीत हो, बाल कहानियां या फिर बालनाटक यह सभी आयाम बच्चों को जीवन में आनंद ही नहीं बल्कि जीवन के लिए पोषक तत्व भी देते हैं जिससे बच्चों के व्यक्तित्व का विकास होता है। डॉ. मस्तराम कपूर के अनुसार- बाल साहित्य का सर्वप्रथम और सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य बालकों को स्थायी आनंद देना होना चाहिए-ऐसा आनंद जो उनके जीवन का पोषक तत्व हो। [1] हिंदो बालसाहित्य बच्चों को मनोरंजन के साथ ही ज्ञान प्रदान करता है।

हिंदी बाल साहित्य में बाल कहानियां भी ऐसा ही आयाम है जो बच्चों के जीवन में शिक्षा के साथ ही आनंद भी प्रदान करता है। बाल कहानियों में अगर मनोरंजकता की बात करें तो डॉ. रूपाली दळवी का मंतव्य महत्वपूर्ण है। उनके अनुसार मनोरंजन से भरपूर कहानियां बच्चों को आनंद देने के साथ ही उन्हें समाज को अच्छी-बुरी घटनाओं से परिचित कर सही फेसले लेने की आदत लगाती है। जिससे बच्चे बुराई पर मात कर अच्छाई के रास्ते पर चल सके और उनका विकास हो सके। डॉ. रूपाली दळवी कहती हैं हास्य व्यंग्य कथाएं केवल हँसाती, गुदगुदाती नहीं बल्कि समाज, परिवेश में स्थित बुराईयों का एहसास भी बच्चों को कराती हैं। [3] मनोरंजक बालकहानियां बच्चों को अच्छे-बुरे का एहसास कराकर जीवन को एक दिशा प्रदान करती है।

हिंदी के लगभग कई रचनाकारों ने मनोरंजन से भरपूर ऐसी कहानियां लिखी हैं। जिनमें डॉ. हरिकृष्ण देवसरे का कहानी संग्रह 'हास्यप्रद कहानियां' एक उदाहरण है। इस संग्रह की एक कथा 'मुंशीजी और रावण' मनोरंजन से भरपूर है। मुंशीजी और रावण के बातचीत में यहां पर रावण के सिर की चर्चा होती है, जो आज के जमाने में रावण को दस नहीं बल्कि लाखों सिर हैं, जो भ्रष्टाचार करते हैं। मुंशी जी का कथन सही है कि रावण तो इस युग में पैदा हो गया लेकिन राम का अभी तक पता नहीं। कहानी में मनोरंजन के साथ ही बच्चों को भ्रष्टाचार की अनीति का भी ज्ञान होता है, जो कि समाज विघातक है और हमें इससे दूर रहना चाहिए। [4]

मनोरंजन से भरपूर बाल कहानियों में डॉ. मालती वसंत ने भी बहुतसी कहानियां लिखी हैं, जो बच्चों को मनोरंजन प्रदान करती है। उनके कहानी संग्रह 'चंदा की शरारत' की 'भोला-भालू और चालाक बन्दर' तथा 'मजेदार सिनेमा' मनोरंजक कहनियाँ हैं जो बच्चों को हसातीं तो हैं ही साथ ही उसका मर्म बताकर सही ज्ञान प्रदान करती हैं। 'भोला-भालू और चालाक बन्दर' इस कहानी में भोले भालू को मिला आलू चालाक बंदर अपनी चालाकी से हड़पता है इस पर भालू बहुत ही दुखी होता है। भोला चालू बंदर से बदला लेने की सोचता है। एक दिन बंदर को देखते हुए भालू भूनने की वही क्रिया करता करता है जो पहले की थी परंतु इस बार पोटली में आलू की जगह पत्थर रख दिए थे। चालाक चंदर को पता ही नहीं की यह आलू नहीं है। वह भालू से वही ही कहता है जो पहले कहा था कि नहाकर ही आलू खाने चाहिए। भालू जब नहाने का नाटक कर पेड़ के पीछे छिपता है तब बंदर आलू

ठठाकर दाँत में चबाता है तो उसके सारे दांत गिर पड़ते है। तब भालू उससे कहता है, जिसे तुम आलू समझ रहे हो वे तो पत्थर हैं। तुम्हें सबक सिखाने के लिए ही यह नाटक किया था। [5] बंदर ने भालू से माफी मांगी और सी-सी करता चला गया। इस कहानी से बच्चों को मनोरंजन के साथ ही एक सीख मिलती है कि कभी भी किसी को धोखा नहीं देना चाहिए क्योंकि 'जैसा करोगे वैसा भरोगे'।

'चंदा की शरारत' कहानी संग्रह में और एक कहानी 'मजेदार सिनेमा' इसी प्रकार है। 'मजेदार सिनेमा' यह कहानी चिंटू बंदर तथा डॉ. बंटी भालू की है। डॉ. बंटी भालू जब नदी पर नहाने जाते हैं तो चिन्टू बंदर उनके कपड़े चूरा लेता है। कपड़ों में उसे एक हजार रूपये मिलते है। मेले में खूब मजा करने पर भी पैसे खत्म न होने पर यह सिनेमा देखने के लिए चला जाता है। टिकट निकालने की हड़बड़ी में वह केले के छिलके पर से फिसलता है और धड़ाम से चारों खाने चित्त हो जाता है। सभी जानवर हसते हैं तभी पिंकी लोमड़ी कहती है- वाह अन्दर का सिनेमा तो बाद में देखेंगे, बाहर भी मुफ्त का मजेदार सिनेमा देखने को मिल रहा है। [6] उसे इलाज कराने डॉ. बंटी भालू के पास ही जाना पड़ा और अंत में उसने डॉ. भालू से माफी भी मांग ली। इस कहानी को पढ़ने के बाद बच्चों का मनोरंजन तो होता ही है, साथ ही चोरी करना बुरी बात है यह तात्पर्य भी उनकी समझ में आता है।

आज कल समाज में भ्रष्टाचार का बोलबाला है। भ्रष्टाचार ने समाज पूरा जकड़कर रखा है। हिंदी रचनाकारों ने बाल कहानियों में भी भ्रष्टाचार का वर्णन कर बच्चों को समाज की गतिविधियों से परिचित कराया है। हरिशंकर परसाई की 'सुदामा के चावल' इसी प्रकार की कहानी है, जो बच्चों का मनोरंजन तो करती ही है साथ ही सामाजिक गतिविधियों से भी परिचित कराती है।'सुदामा के चावल' इस कहानी में सुदामा पोटली भर चावल लेकर अपने मित्र कृष्ण से मिलने उसकी नगरी में जाता है तो सिपाही उससे 'खुरचन' अर्थात् रिश्वत मांगते हैं। पोटली के चावल के बारे पूछताछ करने पर उनसे पीछा छुड़ाने के लिए सुदामा से उन्हें इस पोटली के चावल मंत्रोच्चरित हैं और इससे मन वांछित फल, धन-प्राप्ति, स्वास्थ्य जैसी कई बातें प्राप्त होती है ऐसा कहता है। तब सैनिक ही पूरे चावल खा जाते हैं, कृष्ण के लिए तो कुछ भी नहीं रहता। यह पूरी बात सुदामा द्वारा कृष्ण को बताने पर कृष्ण कहता है- बोलो, इस रहस्य को गुप्त रखने का क्या लोगे? यहां इसी तरह से देकर मुंह बन्द कर दिया जाता है। [7] सुदामा ने उससे एक लाख स्वर्ण-मुद्रा, एक भवन और एक ग्राम लेकर अपना ईमान बेच दिया। गाँव लौटकर सुदामा ने दो मुष्ठी चावल और दो लोकवाली बात लोगों में फैला दी। इस कहानी से बच्चों को मनोरंजन के साथ ही समाज में व्याप्त वर्तमान युग के भ्रष्टाचार का पता चलता है। साथ ही आधुनिक युग के कृष्ण-सुदामा की और संकेत भी प्राप्त होता है।

हिंदी बाल कहानियां बच्चों को मनोरंजन प्रदान करने के साथ ही अच्छी-बुरी बातों का सही ज्ञान भी देती हैं। जिससे बच्चों का भविष्य सही दिशा की ओर अग्रेसर होता है। क्षमा शर्मा की 'पप्पू चला ढूँढने शेर' और 'जादूगर' इसी प्रकार की कहानियां हैं जो बच्चों को अच्छे और बुरे की पहचान कराती हैं। इस कहानी में कुलशील नामक जादूगर लोगों का भला करनेवाला एक अच्छा जादूगर है परंतु दूसरे जादूगरों ने राजा के कान भरकर कुलशील को राज्य से बाहर निकाला है। कुलशील दूसरे राज्य में जाता है जहाँ पर वह गोरे राजा के जुल्मों से जूझती जनता को अपनी चतुराई से मुक्त करता है। कहानी मनोरंजकता से पाठकों को अपनी ओर आकर्षित करती है। जैसे कि कुलशील गोरे राजा के सैनिकों को कहता है कि अरे, ये सारे पेड़ कैसे सूख गए? जरूर तुम्हारे राजा पर कोई विपत्ति आनेवाली है। इस कहानी से बच्चों को अच्छे और बुरे की पहचान होती है और हमेशा दूसरों का अच्छा सोचने तथा सच्चाई का साथ देने की शिक्षा प्राप्त होती है।

हिंदी बाल कहानी साहित्य में कई लेखकों ने अपना योगदान दिया है। इसमें हिंदी साहित्य सम्राट प्रेमचंद अग्रसर हैं। प्रेमचंद ने बाल साहित्य की कई विधाओं में लेखन किया है। बहुत सी कहानियाँ भी लिखी जिसमें से एक मनोरंजनप्रधान कहानी है। उनकी 'गुब्बारे पर चीता' इसी प्रकार की कहानी है, जो बच्चों को खूब हंसाती है। इस कहानी में लड़का सरकस देखने जाता है। अचानक चीता पिंजड़े से निकलकर इधर-उधर भागने लगता है, सब उसे देख डरकर भागने लगते है तभी वहां पर आया हुआ एक गुब्बारे वाला लोगों को कहता है, आओ, चले आओ, चार आने में आसमान की सैर करों। [9] वह भी चीते को देख डर के मारे भाग जाता है। उससे गुब्बारे की रस्सी खुल जाती है। तभी बलदेव गुब्बारे पर चढ़ जाता है पीछे-पोछे चीता भी गुब्बारे पर चढ़ता है। चीता और बलदेव दोनों आसमान में उड़ने लगते है लेकिन चीता डर दर के मारे नीचे गिरकर मर जाता है और बलदेव अपनी तरकीब लगाकर गुब्बारे की हवा निकाल कर दरियां में कूद जाता है और तैरकर बाहर निकल आता है। सचमुच गुब्बारे ने बलदेव और चीते को आसमान की सैर कराई। कहानी के द्वारा बच्चों का मनोरंजन तो होता ही है साथ ही उन्हें यह शिक्षा भी मिलती है कि संकट के समय न डरते हुए धैर्य से काम लिया जाय तो हर मुश्किल आसान हो जाती है।

हिंदो बाल मनोरंजनात्मक कहानियों बच्चों को दुःख से बाहर निकालकर चिंतामुक्त जीवन जीने की प्रेरणा देती है। इतना ही नहीं तो मनोरंजन के माध्यम से श्रम का महत्व बताकर आलस नाम के शत्रू को बच्चों के मन से निकालने का काम भी करती है। इस संदर्भ में उषा महाजन की कहानी 'गुठलियों का कमाल' अति महत्वपूर्ण है। प्रस्तुत कहानी पंजाब के एक गाँव भोलापट्टी में रहनेवाले सरदारी लाल नामक किसान की है। जिसके पांचो बेटे एक से बढ़कर एक हट्टे-कट्टे परंतु आलसी थे। सरदारी लाल अकेला ही मेहनत करता। वह अपनी परेशानी अपने मित्र रामभज को बताता है तो रामभज जामुनों के गुठलियों की ऐसी तरकीब लगाता है कि उसके पांचो बेटे खेत में पसीना आने तक काम करने के लिए दौड़ते हैं और एक-दूसरे से कहते हैं, भैया, जरा और जोर से, ताकि खूब पसीना निकले, जितना पसीना बहाओगे, जामुनों की गुठलियों उतनी ही जल्दी पसीना बन पिघल-पिघलकर हमारे शरीर से बाहर निकलेंगी। वरना तो अगर पेट में कही पेड़ उग आए, तो... । [10] इसप्रकार इस कहानी से बच्चों का मनोरंजन तो होता ही है साथ ही आलस त्यागकर श्रम करने को शिक्षा भी प्राप्त होती है।

मनोरंजनपूर्ण बाल कहानिकारों में डॉ. दिनेश चमोला भी उल्लेखनीय हैं। इन्होंने बाल साहित्य की विभिन्न विधाओं पर लेखन किया है। बाल-कहानियों में उन्होंने मनोवैज्ञानिक कहानियों लिखी हैं। साथ ही मनोरंजन से भरपूर, लोक कल्याणकारी तथा नीति कथाएं लिखी हैं। इनकी कहानियों के ज्यादातर पात्र पशु-पक्षी है। जिनके माध्यम से इन्होंने बच्चों को सच्चाई तथा संगठन की शिक्षा दी है। इन्होंने मनोरंजन से भरपूर कहानियां भी लिखी जिनमें 'नटखट लोमड़ी' एक है। कहानी में दिखाया गया है कि जंगल में हर साल एक प्रतियोगिता का आयोजन किया जाता है। जिसके दो विजेता रहते हैं, एक वनसुन्दरी तथा दूसरा सुंदर जीव। इस प्रतियोगिता में हर साल नीलू नामक सफेद भालू ही सुंदर जीव का किताब जीतता है। एक दिन बुढ़ापे के कारण उसकी मृत्यू होती है उसकी खाल को संग्रहालय में रखा जाता है। भालू के घर के पास हो पूसी लोमड़ी रहती थी। इस साल प्रतियोगिता में वह भाग लेती है और जितने के लिए संग्रहालय से भालू की खाल चुराकर पहनती है। सब आश्चर्यचकित होते है कि भालू जीवित कैसे हो गया? अंत में नीतू मोरनी वनसुन्दरी का तथा भालू की खाल में छिपी पूसी सुन्दर जीव का किताब जीतती है। इनाम लेते वक्त वह कहती है- मान्य सभासदों! आज सुन्दरता की परख दिखावे से होती है, गुण से नहीं। आप सभी जानते हैं कि सफेद भालू महीनों पहले मर गया था परन्तु फिर भी उसके नाम पर आज मुझे सन्मानित किया गया। मैं सफेद भालू नहीं, मैं तो पूसी हूँ। [11] ऐसा कहकर उसने खाल उतार दी। सभी हैरान होकर नटखट लोमड़ी के कारनामों को देखते रहे। इस प्रकार यहाँ मनोरंजन के साथ ही बच्चों को यह ज्ञान मिलता है कि हमेशा आदमी की पहचान सूरत से नहीं बल्कि सीरत से करनी चाहिए।

बाल कहानियां शिक्षा एवं ज्ञान का ऐसा भंडार है जो सभी को अच्छाई तथा बुराई का फर्क सीखाती है। मनोरंजक कहानियां बच्चों को हंसाती तो है साथ ही असत्य पर व्यंग्य भी करती है। शिवप्रसाद सिंह की एक कहानी 'एक थे मुल्ला नसरूदीन' इसी प्रकार की कहानी है। मुल्ला नसरूद्दीन एक विद्वान पुरुष थे जो लोगों को अपनी बातों और व्यवहार से खुश करते थे साथ ही बुराईयों पर व्यंग्य भी करते थे। जैसे कि एक बार उनके पड़ोसी के यहां मेहनमान आनेवाले थे तो उसने नसरूद्दीन से कुछ बर्तन उधार लिए लेकिन वापस लौटाते वक्त एक ज्यादा बर्तन उसमें आ गया। मुल्ला नसरूद्दीन ने लेने से इंकार करने पर पड़ोसी ने कहा- बात दरअसल यह है कि जब आपके बर्तन मेरे यहाँ रहे, तो यह उन्हीं की कोख से पैदा हुआ। लिहाजा आपके बर्तनों की औलाद भी आपको लौटा रहा हूँ। [12] यह सुनकर मुल्ला नसरुद्दीन ने कोई जवाब नहीं दिया। कुछ दिनों के बाद उनके यहाँ मेहमान आनेवाले थे तो उन्होंने भी पड़ोसी से बर्तन उधार लिए परंतु वह वापस नहीं किए, पड़ोसी के मांगने पर उन्होंने कहा बर्तनों की मौत हो गई । पड़ोसी के मना करने पर उन्होंने कहा – हां भाई, होनी को कौन टाल सकता है? जब बर्तनों के औलाद हो सकती है, तो एक दिन उनकी मौत तो होनी ही थी [13] इसप्रकार मुल्ला नसरूद्दीन की कई कहानियां मनोरंजन से भरपूर हैं, जो बच्चों का मनोरंजन करने के साथ ही दुख-दर्द भुलाने में उन्हें मदत करती हैं।

इस प्रकार हिंदी बाल कहानियां मनोरंजकता प्रधान हैं जो बच्चों तथा पाठकों का मनोरंजन करती है। इतना ही नहीं अपितु पाठकों को अपने दुख-दर्द भुलाने में मदद करती है। मनोरंजन से हम हसतें हैं और हास्य मानसिक स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण होता है। इतना ही नहीं तो मनोरंजकता के साथ-साथ वह व्यवहारिकता एवं प्रसंगावधानता की सीख भी देती हैं। साथ ही भ्रष्टाचार के प्रति हमें जागृत कर अच्छी-बुरी बातों का ज्ञान कराती हैं और एक अच्छा नागरिक बनने की प्रेरणा भी देती हैं।

संदर्भ सूची :

1. मस्तराम कपूर, हिंदी बाल-साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली,2015, पृ.84
2. डॉ. रूपाली दळवी, हिंदी के स्वातंत्र्योत्तर बालकथा साहित्य का अनुशीलन, अनामिका प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 99
3. वही, पृ.99
4. डॉ. हरिकृष्ण देवसरे, हास्यप्रद कहानियां, किताब घर, नई दिल्ली, पृ. 42
5. डॉ. मालती बसंत, चंदा की शरारत, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2001, पृ.6
6. वही, पृ.15
7. हरिशंकर परसाई, सुदामा के चावल, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2012, पृ.16
8. क्षमा शर्मा, पप्पू चला ढूँढने शेर, वैभवशाली प्रकाशन, दिल्ली, 2011, पृ.21
9. प्रेमचंद, बाल साहित्य समय, पृ.21
10. उषा महाजन, गुठलियों का कमाल, शब्द कलश प्रकाशन,दिल्ली, पृ.71
11. डॉ. दिनेश चमोला, स्वस्तिक प्रकाशन, दिल्ली, 2012, श्रेष्ठ बाल कहानियाँ, पृ.202
12. शिवप्रसाद सिंह, एक थे मुल्ला नसरूद्दीन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2011, पृ. 12
13. वही, 13

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

हिंदी साहित्य मे नारी अस्मिता

शफीक लतीफ चौधरी

प्रा., छत्रपति शिवाजी महाविद्यालय.
ता.कळंब जिल्हा-धाराशिव
हिंदी विभाग

हर सदियों में किसी न किसी विषय को लेकर विमर्श होता आ रहा है।इसी तरह 20वीं सदी विमर्शों की सादियों का कालखंड रहा है।20 वी सदी में समाज के सभी वंचित वर्गों ने अपने अधिकार और अपनी अस्मिता की पहचान के लिए निर्णायक लड़ाई शुरू की है |यह लड़ाई किसी के खिलाफ नहीं बल्कि अपने पक्ष में लड़ी जा रही है |इसके पीछे एक अच्छे विचारों का दर्शन कार्य कर रहा है , हिंदी साहित्य के दलित ,नारी और आदिवासी इन तीन वर्ग में समाज के इन वंचित वर्गों ने कहानी ,कविता,आत्मकथा ,उपन्यास एवं अन्य विधाओं के माध्यम से साहित्य जगत में मुख्य धारा का लक्ष्य अपनी ओर आकर्षित किया । दलित नारी और आदिवासी इन तीनों वर्गों में शोषित समाज के हक के लिए अधिक मात्रा में लेखन कार्य किया जा रहा है |

अस्मितामुलक यह अवधारणा अपने नाम रूप में प्रसिद्ध होने से पहले निरंतर परिवर्तित होती आ रही है |अस्मिता का प्रश्न साहित्य और समाज में अपनी मूल जड़ों की प्रशंसा नहीं है और नहीं भावना उद्घोषणा है |उत्तर आधुनिक काल में आलोचना का एक नया दायरा विकसित हुआ जो समानता स्वतंत्रता अधिकार का संवाहक बना |समकालीन हिंदी साहित्य में अस्मितामुलक विमर्श संबंधी अवधारणा एवं सिद्धांतों पर विचार करने से पूर्व 'अस्मिता ' शब्द के अर्थ एवं उसके विविध आयामों को जानना आवश्यक है ।हिंदी शब्दकोषों के अनुसार 'अस्मिता ' का अर्थ आत्मश्लाघा, अहंकार ,अपनी सत्ता का भाव आपा इत्यादि है |इसके अलावा सरल भाषा में देखा जाए तो अस्मिता का सीधा संबंध 'पहचान' से है | राष्ट्र , जाती, नाम, क्षेत्र, धर्म, वंश , वर्ग ,लिंग व व्यवसाय इ.'पहचान' के रूप में हो सकते इसलिए 'अस्मिता' व्यक्तिगत और सामूहिक हो सकती है |साहित्यकार राजेंद्र यादव कहते हैं - "अस्मिता जितनी मेरी है, उतनी ही मेरे परिवेश और परंपरा की भी | उसमें वर्ग, वर्ण,क्षेत्र, धर्म लिंग,परंपराएँ सभी कुछ घुसे और घुले-मिले हुए हैं | " मानसिक संरचना के रूप में भी अस्मिता को देखा जाता है | अस्मिता-बोध की तभी आवश्यकता पड़ती है ,जब हमारी अस्मिता पर खतरा हो | किसी व्यक्ति या समुदाय के जातीय धर्म, कुल ,वंश,राष्ट्र ,भाषा, लिंग इन सभी अस्मिता को मिटाने की कोशिश की जाती है तो वह व्यक्ति या समुदाय इन अस्मिताओं को बचाने की पूरी कोशिश करता है | यह प्रयास साहित्य विचारधारा , आंदोलन , कला, इतिहास लेखन इन माध्यमों से अभिव्यक्त करता है । अभय कुमार दुबे लिखते हैं - "यह (अस्मिता) एक ऐसा दायरा है जिसके तहत व्यक्ति और समुदाय यह बताते हैं कि वे खुद को क्या समझते हैं | 'अस्मिता' का यह दायरा अपने आप में एक बौद्धिक ,ऐतिहासिक और मनोवैज्ञानिक संरचना का रूप ले लेता है , जिसकी रक्षा करने के लिए व्यक्ति और समुदाय किसी भी सीमा तक जा सकता है|"अस्मिता प्राप्ति के लिए किए गए प्रयास व्यक्ति और समुदाय को जागरूक बनाते हैं और यह जागरूकता उन्हें दिशाहीन होने से बचाती है | यह एक सकारात्मक दृष्टिकोण है |अस्मिता के बारे में विचार करते समय इसके एक किनार को अनदेखा नहीं किया जा सकता | विद्वानों का इस विषय के संदर्भ में मानना है जब तक अस्मिता का उपयोग दमन,उत्पीड़न,शोषण एवं अन्य तरह के भेद के विरुद्ध संघर्ष में हो रहा है , वहाँ अस्मिता बोध का होना सकारात्मक पक्ष कहा जाएगा |अर्थात अस्मितामूलक का संबंध दमन से नहीं है वंचितों की मुक्ति से है |

अस्मितामूलक हिंदी साहित्य में स्त्री अपने जीवन के अनेक स्तरों पर अपनी पहचान के लिए अनेक संघर्षों को झेलती आ रही है | इस संघर्ष में अपनी पहचान तथा अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए वह सामंती विधानों ,हो सामाजिक रूढीयों और परंपराओं से भी संघर्ष करती रही है | शिक्षा का अभाव तथा परिवार में भेदभाव के कारण हीनता की भावना उनके स्वभाव का स्थायी भाव बन जाता है | इस वजह से वह खुद को मानसिक रूप से कमजोर समझने लगती है | शिक्षा और आर्थिक बातों से स्वावलंबी होने पर भी पुरुष की पुरुष प्रधान संस्कृति की शिकार होती है | वर्तमान में भी स्त्री अनेक समस्याओं से जूझ रही है केवल सामाजिक स्तर पर नहीं मानसिक स्तर पर भी समस्याओं का सामना कर रही है - "स्त्री जीवन की जटिलताओं और वर्तमान व्यवस्था की त्रासद यंत्रणाओं के बीच जीते हुए अपने अजनबीपन, एकाकीपन की पराकाष्ठा के कारण पारिवारिक कलह एंव विघटन के कारण शोषण,घृणा,उपेक्षा व तिरस्कार के कारण वर्गगत विषमता व पीढ़ियों के अंतर से उपजे टकराव के कारण।"इन कारणों से मानसिक रूप से स्त्री ग्रस्त होती है,लेकिन वह इससे दूर न भागकर इन परिस्थितियों से संघर्ष करती है |और अपनी अस्मिता को ढूंढने का प्रयास करती है |भारतीय स्त्री हर युग में चेतना संपन्न रही है और समाज में अपने अस्तित्व को प्रमाणित भी करती दिखाई दे रही है इस तरह स्त्री अपनी पहचान बनाने में सफल हो रही है ।

यह सत्य है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है |जिसमें समाज का परिवर्तित रूप चित्रित होता है | इसलिए स्त्री चेतना और उसकी अस्तित्व के संघर्ष को जानने और समझने के लिए साहित्य से अच्छा विकल्प और कोई नहीं है | साहित्य के माध्यम से स्त्री चेतना एवं संघर्ष के इतिहास को साहित्यकारों ने सामाजिक,आर्थिक, नैतिक तथा बौद्धिक स्तरों को अपने सशक्त और सजीव पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया है | महादेवी वर्मा ने समाज के बंधनों में जकड़ी स्त्री की दयनीय स्थिति को अपने साहित्य में चित्रित कर स्त्री को उन स्थितियों से बाहर निकालने के मार्ग दिखाएं है |इस बारे में स्वयं महादेवी वर्मा लिखती है -"इस संसार को नारी के मातृत्व,वात्सल्य और ममत्व की आवश्यकता है तथा पुरुष से इनकी रक्षा के लिए उसे स्वयं जागरूक होना होगा |इतना शक्ति शाली होना होगा कि वह अपने व्यक्तित्व पर लगने वाले लांछनो और अन्य प्रहारों से ऊपर उठ सके | नारी द्वारा अपनी शक्ति को पहचानना न केवल स्वयं के लिए बल्कि पूरी सृष्टि के स्वरूप पोषण के लिए भी परम आवश्यक है।" स्त्री आज समाज के बंधन या दबाव में ऐसा कोई कदम नहीं उठाती जिससे उसके स्वाभिमान और उसके स्वत्व को ठेंस पहुंचे | इस ज्वलंत उदाहरण को महादेवी वर्मा के 'विधवा भक्तिन' में दिखाई देता है जो आपने अस्मिता और उसके स्वाभिमान की रक्षा के लिए पुनर्विवाह करने के दबाव को यह कहकर नकारती है -"हम कुकरी ,बिलारी न होय, हमार मन पुसाई तौं हम दूसरे के जाब , नाहिं ते तुम्हार बच्चे की छाती पै हो रहा भूंजब और राज करब, समुझै रहौ।"इस तरह महादेवी वर्मा के साहित्य में स्त्रियां अपने अस्मिता के लिए संघर्ष करती दिखाई देती है | सामाजिक समस्याओं और शोषण के विभिन्न रूपों में स्त्री चेतना एवं अस्मिता के संघर्ष की स्थिति का चित्रण प्रेमचंद ने अपने यथार्थवादी साहित्य में किया है | प्रेमचंद के गोदान इस उपन्यास की प्रमुख स्त्री पात्र धनिया का चरित्र अस्मित-बोध स्त्री का मुख्य रूप से प्रतिनिधित्व करती है । पुरानी रूढ़ियों से आझादी का साहसिक प्रयास प्रेमचंद ने अपने साहित्य में किया है | व्यवस्था के प्रति विद्रोह की आग धनिया में दिखाई पड़ती है । धनिया लगान लेने वाले जमींदारों की मिन्नते करना जानती है और नहीं उनके तलवों को सहलाने में उसका विश्वास है | धनिया अशिक्षित होने के बावजूद समाज की गलत मान्यताओं और रूढ़ियों को तोड़ने में सक्षम है ।धनिया बिना डरे जुर्माने के खिलाफ रहती है -"पंचों गरीब को सताकर सुख ना पाओंगे |मुझसे इतना बड़ा जरीवाना इसलिए लिया जा रहा है कि मैं अपनी बहू को घर में क्यों रखा?क्यों मैं उसे घर से निकाल कर सड़क की भिखारिन नहीं बना दिया?यही न्याय है ऐं?"आर्थिक रूप से परिपूर्ण स्वावलंबी स्त्री असफल संबंधों और संस्कारों

की मजबूत जकड़न के कारण या अन्य कारण अपने आपको स्वाहा नहीं करती | उससे छुटकारा पाने के लिए संघर्ष करती रहती है | इस बारे में उषा यादव 'कापुरुष' में गीतिका अपने पति से सामंजस्य न होने और वैवाहिक जिंदगी से खुश ना होकर अपने पति से कहती है - "इतने दिनों तुमने मुझे पत्नी रूप में ढोया उसका शुक्रिया।अब हमारी तुम्हारी मुलाकात कचहरी में होगी।" इस तरह से वर्तमान स्त्री आरोपित और निरर्थक संबंधो को अपने आत्मविश्वास के बल पर तोड़ती हुई दिखाई दे रही है ।इसी तरह अस्मिता मुलक हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श पर बहुत कार्य हुआ है जैसे 'एक इंच मुस्कान'की रंजना 'अंधेरे बंद कमरे में 'की नीलिमा 'भूले -बिसरे चित्र' की विद्या 'एक जमीन अपनी ' की अंकिता इसी तरह 'मुझे चांद चाहिए' की वर्षा नासिरा शर्मा की 'शाल्मली'और 'ठीकरे कि मंगनी ' एवं मृदुला गर्ग का उपन्यास 'कठगुलाब ' इस तरह के साहित्य में स्त्री अपने घर के परंपरागत बेडियो को तोड़कर अपने जीवन यापन के लिए संघर्ष करते हुए समाज में अपना स्थान हासिल करने की कोशिश करती हुई दिखाई देती है।

वर्तमान काल की स्त्री चेतना संपन्न है | वह परंपरागत रूप से अलग स्वयं के व्यक्तित्व के लिए जागृत और विकास की आकांक्षाओं को संजोने वाली स्त्री के रूप में उभर कर सामने आती है| रूढ़ियों से घिरी हुई ,पारंपरिक,सामाजिक तथा धार्मिक नियमों की मान्यताओं में बंधी स्त्री का रोता हुआ चेहरा,अपने नसीब को कोसने वाला रूप समाज में नहीं दिखाई देता है | वर्तमान स्त्री खुद के अस्तित्व को सँवारते हुए केवल दूसरों के लिए ही नहीं अपने लिए भी जीने वाली स्त्री दिखाई पड़ती है |आज की स्त्री अपने अस्मिता के लिए हर क्षेत्र में एवं समाज व्यवस्था और मानसिकता से लड़ने के लिए अपने मन की इच्छा शक्ति को दृढ करने की ठान ली है।

संदर्भ

1) कृष्ण दत्त पालीवाल : समकालीन साहित्य विमर्श परमेश्वरी प्रकाशन ,दिल्ली 2018 पृष्ठ संख्या 103

2) हंस ,जून 2009 ,पृष्ठ संख्या 09

3) अभय कुमार दुबे :भारत का भूमंडलीकरण , वाणी प्रकाशन नई , दिल्ली पृष्ठ संख्या 455

4) डॉ.राहुल मिश्र, हिंदी कथा साहित्य आठवें दशक के बाद, पृष्ठ संख्या 122

5) सं.फरहत परवीन:आजकल मार्च 2014 पृष्ठ 58

6) प्रतिभा जैन एवं संगीता शर्मा :भारतीय स्त्री सांस्कृतिक संदर्भ,पृष्ठ 283

7) निर्मल वर्मा एवं कमल किशोर गोयनका : प्रेमचंद का रचना संचयन,पृष्ठ 392

8) वेद प्रकाश अमिताभ: हिंदी कहानी का समकालीन परिदृश्य,पृष्ठ 52

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

हिंदी स्त्री कहानीकारों के कहानियों का स्त्री विमर्श दृष्टि में अध्ययन

डॉ. साईफूल इस्लाम
सहकारी प्राध्यापक
हिंदी विभाग जूरिया महाविद्यालय
नगांव, असम

संक्षिप्तकर: आजादी के पहले और आजादी के बाद स्त्री अधिकारों को ही दृष्टि से देखा गया है। लेकिन भारतीय समाज व्यवस्था इतिहास और वैदिक काल में स्त्री की स्थिति देखने से स्पष्ट होता है कि यह कल स्त्रियों के उत्थान एवं पराकाष्ठ का कल था। सन 1970 इसी से स्त्री विमर्श तीव्र गति से बढ़ती हुई स्त्री के सुख गीत के जगह विद्रोह तथा विचारों के समावेश दिखाई देते हैं। विशेष कर स्त्री कहानीकारों के बीच में स्त्री के विषय से संबंधित कोई भी समस्या खोल आम चर्चा का विषय बन गया है। वह चाहे शारीरिक हो या मानसिक हो। इनमें से हम बुरे नहीं थे मनिका मोहिनी उसका विद्रोह मृदुला गर्ग उसका मन सिम्मी हर्षिता सफेद कुआं मंजुल भगत तीसरी हथेली राजी सेठ आदि प्रमुख है। वर्तमान युग में स्त्री विमर्श की अवधारणा एक महत्वपूर्ण विषय बन गई है। समाज शास्त्रियों ने विश्लेषण करने पर स्त्री वादी विचारों को पाया कि पितृ सत्ता ही कारण है जी जिसने समाज मिस्रियों की अधीनता को स्थापित करती हुई उसे दुनिया दर्ज का नागरिक बना दिया और इससे छुटकारा पाने के लिए आज स्त्री विमर्श पर चर्चा का विषय है।

बीजशब्द: समकालीन हिंदी कहानी और स्त्री वादी कहानीकार स्त्री विमर्श।

उद्देश्य: समसामयिक हिंदी स्त्री कहानीकार स्त्री विमर्श में स्त्री की अधिवर और सम्मान तथा पुरुष के बराबर कंधे से कंधे मिलाकर एक साथ चलने का प्रयास।

प्रविधि स्वाधीनतौर कल के तथा 1970 इसी के बाद हिंदी कहानी के स्त्री कहानीकारों के कहानी जो स्त्री को एक जागरूकता सरस्वती के रूप में दिखाई गई है वह मध्य नजर रखते हुए यह शोध आलेख लिखे गए हैं।

मूल शोध पत्र स्त्री शब्द के लिए संस्कृत में अनेक शब्द व्यवहार किए गए हैं। लेकिन इनमें से महिला शब्द उत्तम माना जाता है। जिसका अर्थ है महान बहुत बड़ी ताकत वाली आदि। स्त्री शब्द संस्कृत के स्रोत धातु से बना है। स्त्री का अर्थ है विस्तार करना फैलने। विमर्श का अर्थ है बातचीत विचार विवेचन परीक्षण समीक्षा तर्क आदि। हिंदी साहित्य के कहानियों में स्त्री विमर्श का विकास 20वीं साड़ी के उत्तरार्ध में नजर आता है। सन 1970 इसी से स्त्री विमर्श तीव्र गति से बढ़ने लगे। आज का स्त्री विमर्श तलाक बहुआयामी और प्राउड बन गए हैं। श्री चित्रण शोक गीत ना होकर संवेदना की तीव्रता शिक्षणता विद्रोह तथा विचारों का घनी कारण का संबंध जोड़ गया है।समकालीन हिंदी कहानी जीवन के अंतर विरोधी तनाव और विरोधाभासों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति प्रस्तुत कर रही है पूर्ण ग्राम मृदुला गर्ग की उसका विद्रोह सिम्मी हर्षिता की उसकी मां मनिका मोहिनी की हम बुरे नहीं थे और राजेश सेठ की तीसरी हथेली आदि पर दूर की ऐसी कहानी है जिनकी समकालीनता एक जीवित वास्तविकता का लगाव है।

समकालीन कहानी में स्त्री मुक्ति का मार्ग खोजती हुई आधुनिक स्त्री के जीवन के विविध पहलुओं को परत दर परत बड़ी ताकत के साथ उजागर किया है। चाहे वह स्त्री के यौन संबंध को लेकर डे सुचिता का प्रश्न हो या

फिर अपने व्यक्तित्व की स्वतंत्रता सत्ता को स्थापित करने की झटपटहट हो। पुरुष के हवस का शिकार होती हुई आधुनिक स्त्री का प्रतिक्रिया वाली आक्रोश हो पूर्ण ग्राम फिर विवाह हेक्टर या विवाह पूर्व विभिन्न पुरुष से दहिक संबंध स्थापित करने की बात हो या फिर दम भी या स्वर्णाचारी पति से संबंध विच्छेद करने का प्रश्न हो आज की स्त्री बिना किसी अपराध बोध के अपने आप को अभिव्यक्त कर रही है। समकालीन लेखन के इन्हीं संबंधों को वाणी दे रहा है। समकालीन महिला कहानीकारों से देवड़ी रचनाएं ठोक के भाव लिखवाई जा रही है। हड़ताल यह है कि महिला लेखन का देहवासीविंग आज विचारवादी विंग को पीट रहा है। स्त्री विमर्श के विचारणीय मुद्दे मुद्दे अनेक है पूर्ण ग्रह अतः लेखिकाओं को चाहिए कि वहप्रिया जीत व्यवहार के दुराग्रह को छोड़ दें बाजार की निविदा पर अपनी रचनाओं की पैकेजिंग बंद कर दे और पीड़ा को अपना पेशाब बनाएं।

ममता कालिया का नाम अपनी एक अलग पहचान है। समकालीन समाज में महिलाओं की स्थिति पर लख स्तंभ आदि भी विपुल मात्रा में लिखे हैं। नई मनोविज्ञान सामाजिक विसंगतियों का बोध उनसे उबर की बेचैनी उनके लेख की पहचान है। समकालीन नारीवादी चिंतक आशा रानी गोरा लिखती है कि सृष्टि रचना में स्त्री का योगदान पुरुष के समान योगदान से कहीं ज्यादा है वह मानवी की जन्मदातरी है फिर संसार के विकास में उसका योगदान क्यों नगर ने रहा ?हो, या फिर दंभी या च्वेच्छाचारी पति से सम्बंध विच्छेद करने का प्रश्न हो, आज की स्त्री विना किसी अपराध बोध के अपने आप को अभिव्यक्त कर रही है। समकालीन लेखन के इन्हीं संथों को वाणी दे रहा है। समकालीन महिला कहानीकारों से देहवादी रजनाएँ थोक के भाव लिखवायी जा रही है। हाताल यह है कि महिला लेखन का देहवासी विंग आज विचारवादी विंग को पीट रहा है। स्त्री-विमर्श के विचारणीय मुद-रुदे अनेक है। अतः लेखिकाओं को चाहिए कि ये प्रायीजित देहवाद के दुराग्राह को छोड़ दें, बाजार की लिविदा पर अपनी रचनाओं की पैकेजिंग बंद कर दें और पीड़ा को अपना पेशा न बनाए।

ममता कालिया का नाम अपनी एक अलग पहचान है। समकालीन समाज में महिलाओं की स्थिति पर लेख, स्तम्भ आदि भी विपुल मात्रा में लिखे है। नारी-मनोविज्ञान, सामाजिक विसंगतियों का योध, उनसे उबरने की बेचैनी इनके लेख की पहचान है। समकालीन नारीवादी चिन्तक आशारानी कोरा लिखती हैं कि, सृष्टि रचना में स्त्री का योगदान पुरुष के समान योगदान से कहीं ज्यादा है, वह मानव की जन्मदात्री है, फिर संसार के विकास में उसका योगदान क्यों नगण्य रहा ? आज भी समानता की भागीदारी केवल विधान के कागजों पर है। व्यवहार में इस आधी आवादी का स्थान अल्पसंख्यकों के समान ही है। ऐसा क्यों? इसी वजह से सवाल उठते हैं कि क्या वह अल्पसंख्यक है ? क्या वह दुसरे दर्जे की इन्सान है ? क्या वह केवल पुरुष-पति का मन बहलाव करने की वस्तु है ? उसका अपना निजी अस्तित्व अपनी निजी पहचान कहाँ है ? निजी तौर पर विश्व हित में उसकी अन्य भुमिका क्यों नहीं रही? ये बुनियादी सवाल आज विकसित, अविकसित विकासशील सभी देशों में समान रुप से उठाये जा रहे हैं।

माँ की भुमिका के रुप में स्त्री का स्थान श्रेष्ठ होने के बाद भी हमेशा उसे गौण स्थान ही मिलती रही है। उसे पुरुष से हर तरह से हीन समझ गया। नारी की पराधीनता एवं वेदना की कहानी हुए नारीवादी चिन्तक का कहना के कि, नारी हमारी समाज का ऐसा प्राणी है जिसके पास जीवन से मृत्यु तक अपना घर नहीं होता है। पैदा होती है तो पिता की छत के नीचे एक परावी अमानत की भाँति या अतिथि के रुप में दिन गुजारती है, युवा होती है तो पति के घर एक सेविका की तरह जीवन व्यतीत करती है। बूढ़ी होती है तो बेटे की छत के नीचे एक अनुपयोगी वस्तु की तरह मौत की घड़ियाँ गिनती रहती है। पिता का घर, पति का घर और अन्त में बेटे का घर

ये तीन घर जहाँ जीवन के पहले क्षण में उसकी आँख खुली और अंतिम क्षण में उसने प्राण त्याग दिये, कोई भी उसका अपना नहीं था।

नारी का अपना अलग अस्तित्व हो, उपयोगिता हो, स्वाभिमान हो और सार्थकता हो जौ पुरुष का मार्ग करनेवाला हो। पुरुष का सहयोगी हो- घर बाहर सभी क्षेत्रों में, संसार और समाज के वारे में दोनों की समान भागीदारी हो। नारी-पुरुष के सम्बंधों का आदर मानवीय प्रेम, सम्मान और सहकार हो। यह आदान-प्रदान सहज और स्वस्थ हो। इससे समाज को अनेक विकृतियों से बचाया जा सकता है। इस प्रकार स्त्री स्वतंत्रता की सबसे अनिवार्य शर्त स्त्री शिक्षा एवं आर्थिक स्वालम्बन है। जिससे स्त्री, समाज में अपना स्थान निर्धारित कर सकती है और अपने दायित्व से ऊपर उठकर मानवी बन सकती है।स्त्री विमर्श की दृष्टि से आधुनिक काल की धारणाएँ अत्यंत महत्वपूर्ण है। एक और भारतीय स्त्री मनमें चाहे अन्याय सहने की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप या स्वयं जागृति और नवचेतना की दृष्टि से नवजागरण काल माना जाता इसस समाज का अनक विकृातया स बचाया जा सकता है। इस प्रकार स्त्रा स्वतंत्रता का सवस आनवाय शत स्त्रा शिक्ष एवं आर्थिक स्वालम्बन है। जिससे स्त्री, समाज में अपना स्थान निर्धारित कर सकती है और अपने दायित्व से ऊपर उठकर मानवी बन सकती है।

स्त्री विमर्श की दृष्टि से आधुनिक काल की धारणाएँ अत्यंत महत्वपूर्ण है। एक और भारतीय स्त्री मनमें चाहे अन्याय सहने की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप या स्वयं जागृति और नवचेतना की दृष्टि से नवजागरण काल माना जाता है। कुछ विचारक इस नवजागरण को पाश्चात्य संस्कृति का अर्थात पाश्यात्व स्त्री स्वतंत्रता का परिणाम मानते है। इस समकालिन कहानीकार खुलम खुला वर्णन करते है, जो तीव्रतर हो उठी है। पिता अपनी पुत्री में श्रेष्ठता का दम्भ पैदा करके उससे अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहता है, जैसा कि मणिका मोहिनी की कहानी परम्परा और आधुनिकता के द्वन्द को रेखांकित करती है। आज भी पुरुष के लिए आधुनिक बनना जितना आसान है उतना स्त्री के लिए नहीं है। लेकिन स्त्री में अपनी स्वाधीनता और सहजता के लिए आकांक्षा तीव्र है। कुसुम अंजलि की कहानी स्पीडर्वकर में जयंती का प्रश्न हैं क्या तुमने आपको प्यार किया है ? और भावना का यह उत्तर कि कोई भी औरत अपने आपको प्यार नहीं कर पाती। अगर वह प्रयास भी करती हैं, तो उसे कहीं से टूटता होता है, नई से जुडना होता है। और शायद इसी प्रयास में कुछ इतना यड़ा विध्वंस होता है कि अपने आपको प्यार कर पाने का आनन्द वीच में ही छुटकर भटक जाता है। यह एक नयी दिशा में जाने की सोच है।स्त्री-विमर्श अनेक प्रकार के आरोप से उसे खंडित करने का प्रयत्य किया जा रहा है। पहला आरोप तो यही कि यह पाश्यात्य संस्कृति का प्रभाव और अंधानुकरण है। लेकिन इसका स्वर अव उतना बुंदल नहीं रहा। क्योंकि आमतौर से हमारी शिक्षा-दीक्षा, खान-पान, पेहरावा, शिष्टाचार, पारिवारिक जीवन तथा समस्त जीवन की सोच ही पाश्यात्य संस्कृति से प्रभावित है। तव विचारों के आजादी आना स्वाभाविक ही है। दूसरा मुख्य आरोप यह है कि समकालीन स्त्री- विमर्श यह पुरुष विरोधी है। वास्तव में आंदोलन का तेवर और स्वरुप पुरानी मान्यताओं को वदलने के हेतु कड़ूवा और विरोधी तो होता ही है कि स्त्री-पुरुष का पूर्णतः विरोध करके उसके अस्तित्व को ही अमान्य कर रही है और ठुकरा रही है। इस तरह यह अपने स्व की रक्षा के साथ पुरुष के स्वाभिमान की रक्षा का प्रश्न है। इसलिए पुरुप नहीं चाहता कि स्त्री का व्यक्तित्व उसके हाथों से पूरी तरह आजाद हो जाए। तीसरा आरोप यह भी किया जाता है वह देहवादी है। देह-रचना के आधार पर स्त्री और पुरुष कभी भी समान नहीं हो सकते। दैहिक दृष्टि से स्त्री और पुरुष कभी भी समान नहीं हो सकते। दैहिक दृष्टि से स्त्री की अपनी सीमाएँ हैं।

स्त्री-विमर्श भारतीय साहित्य और संस्कृति में पुरातन काल से होती है। लेकिन वर्तमानयुग में उसके स्वरूप में उल्लेखनीय बदलाव आया है। स्त्री-विमर्ण के प्रति सोचने के दो महत्वपूर्ण आयाम है। एक आयाम यह है कि

केवल चिंतन तर्शन या मध्हांतिक धरातल पर स्त्री के बारे में सोत्तना । दसरा आयाम है कि स्त्री चेतना के मानवीय पर स्त्री40 रचना के आधार पर स्त्री और पुरुष कभी भी समान नहीं हो सकते। दैहिक दृष्टि से स्त्री और पुरुप कभी भी समान नहीं हो सकते। दैहिक दृष्टि से स्त्री की अपनी सीमाएँ हैं।

स्त्री-विमर्श भारतीय साहित्य और संस्कृति में पुरातन काल से होती है। लेकिन वर्तमानयुग में उसके स्वरूप में उल्लेखनीय बदलाव आया है। स्त्री-विमर्ण के प्रति सोचने के दो महत्वपूर्ण आयाम है। एक आयाम यह है कि केवल चिंतन, दर्शन या सैध्दांतिक धरातल पर स्त्री के वारे में सोचना। दुसरा आयाम है कि स्त्री चेतना के मानवीय पर स्त्री के व्यक्तिमत्व को परखना। आजतक होता यह रहा है कि सैध्दांतिक और विषेषतः धार्मिक का मूल्यांकन होता रहा है। ऐसा नहीं है कि इस धार्मिक सांस्कृतिक परंपरा में स्त्री की पूर्णतः अवहेलना की गयी है। लेकिन यह भी वास्तविकता है कि प्रायः हमारी सामाजिक रचना पुरुष-प्रधान रही है। इसलिए आधिकाधिक निर्णायक अधिकार पुरुष के पास रहे। जिससे अनायास ही स्त्री-जाति पर अत्याचार होते रहे और स्त्रियों को अनेकानेक यातनाओं का सामना करना पड़ा तथा अपमानजन्य गुलामी का जीवन विताना पड़ा।

निष्कार्ष -

वास्तव में देखा जाए तो स्त्री यह पुरुष की जीवन-संगिनी होने के कारण साहित्य में जहाँ कहीं भी पुरुष जीवन या सम्पर्क रूप में सामाजिक जीवन उल्लेख हुआ है, वहा अनायास ही स्त्री-विमर्श उपस्थित रहा है। यह सच है कि उस समय की परिस्थिति जन्म धारनाओं के कारण उसका नामाकरण हम स्त्री-विमर्श इन शब्दों द्वारा नहीं पाते। पुरुष-स्त्रियों के वारे में जानने का दावा बहुत करता है। पर आज सवाल स्त्री के बारे में जानने का नहीं, स्त्री को जानने का है। रोजलेन्ड डरवॉल्ट नामक स्त्री लेखिका ने लिखा है कि स्त्री को आँवजेक्ट ऑफ नॉलेज बनने का मौका तो बहुत दिया गया है, पर नोइंग सब्जेक्ट बनने का मौका नहीं दिया गया। स्वयं अपने वारे में जानती पुरुषख चौकना हो गया ताकि जो संरचना उसने वनाई नहीं, नाइंग सब्जेक्ट के रूप में पहचाने जाने का है। पहले की समान्तवादी संरचना को स्पष्ट कर बताया है कि सेक्स शब्द पुरुष-स्त्री के मध्य एक जैविक अर्थ की और इशारा करता है जबकि जेन्डर का तालुक उसके साथ गुंथी सांस्कृतिक सोच से।स्वस्थ समाज के विकास और अपने सांस्कृतिक परिवेश को देखते हुए में कहना चाहता हूँ कि स्त्री-पुरुष की प्रतिद्वन्दी न होकर सहयोगी हो, दोनों में सहजीवन हो। सहजीवन का अर्थ, नारी का पुरुष में खो जाना नहीं है। इसका अर्थ है कि स्त्री-पुरुष को एक-दूसरे के स्वतंत्र व्यक्तित्व का सम्मान करते हुए एक-दूसरे को पाना है। इन दोनों में भिन्नता और पूरकता की आवश्यकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ-

1. हिन्दी प्रचार वाणी कर्णाटक महिला हिन्दी सेवा समिति, चामराजपेट, बैंगलोर - 18. पृष्ठा - 9
2. सफेद कुआँ मंजुल भगवत, पृष्ठा 7
3. सवंती - हिन्दी द्विमासिक पत्रिका, अक्टोवर- 2007, दक्षिण भारत हिन्दी प्रसार सभा, खैरतावाद, हैद्राबाद, पृष्ठ
4. हिन्दुस्तानी जवान महात्मा गांधी ममोरियेल रिसर्स सेंटर, मुम्बई, पृष्ठा 14

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

CASTEISM IN THE NOVELS OF RAJA RAO AND ARAVIND ADIGA

Dr. Vasant Bhivaji Gaikwad
Department of English
Yashwantrao Chavan College, Ambajogai

Introduction :

In Raja Rao's novels, such as *Kanthapura* and *The Serpent and the Rope,* casteism is depicted with a profound human touch. Rao intricately weaves the struggles of individuals within the societal web of caste, portraying characters who grapple with their identities, aspirations, and the oppressive caste hierarchy. Through personal narratives, Rao brings out the emotional toll of caste discrimination, making it a palpable experience for readers.

Adiga's portrayal of the rich-poor divide and caste-based exploitation is vivid and evocative. Through Balram's voice, readers empathize with the internal conflicts faced by individuals attempting to escape the shackles of caste-based oppression, adding a profound human touch to the exploration of social injustice.

In the novel *Kanthapura* is the story of a south Indian village named Kanthapura. The novel is narrated in the form of a Sthala Purana by an old woman of the village, Achakka. Dominant castes like Brahmins are privileged to get the best region of the village, while lower castes such as Pariahs are marginalized. Despite this classist system, the village retains its long-cherished traditions of festivals in which all castes interact and the villagers are united. The village is believed to be protected by a local deity named Kenchamma.

The main character of the novel, Moorthy, is a young Brahmin who leaves for the city to study, where he becomes familiar with Gandhian philosophy. He begins living a Gandhian lifestyle, wearing home-spun khaddar and discarded foreign clothes and speaking out against the caste system. This causes the village priest to turn against Moorthy and excommunicate him. Heartbroken to hear this, Moorthy's mother Narasamma dies. After this, Moorthy starts living with an educated widow, Rangamma, who is active in India's independence movement.

In *Kanthapura*, the protagonist Moorthy's journey reflects the human impact of caste dynamics. His quest for social justice becomes deeply personal as he confronts the prejudices ingrained in the fabric of Kanthapura. The emotional resonance is heightened as Moorthy's character evolves, providing readers with a poignant connection to the human dimensions of caste struggles. Similarly, Aravind Adig's *The White Tiger* delves into the human aspects of casteism, particularly through the lens of the protagonist, Balram Halwai. Adiga narrates Balram's journey from servitude to rebellion, highlighting the dehumanizing effects of the caste system. The narrative is infused with Balram's emotions, aspirations, and the human cost of breaking free from traditional societal norms.

In both Rao's and Adiga's works, the human touch in depicting casteism lies in the authenticity of characters and their struggles. By intertwining personal narratives with broader societal issues, these authors bring an emotional depth to their exploration of caste dynamics, allowing readers to connect at a visceral level with the characters' experiences and the challenges they face in navigating a deeply stratified society. In *Kanthapura*, casteism emerges as a major issue that permeates every aspect of the village life, shaping relationships, opportunities, and conflicts. The novel vividly portrays the insidious nature of caste-based discrimination and its devastating effects on the community. Here are some examples highlighting the prevalence and impact of casteism in *Kanthapura*:

1. Segregation and Social Hierarchies:

The village of Kanthapura is deeply divided along caste lines, with each caste occupying a distinct social status. Brahmins, such as Achakka and Rangamma, hold positions of power and authority, while lower castes, like the Pariahs, face social exclusion and discrimination. The rigid social hierarchy reinforces caste-based segregation, limiting interactions and opportunities for social mobility.

2. Denial of Basic Rights:

The lower castes in Kanthapura are systematically denied access to basic rights and resources. For example, when the village well becomes contaminated, the Brahmins refuse to allow the Pariahs to use their wells, exacerbating their already precarious living conditions. This denial of essential services based on caste reinforces the marginalized status of the lower castes in the community.

3. Exploitation and Oppression:

Caste-based oppression is evident in the economic exploitation of lower castes by the dominant Brahmin elite. The character of Bhatta exploits the labor of the lower castes, paying them meager wages and perpetuating their cycle of poverty. The economic dependence of the lower castes on the Brahmin landowners further entrenches their subjugation and reinforces caste-based power dynamics.

4. Social Stigma and Discrimination:

Casteism in *Kanthapura* is also manifested through social stigma and discrimination. Characters like Ratna, a Pariah girl, face discrimination and ostracism from the dominant caste members simply because of their birth status. Their exclusion from social gatherings, religious ceremonies, and communal spaces underscores the deep-rooted prejudices and stereotypes associated with caste identity.

5. Resistance and Solidarity:

Despite the pervasive influence of casteism, *Kanthapura* also portrays moments of resistance and solidarity among the oppressed castes. Moorthy's movement for social justice and his attempts to unite the villagers against caste oppression exemplify the collective struggle for equality and dignity. Through acts of defiance and solidarity, the characters challenge the entrenched caste hierarchy and envision a more equitable society.

The another novelist Aravind Adiga in his famous novel *The White Tiger*, casteism is a major issue that permeates the social fabric of Indian society, influencing the lives of the characters and shaping their destinies. The novel explores the impact of the caste system on individual agency, opportunities, and societal structures. Here are examples illustrating the prominence of casteism in *The White Tiger*:

1. Balram's Servitude and Social Position:

The protagonist, Balram Halwai, is born into the "Darkness" – the lower caste. His family belongs to the Halwai caste, traditionally engaged in menial and servile occupations. Balram's low social position limits his opportunities and subjects him to exploitation. Despite his intelligence and ambition, he is consigned to a life of servitude due to the prevailing caste hierarchy.

2. Caste-Based Exploitation in the Workplace:

Balram's experience as a driver for wealthy families exposes the systemic exploitation rooted in casteism. He witnesses the condescending attitudes of his employers, who treat him as an inferior due to his caste background. The exploitation extends beyond economic disparities, reflecting the dehumanizing impact of the caste system on the workforce.

3. Caste-Based Discrimination in Education:

Balram faces discrimination in the education system, where students from lower castes are often denied access to quality education. Despite his desire to learn and improve his circumstances, Balram encounters barriers that reinforce the entrenched social hierarchy. The novel sheds light on the structural inequalities that perpetuate caste-based discrimination in educational institutions.

4. Social Stereotypes and Marginalization:

Adiga portrays how social stereotypes associated with different castes contribute to the marginalization of individuals. The prevalent belief that individuals from lower castes are destined for servitude and lack ambition

reinforces societal prejudices. Balram's journey becomes a rebellion against these stereotypes as he strives to break free from the predetermined roles assigned by caste norms.

5. Caste in Political and Economic Structures:

The novel critiques the role of caste in shaping political and economic structures. Balram observes how individuals from privileged castes dominate positions of power and influence, perpetuating a system that favors their interests. The metaphorical "Rooster Coop" represents the psychological and societal constraints that keep individuals bound within their prescribed caste roles.

6. The Rooster Coop and Liberation:

The metaphor of the "Rooster Coop" symbolizes the psychological entrapment of individuals within the caste system. Balram's journey to liberation is also a rebellion against the constraints of the Rooster Coop. His act of breaking free from the societal expectations associated with his caste marks a radical departure from the predetermined fate that caste norms dictate.

Conclusion :

Overall the novel, *Kanthapura* serves as a powerful portrayal of the multifaceted nature of casteism, depicting its pervasive influence on individual lives and community dynamics. The novel highlights the urgent need to confront and dismantle caste-based discrimination in order to achieve social justice and equality.

Adiga's novel *The White Tiger* serves as a powerful critique of casteism, unraveling its impact on individual lives and the broader socio-economic landscape. Through Balram's narrative, Adiga confronts the complexities of the caste system, portraying its oppressive nature and the challenges individuals face in transcending its confines.

References :

1. Rao, Raja. Kanthapura. New Delhi : Penguin publication, 2014.
2. Adiga, Aravind. The White Tiger. Atlantic Books, Ltd (UK), Free Press (US), 2008.

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

हिन्दी कविता में किसान विमर्श

डॉ.गंगाधर बालन्ना उषमवार
हिंदी विभाग
श्री सिद्धेश्वर महाविद्यालय,माजलगाव
ता.माजलगाव जि.बीड – ४३११३१

प्रस्तावना :

भारत देश एक कृषिप्रधान और गावों का देश है। यहाँ पर लगभग ६५ से ७० प्रतिशत आबादी कृषि कार्य पर निर्भर है। इसलिए हमारे देश को 'किसानों का देश' कहना चाहिए। क्योंकि किसान को देश की रीड की हड्डी कहा जाता है। जबसे इस धरती पर जीवन की उत्पत्ति हुई तब से ही किसान खेती करके अनाज का उत्पादन कर रहे हैं। यानि किसान ही सारी दुनिया के लिए भोजन हेतु अनाज, फल, सब्जियाँ और चारे का उत्पादन करते आ रहे हैं। इन धरतीपुत्र किसानों को 'अन्नदाता' भी कहा जाता है। यदि किसान खेती नहीं करेंगे तो अनाज का उत्पादन नहीं होगा और जब अनाज का उत्पादन नहीं होगा तो हमारे भोजन की भी व्यवस्था नहीं होगी। बिना भोजन के हमारा जीवित रहना असंभव है। मानव सभ्यता के विकास में कृषि की अमूल्य भूमिका रही है। मानव का अस्तित्व ही कृषि पर टिका है। लेकिन आज सारी दुनिया में सबसे ज्यादा दुर्दशा किसानों की ही है। किसान सबके लिए तो अनाज उगा रहे हैं और खुद भूखे मरने के लिए विवश हैं। किसान अपनी खेती से इतना नहीं कमा पाते कि वो अपने परिवार का ठीक ठाक प्रबंध कर सकें। किसान जितना परिश्रमी और धैर्यवान कोई नहीं है। फिर भी किसान सुखी नहीं है। कभी वो भयानक सूखा अकाल की मार से मारा जाता है और कभी प्रलयकारी बाढ़ से। इन आपदाओं से ज्यादा तो किसान कर्ज के बोझ से आत्महत्या करने मजबूर होते हैं। सरकारी और प्रशासनिक व्यवस्था किसान को ही हमेशा हर प्रकार से लूटती रही है।

हिन्दी कवियों ने किसानों एवं मजदूरों के समूह को 'सर्वहीनों और शोषितों' का समूह माना है। उन्होंने किसानों और मजदूरों के प्रतिदिन के उन पक्षों को छुआ है जो प्रत्येक सहृदय व्यक्ति को संवेदना के धरातल पर कहीं न कहीं छू जाते हैं। हिन्दी कवि इस समुदाय के प्रति अपनी कविताओं के द्वारा सहानुभूति प्रकट करते हैं। कवि, किसान और मजदूर की स्थिति पर वह बहुत दुखी और पीड़ित है। पाठशाला की पुस्तकें बच्चों को मजदूरों के बारे में कुछ नहीं बता रही हैं। मालिक सूरजा (नौकर) की कमीज फाड़ता है, उसे गाली देता है, पीटता है, फिर भी उससे नाराज रहता है। खेतिहर मजदूर, बंधुआ मजदूर को जमींदार षड्यंत्र, झांसा, प्रलोभन और आतंक द्वारा बर्बाद कर रहे हैं। सरकार किसानों का दुःख-दर्द नहीं सुलझाती है। केवल लगान वसूल करती है। ऐसी दशा में मजदूर घोषित करते हैं, हम सरकार हैं। मजदूरों में नक्सलवादी चेतना निराधार नहीं है। भोलेपन के कारण श्रमिक वर्ग सत्ता के षड्यंत्र का शिकार हैं। मजदूरों का भोलापन कम होता जा रहा है। श्रमिकों के खून से बागवानी हो रही है। 'सुदामा पाण्डेय का प्रजातंत्र' में धूमिल के शब्दों में लिखते हैं -

"तुम्हारे रक्त को सींचकर गुलाबों की
बागवानी करते वे कुछ लोग।" १

राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य-धारा के कवियों ने कृषि श्रमिकों की दयनीय दशा के हर रूप को अपनी कविता में अंकित किया है। जो श्रमिक कड़ी मेहनत करके अन्न उपजा कर सभी को रोटी देता है। स्वयं उसके पास अपने खाने को रोटी नहीं होती है, उसकी दशा अत्यंत करुण एवं मार्मिक है। महाकवि दिनकर अपनी कविता 'हुंकार' में कृषि श्रमिकों की दयनीय दशा एवं उनकी विवशता का चित्रण करते हुए कहते हैं –

"जेठ हो कि पूस हमारे कृषकों को आराम नहीं है,
छूटे बैल से संग कभी जीवन में ऐसा याम नहीं है।
मुख में जीभ शक्ति भुज में, जीवन में सुख का नाम नहीं हैं,
वसन कहाँ ? सूखी रोटी भी मिलती दोनों शाम नहीं हैं। २

हिन्दी साहित्य का कवि अपनी कविता के माध्यम से कृषि श्रमिकों के साथ पूरी सहानुभूति रखता है। उनकी कविता उनके लिए लोटे का गंगाजल, बच्चों के दूध और कभी-कभी बेबसी के आँसू बनकर सामने आती हैं। कवि इन श्रमिकों में ईश्वर का वास मानता है। इसका कारण है कि श्रमिक वर्षा-धूप की परवाह न करते हुए किसी सिपाही की तरह खेतों में जूझता रहता है।

कृषि प्रधान देश नहीं यह उद्योग प्रधान है, तभी तो गोलियों से मारा जा रहा किसान को। अधिकृत किया जा रहा खेत-खलिहान को, माफ कर रहे कर्ज उद्योग घरानों का। भाव फसलों का बढ़ रहा की मकानों का, पानी तो दे दिया पूरा पेप्सी कोका वालों को। आयत किया जा रहा बिचोलियों से दालों को, जिंक के नाम पर पूरी फसलें खराब कर दीं, कीट नाशकों ने पूरी नस्लें खराब कर दी। कवि किसानों की तरह मजदूरों की अत्यंत सोचनीय एवं दयनीय स्थिति को अपनी कविता में स्थान देता है। उसका संवेदनशील हृदय प्रत्येक पीड़ित एवं शोषित मजदूर एवं किसान की रुदनशील आवाज को अपनी लेखनी रूपी तूलिका से चित्रित करता है। अपनी कविता के द्वारा वह कहता है कि मजदूर की स्थिति दिहाड़ी का मजदूर न होकर बंधुआ मजदूर की बन गयी थी। उसका सारा जीवन अभावग्रस्त एवं अनेक कठिनाइयों से भरा है। मिलों एवं कल-कारखानों में दिन-रात मेहनत करने के बाद भी मजदूर आर्थिक विपन्नता में मरणासन्न हो चुका है। इस संदर्भ में मैथिलीशरण गुप्त अपनी कविता 'विश्ववेदना' में कहते हैं-

"कराकर सौ-सौ से उद्योग एक ही करता है सब भोग।
यंत्र जीते हैं, मरते लोग, फैलते हैं नित नूतन रोग ३

मजदूर यंत्रों का गुलाम बनकर अपनी आर्थिक परेशानियों से जूझता रहता है। मजदूर वर्ग झोपड़ी में रहकर सारा जीवन गरीबी में बिताता है, वहीं पूँजीपति वर्ग दिन रात अमीर होता जा रहा है और मजदूर आर्थिक दुर्दशा का शिकार होता जा रहा है। उनके रक्षक ही उनके भक्षक बन गये हैं। मजदूर कठिन परिश्रम करते हैं परंतु उसका लाभ पूँजीपति वर्ग ही उठाते हैं। कवि के हृदय में जींदार, पूँजीपति वर्ग के प्रति घृणा तथा किसान एवं मजदूरों के प्रति सहानुभूति परक संवेदना एवं समाज में छाये अत्याचार एवं शोषण के प्रति आक्रोश है। कवि यह मानता है कि मानव विकास का मार्ग अवरूद्ध करने वाले सामाजिक एवं आर्थिक वैषम्यों का तथा शोषण नीति का विनाश आवश्यक है। महाकवि दिनकर अपनी कविता 'कुरूक्षेत्र' के सप्तम सर्ग में इसका अनुमोदन करते हुए दिखाई देते है-

"न्यायोचित सुख-सुलभ नहीं, जब तक मानव-मानव को,
चैन कहाँ धरती पर तब तक, शांति कहाँ इस मन को?
जब तक मनुज-मनुज का यह, सुख-भाग नहीं सम होगा,
शामित न होगा कोलाहल, संघर्ष नहीं कम होगा। ४

कवि इस बात से चिंतित है कि मजदूरों को कठोर परिश्रम करके भी उचित परिश्रमिक नहीं मिलता था। कविवर मखनलाल चतुर्वेदी मजदूरों के शोषण का यथार्थ चित्रण करते हैं। उनका कहना है कि जब शोषण अपनी चरम सीमा तक पहुँचता है तो उसके प्रति विद्रोह अवश्यंभावी हो जाता है। राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य-धारा के युग मे भौतिकवाद का विकास हो रहा है। एक ओर जहाँ पूँजीपति वर्ग, भौतिक संसाधन जुटाने में लगा वहीं दूसरी ओर गरीब वर्ग के पास प्राथमिक आवश्यकता की वस्तुएँ अन्न, वस्त्र एवं आवास तक नहीं हैं। इस समस्या से कवि का हृदय दुःखी है। वह मानव को अन्न, वस्त्र एवं आवास जैसी प्राथमिक आवश्यकताओं का पूर्ति के लिए चिंतित देखकर शोक व्यक्त करता है तथा प्रस्तुत चिंता से उसे मुक्त करना चाहता है महाकवि मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में

"अन्न-वस्त्र से हो निज ग्राम
हो निश्चित न ले विश्राम।
आवश्यक साधक सब अन्य
स्वयं सिद्ध करके हो धन्य। ५

आज किसान की हालत इतनी बद से बदतर हो चुकी है कि वह फांसी लगा कर आत्महत्या करने को मजबूर हो गया है।

निष्कर्ष

हम कह सकते हैं कि हिन्दी साहित्य के कवि किसानों एवं मजदूरों की दशा पर चिंतित हैं। इसी कारण उनकी कविताओं में पूँजीपतियों एवं सरकार के विरुद्ध विद्रोह के स्वर उभरतें हैं। भारत की कवि चाहते हैं कि किसानों एवं मजदूरों का अभावग्रस्त जीवन समाप्त हो वह भी संपन्न परिवार के जैसे ही अपने बच्चों का लालन-पालन कर सकें। शोषण मुक्त देखना चाहता है। इसलिये उनकी कविताओं में किसानों और मजदूरों के ऊपर होने वाले अत्याचार के खिलाफ क्रांति के स्वर उभरते रहे हैं। वह प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में प्राथमिक अवश्यकाओं की पूर्ति चाहते हैं। भारत की अर्थव्यवस्था एक तिहाई या यूं कहे करीब ७० प्रतिशत खेती पर निर्भर है। क्योंकि हमने देखा है कोरोना काल में जब सभी कारखाने का पारीक संस्थान बंद थे तब खेती किसानों एवं मजदूरों हो उन्होनें भारत की अर्थव्यवस्था को संभाला है। इसी कारण उन्होंने अपनी कविताओं में लेखनी रुपया तूलिका से किसान और मजदूरों की प्रत्येक दशा के चित्र उकेरे हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

. १. सुदामा पाण्डेय का प्रजातंत्र-धूमिल पृ. ३१
२. हुंकार-दिनकर, पृ. २२
३. विश्ववेदना-मैथिलीशरण गुप्त, पृ.१५
४ . कुरूक्षेत्र-सप्तम सर्ग दिनकर, पृ. ८७
५. गाँवों का सुधार-हिन्दू-मैथिलीशरण गुप्त-पृ. ११२

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

समकालीन हिंदी कविता में स्त्री, दलित एवं आदिवासी विमर्श

संतोष नागरे
हिंदी विभाग
र. भ. अट्टल महाविद्यालय,गेवराई

साठोत्तरी हिंदी कविता को समकालीन हिंदी कविता के नाम से जाना जाता है। समकालीन हिंदी कविता मुख्यधारा से कटे हुए और हाशिये पर जीवन जीने के लिए विवश स्त्री, दलित एवं आदिवासी समाज की वेदना को बड़ी बेबाकी के साथ अभिव्यक्त करती है। जहाँ एक ओर दुनिया की आधी आबादी का प्रतिनिधित्व करनेवाली स्त्री पितृसत्ताक समाज के दोहरे मापदंडों द्वारा निरंतर ठगी जाती रही है वहीं दूसरी ओर दलित वर्णव्यवस्था एवं जातिव्यवस्था की शोषण चक्की में पिसता आ रहा है। आदिवासी इस देश के मूल निवासी हैं। वैश्विकरण की लूट संस्कृति में विकास के नाम पर किया जा रहा विनाश, प्राकृतिक संसाधनों की अमर्याद लूट तथा विस्थापन की मार झेल रहे आदिवासियों का अस्तित्व ही खतरे में आ गया है। समकालीन हिंदी कविता अपने अस्तित्व के लिए जूझ रहे स्त्री, दलित एवं आदिवासी समाज जीवन के विभिन्न पहलुओं पर बड़ी बेबाकी के साथ प्रकाश डालती है।

स्त्री विमर्श

दुनिया की आधी आबादी का प्रतिनिधित्व करनेवाली स्त्री मुख्यधारा से कटी हुई उपेक्षित जीवन जीने के लिए विवश है। पुत्र की आकांक्षा, कन्या भ्रूण हत्या, लिंग - भेद, छेड़छाड़, अपहरण, बलात्कार, देह शुद्धि को लेकर किया जाता मानसिक शोषण, बालविवाह, बहुविवाह, दहेज, हलाला, तीन तलाक जैसी कुप्रथाएँ तथा अभिव्यक्ति स्वातंत्रता के अभाव से घिरा स्त्री जीवन दुनिया की आधी आबादी की त्रासदी को बयान करता है। समकालीन हिंदी कविता स्त्री जीवन के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालती हुई पितृसत्ताक समाज के दोहरे मानदंडों द्वारा ठगे जाने की पीड़ा को बयान करती है साथ ही मुक्ति के लिए संघर्ष का नया सौंदर्यशास्त्र भी गढ़ती है। प्रो. सरस्वती भल्ला इस संदर्भ में ठीक ही कहती है-" स्त्रियों का हाशियों की दुनिया को तोड़ना और अपने अधिकारों के प्रश्न पर सजग होना ही स्त्री मुक्ति का विमर्श है। इस प्रकार स्त्रीवादी विमर्श ने पितृसत्तात्मक अवधारणाओं को चुनौती दी है जिससे स्त्री की समाज में बदलती हुई स्थिति, दृष्टि और भूमिका का प्रश्न नए परिप्रेक्ष्य में सामने आया है। स्त्री -विमर्श से उठने वाले प्रश्न मात्र मुक्ति से ही नहीं जुड़े हैं, अपितु पितृसत्ताक समाज के दोहरे मापदंड, पितृक मूल्य, लिंगभेद की राजनीति तथा स्त्री उत्पीड़न के अंतर्निहित कारणों को समझने की गहन दृष्टि भी देते हैं।"[1] निर्मला गर्ग, कात्यायनी, निर्मला पुतुल, नीलेश रघुवंशी, ममता कालिया, रजनी अनुरागी, पवन करण, उदयप्रकाश आदि की कविताओं में स्त्री विमर्श अपने चरम रूप में देखने को मिलता है। शोषणकारी पुरूषप्रधान व्यवस्था द्वारा स्त्री सौंदर्य के जो मानदंड गढ़े गये हैं उनमें गूँगापन स्त्री का सबसे बड़ा आभूषण माना गया है। इस आभूषण के कारण ही आधी आबादी का प्रतिनिधित्व करनेवाली स्त्रियों की दुनिया चुप्पी की दुनिया बनकर रह गयी है। अतः इस चुप्पी की दुनिया को बारूदी सुरंगें बिछाकर उड़ाने की संकल्पबद्धता कात्यायनी की कविता 'ऐसा किया जाये कि...' में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है-

"ऐसा किया जाये कि
एक साज़िश रची जाये।
बारूदी सुरंगें बिछाकर
उड़ा दी जाये
चुप्पी की दुनिया।"[2]

दलित विमर्श

वर्णव्यवस्था एवं जातिव्यवस्था द्वारा उपेक्षित, अपमानित एवं तिरस्कृत समूह को दलित नाम से अभिहित किया जाता है। दलित सदियों से सामाजिक भेदभाव के शिकार रहे है। अतः सामाजिक भेदभाव का विरोध करते हुए सामाजिक समता प्रस्थापित करना दलित कविता की मूल संवेदना रही है। कँवल भारती इस संदर्भ में ठीक ही कहते हैं - " दलित विमर्श के केंद्र में वे सारे सवाल हैं, जिनका संबंध भेदभाव से है, चाहे यह भेदभाव जाति के आधार पर हो, रंग के आधार पर हो, नस्ल के आधार पर हो, लिंग के आधार पर हो या फिर धर्म के आधार पर क्यों न हो।"[3] दलित कविता की पृष्ठभूमि बनाने में महात्मा गौतम बुद्ध, संत कबीर, संत रैदास, गुरू नानक देव, संत नामदेव आदि संतों के साथ महात्मा फुले, राजर्षि शाहू महाराज, डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर आदि समाज सुधारकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर जी की विचारधारा दलित कविता का प्राणतत्व है। डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर जी के 'शिक्षा', 'संगठन' और 'संघर्ष' की त्रिसूत्री को आधार बनाकर दलित समाज आगे बढ़ रहा है। 'नकार', 'विरोध' और 'विद्रोह' दलित कविता के सौंदर्य को निखारते हैं। सवालात्मता दलित कविता की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। समकालीन हिंदी दलित कविता जांति-पांति, ऊँच-नीच, आत्मा-परमात्मा, स्वर्ग-नरक, जन्म - पुनर्जन्म, धार्मिक पाखंड, कर्मकांड, कर्मफल, छुआछूत का समर्थन करनेवाले धर्मग्रंथ तथा उसके समर्थकों को फटकारती हुई समतामूलक समाजव्यवस्था की परिकल्पना में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है। ओमप्रकाश वाल्मीकि, जयप्रकाश कर्दम, मोहनदास नैमिशराय, कँवल भारती, सुशीला टाकभौरे आदि की रचनाओं में दलित विमर्श की सशक्त अभिव्यक्ति पायी जाती है। सदियों से 'बस्तियों से बाहर' रहनेवाले दलितों की व्यथा-कथा को बयान करते हुए डॉ. जयप्रकाश कर्दम कहते हैं -

"बंद कर मेरी रौशनी के सुराख
वे उजालों की सैर करते हैं
वसुधैवों को एक कुटुम्ब बताने वाले
जाति, वर्णों में बंटे फिरते हैं
खूब आता है सताने का सलीका उनको
न्याय के नाम पर वो दंड दिया करते हैं
किसने किसको क्या दिया, लिया, छीना
बात उठती है तो परेशान हुआ करते हैं
सुना है चाँद और मंगल पर बसेगी बस्ती
कहां होंगे जो बस्तियों से बाहर रहते हैं।"[4]

आदिवासी विमर्श

समकालीन हिंदी कविता दलितों के साथ आदिवासियों की संघर्षगाथा को बयान करती है। आदिवासी इस देश के मूल निवासी है। आदिवासियों का अस्तित्व पूर्णतः जंगल पर निर्भर होने के कारण उन्हें 'जंगल के दावेदार' भी कहा जाता है। उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण की नई अर्थनीतियों के सूत्रधारों ने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए प्राकृतिक संसाधनों का अमर्याद दोहन कर आदिवासियों के जंगलों को उजाड़ना आरंभ किया। विकास के नाम पर आदिवासियों को जल, जमीन और जंगल से बेदखल करते हुए विस्थापन की त्रासदी से गुजरने पर विवश किया। इसी विवशता ने आदिवासी विमर्श को जन्म दिया। डॉ. रमणिका गुप्ता इस संदर्भ में ठीक ही कहती है -" दरअसल आदिवासी चेतना का लेखन जहाँ एक तरफ अपनी पीड़ा खुद कहने, अपने समाधान खुद ढूँढने की चेष्टा है, वहीं आज वह प्रस्थापितों द्वारा अपनी संस्कृति को नष्ट करने, अपने संसाधनों पर कब्जा जमाने के षडयंत्रों के बरक्स प्रतिरोध की चेतना से भी लैस है।"[5] आदिवासी समाज को केंद्र में रखकर काव्य सृजन करनेवालों में महादेव टोप्पो, निर्मला पुतुल, हरीराम मीणा, रमणिका गुप्ता, वाहरू सोनवणे, जसिंता केरकट्टा, वंदना टेटे, अनुज लुगुन आदि कवियों का महत्वपूर्ण योगदान है। विकास के नाम पर आदिवासियों की आँखों में धूल झोंककर किये जा रहे विनाश की पोल खोलती हुई निर्मला पुतुल 'तुम्हारे एहसान लेने से पहले सोचना पड़ेगा हमें' कविता में कहती है -

"अगर हमारे विकास का मतलब
हमारी बस्तियों को उजाड़कर कल-कारखाने बनाना है
तालाबों को भोथकर राजमार्ग
जंगलों का सफाया कर ऑफिसर्स कॉलोनियाँ बसानी हैं
और पुनर्वास के नाम पर हमें
हमारे ही शहर की सीमा से बाहर हाशिए पर धकेलना है
तो तुम्हारे तथाकथित विकास की मुख्यधारा में
शामिल होने के लिए
सौ बार सोचना पड़ेगा हमें।"[6]

सारांश

समकालीन हिंदी कविता हाशिये पर जीवन जीने के लिए विवश स्त्री, दलित एवं आदिवासी समाज जीवन के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालती हुई उनके मानवाधिकार को लेकर आवाज उठाती है। समकालीन हिंदी कविता स्त्री, दलित एवं आदिवासी विमर्श के माध्यम से समतामूलक समाज की परिकल्पना में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती हुई मानव मुक्ति का एक नया सौंदर्यशास्त्र गढ़ती है।

संदर्भ

1. सम्पा. प्रो.श्रीराम शर्मा, (संस्करण 2009,) समकालीन हिंदी साहित्य : विविध विमर्श, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ.क्र.53-54
2. कात्यायनी, (प्रथम संस्करण 2012), कवि ने कहा : चुनी हुई कविताएँ, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ. क्र.27
3. कँवल भारती, (द्वितीय संस्करण 2013), दलित विमर्श की भूमिका, अमन प्रकाशन,कानपुर, पृ. क्र. 15
4. डॉ. जयप्रकाश कर्दम, (प्रथम संस्करण 2013), बस्तियों से बाहर, अमन प्रकाशन, कानपुर, पृ. क्र.56
5. सम्पा. रमणिका गुप्ता, (पाँचवाँ संस्करण 2018), आदिवासी: साहित्य यात्रा, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, भूमिका पृ. क्र.5
6. निर्मला पुतुल, (प्रथम संस्करण 2014), बेघर सपने, आधार प्रकाशन, पंचकूला (हरियाणा), पृ. क्र.40

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

समकालीन हिंदी कहानी में स्त्री विमर्श

डा. मानितकुमार अमृतराव वाकळे
सहयोगी प्राध्यापक
खोलेश्वर महाविद्यालय, अंबाजोगाई

भूमिका:

स्त्री विमर्श आवधरणा और स्त्री मूक्ति से केंद्रित बात है। स्त्री विमर्श एक ऐसा मंत्र है जहा स्त्री के गुलामी और शोषण के कई पर्तो पर चर्चा करता है। वह पुरूष और स्त्री को एक मानव के समान देखता है, ना किसीका कम अधिक अवमूल्यन करता है न किसी की बात करता है जो समता स्वातंत्रता, भाईचारा और सामाजिक न्याय की बहाली चाहता है। ''नारी विमर्श का बुनियादी आधार हैं नारी की पहचान, नारी स्वतंत्रता अथव मुक्ति अर्थात नारी की पहचान को सम्बन्धों से परे एक पर्सन/ व्यक्ति की पहचान के रुप में स्थापित करना। यह नारी के प्रति होनेवाले शोषण के विरुध्द ऐसा संघर्ष है, जो नारी को उसकी उपनी स्थिती के बारे में सोचने, निर्णय की दृष्टि और दावा प्रदान करने की शक्ति देता है।''

सबसे पहले उसकी शुरूवात इ.स.पूर्व भगवान बुध्द के आंदोलन से हुई थी। लेकिन कुछ कारणवश वहां स्त्री का दमन हुआ और वह पुरूषसत्ताक वर्चस्ववादी व्यवस्था की गुलाम हुई। ''इसलिए 'थेर गाथाओं' की तरह जब - जब स्त्री को अपनी बात कहने का मौका मिला, उसने निडरतासे अपनी पीडा व्यक्त की, मीराबाई, सहजोबाई, जनाबाई, रामी, महादेवी, अक्का, सुले सनकवा, रतनबाई, आनुकुरी मौल्ला, बहिनाबाई, गुलबदन बेगम, चंद्रबौती, संधिया होनम्मा आदि वे स्त्रियां हैं जो पूरे भारत की है। अपनी अपनी भाषा में इन्होंने अपने अपने दुःख व्यक्त किए। मीराबाई ने यदि राजमहल छोडा तो चैदहवी - पंद्रहवी सदी में गुजराती में गंगासती व रतनबाई और मराठी में जनाबाई ने समाज मे व्याप्त रुढियों के खिलाफ विद्रोह किया।'' जब भगवान गौतम बुध्द के धम्म में कुछ कारणवश स्त्री को संघ में दिक्षीत करने का विरोध किया गया तो थेर महिलाओंने महिलाओंपर होने वाले इस अन्याय के खिलाफ आंदोलन किया और अपने आप को पुरुषों के समान सिध्द किया। यह स्त्री विमर्श और मुक्ति आंदोलन का पहला चरण माना जाता है। उसके पश्चात भारत और विदेश मे स्त्री को लेकर दुयम दर्जेका व्यवहार होने लगा भारत में अनेक आक्रमणकारी आए और स्त्रीयों को समय ⩽ पर गुलाम बनाया गया। इस स्त्री शोषण के चलते दुनिया मे अनेक तरह के विमर्श होने लगे। स्त्री संवेदना दुःख, दर्द और अनेक शोषण को परिभाषित किया जाने लगा, स्त्री शोषण के खिलाफ जमीन तयार करना शुरु हुआ। स्त्री विमर्श एक वैश्विक विचारधारा बनने लगी जिसमें पुरे विश्व की स्त्रीयों का संघर्ष अपने पितृसत्ताक समाज के विरोध में देखने को मिलता है। इसी तरह भारतीय और पश्चिमी स्त्री मुक्ति आंदोलन का तथा स्त्री विमर्श का इतिहास बहुत पुराना और लम्बा रहा है।

स्त्री विमर्श एक ऐसा विमर्श है जो जाति, धर्म, वर्ग, वंश, प्रांत और देष आदि से अलग हटकर है। जहा स्त्री अपने उपर होनेवाले अन्याय, अत्याचार, शोषण, उत्पीडन और अपेक्षा आदि का विरोध करती है। बुध्दा के बाद सबसे पहले इस विमर्श को पश्चिम सफलता मिलती हुई दिखाई देती है।

वास्तव में यह एक विकसनशील मानव के सभ्यतासे पनपि एक विचारधारा है, जो मानवी अधिकारों की मांग, विचार, प्रचार और प्रसार और मानवी मूल्यों का संवर्धन करता है। '' महिला लेखन नारी विषयक समस्याओं

से जुडकर भी सामाजिक सरोकारोंसे अछुता नही रहा है। इसमे मानवीय संबंधो को जाचने और परखन की सूक्ष्म दृष्टि निश्चित रुप से विद्यमान है। और सामाजिक यथार्थ के अंकन की कोशिश भी स्पष्ट दिखाई देती है।''

पितृसत्तात्मक समाज में जहा सारे नियम, कानून, वर्चस्व पुरुषों के हैं। वहा स्त्री का अपना कुछ भी नही है। स्त्री एक ऐसी प्राणी बनी है जो पुरुषवादी समाज की कठपुतली बन चूकी है। और बेबसी के साथ अपना जीवन जी रही है। स्त्री के स्वभाव उसके मन और उस की संवेदनाओंको समझने के लिए स्त्री विमर्श महत्वपूर्ण दृष्टी हैं। स्त्री विमर्श कोई संस्कार नहीं है, और न ही कोई विचारधारा है, बल्कि इस बदले हुए समाज में स्त्री के पारंपारिक मानदंडो को तोडने की एक पहल हैं। जिसे स्त्री को समानता का अधिकार सम्मान, अस्तित्व और स्वतंत्रता प्राप्त हो सके इस के लिए पुरुषों की मानसिकता में बदलाव लाने की आवश्यकता है।

स्त्री विमर्श केवल विमर्श या बहस का मुद्दा नही है। जितना वह चेतना और जागृतीका मुद्दा है। इस में परंपरा और आधुनिकता दोनों है। '' भारत में महिलाओं के जुझारुपन का सिलसिला शुरु होतो है - 1927 से, जब पूना में शैक्षणिक सुधारों को लेकर पहला सम्मेलन हुआ। भारतीय महिला आंदोलन का यह ऐतिहासिक दौर है। इस आंदोलनरुपी सम्मेलन में महारानियों, शिक्षाविदों, डाॅक्टरों, वकीलों और घरेलू औरतों तक ने शिरकत की थी। यहां से नए युग की शुरुवात होती है और जो भारतीय महिला आंदोलन को विश्व के दूसरे देशों से अलग पहचान देती है। जहां पश्चिम की महिलाएं सिर्फ मताधिकार के लिए लड रही थी, वहीं भारतीय महिलाएं सामाजिक कुरीतियों से भी जूझ रही थी।''

भारत में आजादी के पूर्व और बाद नारी शिक्षा का प्रसार और प्रचार होने के कारण सावित्रीबाई फुले जैसी साहसी स्त्री के कारण हिंदी साहित्य में सशक्तता के साथ स्त्री विमर्श की सशक्त शुरुवात हो गयी । यह मुक्तिआंदोलन, कविता, कहानी, नाटक तथा उपन्यासों में बराबर दिखाई दे रहा है। विमर्श किसी भी विषय पर हों, वह बुरा नही होता। क्योंकि साहित्य का उद्येश्य मात्र मनोरंजन करना नही तो अनेक प्रासंगिक विषयों पर चर्चा, चिंतन और मनन करना भी होता है। समाज और हमारे इर्द - गिर्द हो रहे एक एक घटनाओं का लेखा- जोखा वास्तविक वर्णन होता है। नारी और समाज व्यवस्थामें घटित घटनाओं का असर साहित्य पर होता है। साहित्यकार ऐसे अमंगल घटनाओं, रिती - परंपराओं को साहित्य के माध्यम से खत्म करना चाहता है और मानव कल्याणकारी समाजव्यवस्था का निर्माण करना चाहता है। ''स्त्री विमर्श की सभी परिभाषाओं में यह सत्य विहित रहा है की कुछ भी कहिए आपको यह विचार मानने के लिए विवश होना पडेगा कि स्त्री - विमर्श एक सामाजिक और राजनितीक 'फोर्स' है। ऐसी फोर्स या दुर्गा शक्ति जो मर्दवादी अत्याचारों को रौंदकर दम लेगी। स्त्री -पुरुष का पूरा इतिहास -भूगोल, गणित इस शक्ति ने अपनी चेतना के जागरण से बदल दिया है।'' अंततः मानवी मूल्य, मानवी कल्याण इस विमर्श में निहित है। यह सशक्त राष्ट्निर्माण कार्य है।

हिंदी कहानी में स्त्री विमर्श:-

हिंदी कहानीकारों मे विशेषता स्त्री विमर्श को प्रखरतासे अपने लेखन से मूखर स्वर होनेवाली कहानीकार के रुप में शिवाजी, मणिका मोहाणी, विजया चैहाण, कृष्णा अग्निहोत्री, निरुपमा सेवती, सिम्मी हर्षिता, मृदूला गर्ग, नमिता सिंह, सूर्यबाला, राणी सेठ, ममता कालिया, उषा प्रियवंदा, प्रभा अग्रवाल, मालती जोशी, मन्नू भंडारी, दीप्ति खंडेलवार, मैत्रयी पुष्पा, जयश्री राय, मालती जोशी, रोहिणी अग्रवाल, हुस्न तबस्सूम, निहा प्रभा खेतान, नासिरा शर्मा, अनामिका, वंदना राग तथ ममता सिंह आदि महिला लेखिकाओंने साहित्य सृजन किया है।

नारी को सृजनकर्ता माना जाता है। समाज में प्राचिनकाल से आधुनिक काल तक स्त्री को सन्मान मिला है, वह कुछ हद तक देखने को मिलता हैं उसकी संख्या बहूत कम है। उसकी विपरीत नारी को जादातर पुरुषसत्ताक व्यवस्था में शोषित, गुलाम, पराधिन और लाचार जिंदगी जिने के लिए मजबूर किया है। सदियों से उसका दर्द झलकता हैं। आधुनिक काल में शिक्षा के कारण स्त्री का आत्मभान जागरुक हुआ, उसकी अस्मिता, अस्तित्व वह जानने लगी। व्यवस्था के प्रति अपनी प्रतिक्रिया देने लगी। अन्याय के प्रति विद्राहे करने लगी। अपने दुःख -दर्द को साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त करने लगी। उसका दर्द अनगिणत स्तरों पर झलकता है। जैसे, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, पारिवारिक, मानसिक रचनाओंमें नारी विषयक समस्याओंका उन्होंने बेबाकीसे चित्रण किया है। आज भी समाज में शिक्षीत होने के बावजूद स्त्री के प्रति हिंसा और शोषण आए दिन बढता जा रहा है।

दहेजप्रथा, स्त्री भृण हत्या, वेश्यावृती, यौनउत्पिडन, तलाख, परित्याग आदि स्वरुपों में देखनो को मिलता है। यह सब रोखने के लिए स्त्री लेखिकाओंने साहित्य में स्त्री विमर्श को विशेष स्थान दिया है। सुभद्रा कुमारी चैहान द्वारारचित 'झाशी की राणी' नारी शक्ती का वास्तविक व यथार्थ चित्रण है। इसी प्रकार 'बिखरे मोती', 'उन्मादिनी', 'सिधेसाधे चित्र' आदि कहानीयोंके माध्यम से नारी के आंसू से भिगी मूर्ती को तोडकर लेखिका ने उसके स्वाभिमानी जीवन को व्यक्त किया है। कृष्णा सोबती उनका कहानी संग्रह 'बादलों के घेरे में' है। इनकी कहानीया मानवीय मूल्यों के टुटने की दर्द की कहानीया है। यथार्थ चित्रण, पंजाबी धरती की गंध, पात्रो की खुली साहसिक मानसिकता उनकी कहानीयों में झलकती है। राजीसेठ की कहानीयों मे स्त्री पुरुष संबंधो के संदर्भ में पारिवारिक, नैतिक मूल्यों का विघटन, रिश्तो का खोकलापण, काम अतृप्ती, अनमेल विवाह की समस्या, बलात्कार और स्त्री पर होनेवाले अत्याचार का चित्रण इनकी कहानियों में देखनो को मिलता है। चित्रा मुद्गल ने अपनी कहानीयों में वेश्याओं, मेहनत मजदूरी करनेवाली स्त्रीयों तस्करी और लडकीयों का व्यापार करनेवाली स्त्रियों का चित्रण किया है। मालती जोशी का 'ढाई अख्खर प्रेम का' और 'स्वयंवर' लोकप्रिय रचना है। 'ढाई अख्खर प्रेम का' इस कहानी की नायिका पती के शहीद होने के पश्चात उसके मा बाप को अपना समझकर पालती है। तो 'स्वयंवर' कहानी के नायिकाने पिता के मृत्यू के बाद पूरे परिवार का बोझ अपने कंधो पर लिया है। विवाह की उम्र निकल जाने पर गोपालदास जैसे अपाहिज को पति के रुप में स्विकार किया है। कर्तव्यदक्षता और नैतिक मूल्यों को दर्शानेवाली यह काहानीयां है। इनके कहानीयों मे यथार्थ पैलूओं का दर्शन होता है। नासिरा शर्मा की 'कहानीयों की दुनिया' बहुत विस्तृत है। इसमें हिंदू, मुसलमान, यहूदी जैसे कई धर्मो से संबंधीत पात्रों का चित्रण है। इनकी कहानीयों में वस्तुगत विविधता और विस्तार का कारण उनका विभिन्न पृष्ठभूमी से अद्भूत होना और व्यक्तिगत स्तर पर विविध अनुभवों से गुजरना है। तो दुसरी तरफ मेहरुनिस्सा परवेज ने आदिवासी स्त्रियों और महानगरों मे जुगी - झोपडीयों में रहनेवाली नारी का चित्रण किया है।

मैत्रेयी पुष्पाने नारी के अस्तित्व से उसके व्यक्तित्व के विकास तक की यात्रा की संघर्षमय गाथा को अपने भिन्न कृतियों में अभिव्यक्ती दी है। उन्होनें ग्रामिण परिवेश को कहानीयों को केंद्र में रखकर अपनी कथा यात्रा अरंभ की है। बुंदेलखंड और ब्रजप्रदेश उनकी कहानीयों में संवेदनाओं के साथ अंकित है। ममता कालिया उनके 'सात कहानी संग्रह' में उनकी दृष्टी झलकती है। 'सिट नं.छे' उन्होंने नारी के कई रुपों को प्रेमिका, पत्नी, माता, वृध्दा, अविवाहिता आदि को अभिव्यक्ती दी है। 'जांच अभी जारी है' कहानी संग्रह की कहानीयों में स्त्री समस्या की प्रस्तुती के साथ 'चोर पुलिस, नौकर' जैसे विषयों का प्रस्तुति दी है। एक अद्य औरत चर्चित कहानीयों का प्रमुख उदेश्य नारी जीवन की समस्या का चित्रण है। उन्होंने कहानीयों द्वारा समाज की समस्याओं को चित्रीत कर उनके प्रति मनुष्य को सचेत करने का प्रयास किया है। दिप्ती खंडेलवाल ने अपनी कई कहानीयों के माध्यम से आधुनिक युग

के असंतुष्ट दाम्पत्य जीवन पर प्रकाश डाला है। उनकी 'सिर्फ अपने लिए' का नायक राजू मिशनरी स्कूल में पढनें से अत्यंत खुले विचारों का है। उसके माता पिता अलग रहते है। माॅं -बा पके विचारों का मेल नहीं है इसलिए मा ने सालों पहले पिता का घर छोड दिया था। और शिक्षीका बनकर अपना जीवन व्यापन करती है। परंतू वह अपने पति के याद में घुटघुटकर दम तोड देती है। वो सदैव औरों के लिए जीती रही उस मा को राजू मूर्ख समझता है। उसे उसकी मा अव्यावहारिक और मूर्ख लगती है। उसे मा से कोई लगाव नहीं है। पिता के पैसों पे ऐष करते हुए राजू सफल इंजिनियर बनता है और डा. निरजा से विवाह करता है। कुछ दिनों में दोनों में तणाव निर्माण होता है। निरजा आधुनिक विचारों की है वो राजू से एक बात कहती है की, यह सच है की अब हम एक दो हो चुके है लेकिन अब भी अपने लिए पहले है, एक दुसरे के लिए बाद में। इस विचार से राजू को कुछ हातसें छुटता जा रहा है ऐसा महसूस होता है। इस कहानी में लेखिका ने आधुनिक दाम्पत्य जीवन पर प्रकाश डाला है। कहानी में दोनों पति पत्नि के पास सभी सुख सुविधाओंके होने के बावजूद भी उनका मन एवं दाम्पत्य जीवन अशांत है। 'प्रेत' कहानी में लेखिका ने नववधू के द्वंद्व का चित्रण किया है। जो आधुनिक विचारों की होने के बावजूद भी पुरानें संस्कारों से पले युवक से विवाह करती है। वह न अपनी मर्जी से जी सकती है न् अपने इच्छानूसार व्यवहार कर पाती है। वह सदैव परंपरासे चिपकी अपनी सांस से त्रस्त रहती है। इसमें लेखिका ने विवाहीत नारी की उब और अकेलेपन को प्रस्तूत किया है। मंजूला भगत ने अपनी कहानीयों के माध्यम से समस्त नारी पिडा, व्यथा, अस्तित्व, स्वावलंबी, स्वतंत्रता, अपनी पहचान अदि प्रश्नोंको समाज के सामने रखा है। नारी जीवन का क्या अर्थ है, उसका अस्तित्व क्या है? आदि प्रश्न उनकी कहानी उठाती है। 'दुसरा प्यार' में मधुरिमा और शामी ये दो विधवा नारीयां है। कपिल के मृत्यू के कारण दो विधवाऐं बनी है। एक जो सुहागण होने के बाद विधवा हुई है लेकिन दुसरी शामी मधुरिमा के पति से प्यार करती थी उसका पता किसीको भी नही था। उसे शामी और कपिल ही जानते थे। कपिल के मृत्यू के बाद मधुरिमा दोबारा विवाह करने के लिए राजी होती है। किंतू शामी कपिल को सच्चे हृदय से चाहती थी। विवाह न करते हुए भी अपना सर्वस्व कपिल को सौंप देती है। इसके उसका समर्पण स्पष्ट चित्रीत होता है। उनकी कहानी में नारी जीवन के यथार्थ चित्रण है।

उषा प्रियवंदा 'कच्चे धागे' में कुंतल निम्न वर्ग की है। भाई -बहनों की देखभाल की जिम्मेदारी होने के कारण कुंतल अधिक पढ नहीं सकती। निम्न वर्ग को अपने जिवन की कटुताएं और अभाव के कांटे चुभते रहते है। कुंतल अपनी साधारण स्थिती को भूलकर असाधारण सपनें देखने लगती है। खपरेल का छप्पर, घर में जगह जगह बनें मकडी के जाले, मटमैली बंदरगी की दिवारे, टपकता नल, गंदे मामूली कपडे और दो वक्त का रुखा सुखा खाना यह सब उसके जीवन के कठोर यथार्थ है। फिर भी उसका मन अपने पडोस में आए संपन्न परिवार के युवक के प्रति आकर्षित होता है। उसके सपनें जाग उठतें है। परंतू उसके विवाह की बात चलाई जाने पर उस युवक की बहन इस रिश्ते को मंजूर नही करती। तब कुंतल के इंद्रधनूषी सपने, उसकी सतरंगी चुडियों के साथ टुटकर बिखर जाते है। लेेखिला यह बताती है की पडोसी रिश्ते, नाते और व्यक्ति के सपने कच्चे धागे के समान होते है, आर्थिक विपन्नता के कारण झटसे टूट जाते है। मनू भंडारी ने पुरुषप्रधान समाज में नारी की स्थिती को दर्शाने का प्रयास किया है। स्त्री का दुःख, दर्द, परेशानी उनके कहानीयों में चित्रीत हुई है। उनकी कहानी की नायिका शिक्षीत है, सुविधाजीवी है और नौकरी करके अर्थार्जन करती है। पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर चलने का साहस रखती है। मनू भंडारी के नारी पात्र बुध्दी से संपन्न होने के बावजूद इनमें अतृप्ती, छटपटाहट और घूटन है। सबको इमानदारी सें सजिव किया हैं।

निष्कर्ष:

इस प्रकार समकालिन महिला कहानी में नारी विमर्श पर अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है की, आज की नारी आत्मनिर्भर होकर समाज के विभिन्न क्षेत्रों में कार्य कर रही है। तथा नारी में आत्मभान, चेतना, जागृती, अस्तित्व की पहचान निर्माण हुई है। वैचारिक चेतना उभरकर दिखाई दे रही है। वह स्वयं के हक अधिकारों के प्रति जागरुक हो गई है। उसे पाने के लिए संघर्ष करना चाहती है। किसीभी हालत में उसे हासिल करना चाहती है। समाज में बुरी परंपरा, गलत धारणाऐं और विषमतावादी नितीयों को ध्वस्त करना चाहती है। शिक्षा के प्रति सजग है उसे मालूम हुआ है की शिक्षा के माध्यम से स्त्री का उध्दार हो सकता है। कई कहानीयों के प्रसंगोंसे प्रतित होता है की, स्त्री आत्मनिर्भर बनी है। आज नारी घर परिवार के साथ समाज और राष्ट् के प्रति जागरुक है। वह राष्ट् के लिए रचनात्मक कार्य करना चाहती है।

संदर्भ ग्रंथ सूचि:

1. डा. सुखविंदर कौर बाठ, वाणी प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली 2009, समकालिन हिंदी साहित्य विविध विमर्श - प्रो. श्रीराम शर्मा, पृ. क्रं 90.
2. क्षमा शर्मा, अविष्कार पब्लिशर्स, डिस्ट्ीब्युटरर्स जयपूर- 302003 राज, 2005 - महिला जागृती और सशक्तीकरण, पृ. कं.83.
3. डा. निरजा सूद, निर्मल पब्लिकेशन शाहदरा दिल्ली 94-2006 समकालिन महिला उपन्यास लेखक एक अन्तदृष्टि पृ. क्रं.5.
4. डा. मंजू सुमन, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली 63, 2013, दलित महिलाए, पृ.क्रं.77.
5. कृष्ण दत्त पालीवाल, वाणी प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली - 2010, उत्तर आधुनिकतावाद और दलित साहित्य पृ. क्रं. 94.

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

मराठी दलित साहित्य की प्रतिनिधि आत्मकथाएं

डॉ. गोरख प्रभाकर काकडे
सहयोगी प्राध्यापक
सरस्वती भुवन कला एवं वाणिज्य
महाविद्यालय, छत्रपति संभाजीनगर (महा.)

डॉ. शेख अफरोज फ़ातेमा
सहयोगी प्राध्यापक
मौलाना आज़ाद कॉलेज ऑफ़ आर्ट्स
सायंसएंड कॉमर्स रोजा बाग
छत्रपति संभाजीनगर (महा.)

वर्तमान में बदलते समय और विचारधाराओं के अनुसार साहित्य के भी विषय और आशय बदलते रहे हैं। मुख्यतः स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद साहित्य क्षेत्र में नित नए विमर्शों, साहित्यिक आंदोलन ने विभिन्न दृष्टियों से अपनी सशक्तता सिद्ध की है। 20 वीं सदी का उत्तरार्ध और 21 वीं सदी का यह आरंभिक दौर विमर्शों का दौर कहा जा रहा है। इन विमर्शों में महिला विमर्श, आदिवासी विमर्श, अल्पसंख्यक विमर्श, किन्नर विमर्श और दलित विमर्श प्रमुख हैं। इन विमर्शों के केंद्र में अस्तित्व एवं पहचान की लड़ाई है।

प्रस्तुत शोध आलेख में हम इन्हीं में से एक अस्तित्व एवं पहचान की लड़ाई के लिए लिखे गए दलित विमर्श की बात करेंगे। इसमें भी प्रमुख रूप से मराठी में लिखी गई उन दलित आत्मकथाओं की जो सशक्तता के साथ अपने अस्तित्व एवं पहचान की आवाज लोगों तक पहुंचाती हैं।

मराठी दलित आत्मकथाकारों ने अपनी आत्मकथाओं के माध्यम से समाज के सामने अपने शोषण एवं दलित जीवन को रखा है। यह दलित आत्मकथाएं केवल किसी एक व्यक्ति की आत्मकथा न होकर यह पूरे दलित समाज की आत्मकथा है। यहां आत्मकथाकार मात्र एक प्रतिनिधि के रूप में है, क्योंकि सभी दलितों के दुःख एक समान हैं, सभी शोषण के शिकार है, सभी पिछड़े और सभी पीड़ित हैं।

आज मराठी-हिंदी ही नहीं तो अनेक भारतीय भाषाओं में दलित साहित्य अनन्य साधारण महत्त्व रखता है। दलित साहित्य के विकास की यह यात्रा सरल और सहज नहीं बल्कि अनेक अस्वीकृति के संकटों और संघर्षों की यात्रा रही है। सर्व विदित है कि दलित साहित्य में आत्मकथाएं अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। इन आत्मकथाओं में भी प्रखर रूप से हमारा जो आत्मकथाएं ध्यान खींचती हैं, वह मराठी की ही आत्मकथाएं हैं। इन मराठी आत्मकथाओं के अनुवाद हिंदी में ही नहीं तो अनेक भारतीय भाषाओं में भी हो चुके हैं, और यह अपनी दलित जीवन की संवेदनाओं को हिंदी जगत और भारतीय स्तर पर पहुंचाने में सफल रही हैं। यहां हम प्रमुख रूप से ऐसी 12 आत्मकथाओं का अध्ययन करेंगे जिनके अनुवाद हिंदी में उपलब्ध हैं। जो इस प्रकार हैं - 'बलुतं' (अछूत), 'आठवणीचे पक्षी' (यादों के पंछी) 'तराळ-अंतराळ' (तराल-अंतराल) 'उचल्या' (उचक्का), 'उपरा' (पराया) 'जिणं आमुचं' (जीवन हमारा),'अक्करमाशी' (अक्करमाशी) 'गबाळ' (डेराडंगर) 'मुक्काम पोस्ट देवाचे गोठणे' (मुक्काम पोस्ट देवाचे गोठणे), 'कोल्हाट्याचं पोरं' (छोरा कोल्हाटी का) 'बेरड' (बेरड़) आमुचा बाप आणि आम्ही (असीम है आसमा)।

इन आत्मकथाओं का अध्ययन करने के बाद पाठक के मन में अनेका अनेक प्रश्न उपस्थित होते हैं। क्या मनुष्यता इतनी क्रूर हो सकती है? क्या हम इंसान नहीं पशु हैं? हम कैसे किसी से उसके जीने के मूलभूत अधिकार छीन सकते हैं? जाति के नाम पर अमानवीय शोषण और अत्याचार करने का अधिकार उच्च कहे जाने वाली दूसरी जाति को किसने दिया? जाति-बिरादरी, सवर्ण-अछूत, उच-नीच इनमें बांटनेवाले यह लोग होते कौन हैं?

किसने बनायी यह सडी-गली वर्ण व्यवस्था? किसने दिया उन्हें यह अधिकार? सभी मनुष्य एक समान है। फिर यह कैसे कह सकते हैं कि हम सवर्ण तुम अछूत? ऐसे अनेक प्रश्न मस्तिष्क में उत्पन्न होते हैं। इन आत्मकथाओं में अस्पृश्यता की पीड़ा, शोषण, अत्याचार, अपमान का लावा उमड़ता हुआ दिखाई देता है।

'अछूत' यह दया पवार की आत्मकथा है, जो मराठी में 'बलुतं' के नाम से सन् 1978 में प्रकाशित हुई और हिंदी में अनूदित होकर 'अछूत' के नाम से सन् 1980 में प्रकाशित हुई। यह मराठी की पुस्तक रूप में प्रकाशित प्रथम दलित आत्मकथा है और हिंदी में अनूदित दलित मराठी आत्मकथाओं में भी प्रथम है। इस आत्मकथा का नायक दगडू मारुती पवार है। 'बलुतं' दलित जीवन की त्रासदी, अभावग्रस्तता, अस्पृश्यता, व्यक्तिगत जीवन की निराशा, पारिवारिक सामाजिक स्थिति एवं भारतीय समाज व्यवस्था से मिले दु:ख के बनिहारी का आलेख प्रस्तुत करती है।

यह आत्मकथा केवल एक व्यक्ति की आत्मकहानी न होकर भारतीय समाज व्यवस्था ने हाशिए पर धकेले महार जाति की कहानी है। अस्पृश्यता का श्राप भोगते हुए लोगों के व्यथापूर्ण चित्र आत्मकथा में आए हैं। दया पवार लिखते हैं, "होटल में महार, मांग, चमारों के लिए अलग कप होते हैं, उनके कान टूटा हुआ, चारों ओर मकोड़े की कतारे, चाय पीने वालों को ही वह कप धोना पड़ता।"[1]इतना ही नहीं तो आत्मकथा में दलितों में भी जातिगत अस्पृश्यता की स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। चमार महारों के कुए से पानी नहीं लेते, नाई महारों के बाल नहीं काटता और आदिवासी ठक्कर भी महारों को स्पर्श नहीं करते। ऐसे अनेक विषमतामय प्रसंगों को यह आत्मकथा अभिव्यक्त कर असंगठित दलित जातियों की जाति श्रेष्ठत्व की अहम्मन्यता को स्पष्ट कर तत्कालीन दलित समाज जीवन के यथार्थ को नग्न रूप में पाठकों के सामने रखती है। इस आत्मकथा में दरिद्रता, भूख, अस्पृश्यता के साथ-साथ आक्रोश, विद्रोह, नकार और आत्मभान आदि मुख्य बिंदु हैं।

'यादों के पंछी' यह प्रल्हाद इरनाक सोनकांबळे की आत्मकथा है। जो मराठी में सन् 1979 में पुस्तक रूप में 'आठवणीचे पक्षी' इस शीर्षक से औरंगाबाद से प्रकाशित हुई और सन् 1983 में 'यादों के पंछी' इस नाम से हिंदी में अनूदित हुई। इसमें प्रल्हाद के बचपन से लेकर मिलिंद कॉलेज में अध्यापक बनने तक की जीवन यात्रा है। प्रल्हाद के बचपन में ही उसके माता-पिता का देहांत हो जाता है।उसे अपनी दीदी के घर रहकर अनेक कामों में हाथ बटाना पड़ता है। भूख, दरिद्रता, अस्पृश्यता अस्वच्छता से लड़ते हुए वह शिक्षा पूरी करता हुआ आत्मकथा में चित्रित है। वे लिखते हैं, "किसी तरह मैंने मैट्रिक किया। कभी घास छिलकर, कभी किसी की दुकान लीपकर, कभी गोबर जमा करके, कभी आम के पेड़ों की रखवाली करके, कभी मूंगफली और कभी कपास बिनकर, कभी इमली के बीज इकट्ठा करके, कभी रोटी मांग कर, कभी पत्तल बनकर, कभी लकडियां फाड़कर, कभी मरे हुए जानवरों की खबर देकर तो कभी किसी सवर्ण की बहू को उसके मायके से लाने का काम करके मैं मैट्रिक में उत्तीर्ण हुआ तो कभी हड्डियां इकट्ठा करके बहन की सहायता की।"[2] इन सारी कठिनाइयों के बाद भी आत्मकथा में कहीं शिकायती, शोर दिखाई नहीं देता। आमतौर पर सभी दलित आत्मकथाओं भूख एक अभिशाप बनकर आई है, "जातीय अभिशाप से ग्रस्त महार-मांग आदि अस्पृश्यों के जीवन का यह यथार्थ ही था कि भूख की चिरंतन समस्या का कोई समाधान पाने की बेबसी से मृत जानवरों के मांस का सेवन एक आम बात थी।"[3] 'यादों के पंछी' में सारी बातें अनेक-अनेक बार भिन्न-भिन्न प्रसंगों के माध्यम से आई हैं।

सन् 1981 में मराठी के कथाकार शंकरराव खरात की आत्मकथा **'तराळ अंतराळ'** नाम से प्रकाशित हुई और सन् 1987 में हिंदी में 'तराल अंतराल' शीर्षक से अनूदित होकर प्रकाशित हुई। शंकरराव खरात के जीवन अनुभव के 60 वर्षों का लेखा-जोखा है। जो तीन भागों में स्पष्ट दिखाई देता है। पहला प्राथमिक शिक्षा का, दूसरा

मैट्रिक तक और तीसरा डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर मराठवाडा विश्वविद्यालय औरंगाबाद के उपकुलपति पद पर आसीन होने तक का। यह आत्मकथा शंकरराव खरात के जीवन के इन कालखंडों को प्रभावी रूप से प्रस्तुत करती है।

यह आत्मकथा एक संघर्षशील गाथा है। यह संघर्ष व्यक्तिगत ही नहीं तो महारों के समाज जीवन में व्याप्त दास्य, दारिद्र, शोषण, अन्याय-अत्याचार, अस्पृश्यता,उपेक्षा,अवहेलना, भूख आदि से है। डॉ. यशवंत मनोहर लिखते हैं, "तराल अंतराल यह जाति व्यवस्था के कारण झूलसे हुए जीवन की मृत्युगाथा है। यहां का मानव जाति को छोड़ता नहीं और जाति यहां के मानव को छोड़ती नहीं।जातचोर से भी और वर्चस्ववादी से भी नहीं छुटती।"[4] इस आत्मकथा में भारतीय समाज व्यवस्था में अवर्ण, निम्न, अस्पृश्य जातियों पर थोपे गए अतिशुद्र कार्यों का विवरणात्मक परिचय मिलता है।

'उचक्का' घुमंतू दलित जनजातियों के सामाजिक कार्यकर्ता लक्ष्मण गायकवाड़ की आत्मकथा है। जो सन् 1987 में 'उचल्या' इस नाम से मराठी में तो सन् 1992 में हिंदी में अनूदित होकर 'उचक्का' (उठाईगीर) इस नाम से प्रकाशित हुई। उचल्या यह एक संस्कृति है। इसके अंतर्गत भामटा, टकारी, पाथरूठ, घंटीचोर, कामाटी आदि का समावेश है। जो महाराष्ट्र के बाहर भी है। इनका व्यवसाय छोटी-मोटी चोरियां करके चरितार्थ चलाना है। लेखक आत्मकथा में कहता है, "रोजी-रोटी के सभी साधन और मार्ग हमारे लिए बंद कर दिए और इस कारण चोरी करके जीना ही एकमात्र उपाय हमारे समूह के सामने शेष रह गया। हम पर थोपे गए चोरी के इस व्यवसाय का उपयोग ऊपरवालों ने अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए किया है।[5]"

इस आत्मकथा में अंग्रेज सरकार ने 'जरायम पोश' करार देते हुए जन्मजात गुनहगार ठहराए 'पाथरवट' (पत्थर तोड़ने वाले), 'संतामुच्चर' समाज की व्यथा-वेदना, पुलिसिया अत्याचार, दरिद्रता, भूख, अस्वच्छता, अस्पृश्यता,जात पंचायत एवं पाथरवट समाज में व्याप्त अंधश्रद्धा, दैववाद, लोक-रूढ़ि आदि का सूक्ष्म पद्धति से चित्रण हुआ है, "दलित लेखकों की परंपरागत कथा से अलग यह ऐसी आत्मकथा है, जो दलित समाज के छोटे-छोटे अपराधों पर परवरिश कर रहे एक समूह का प्रतिनिधित्व करती है।"[6] यह आत्मकथा एक ऐसे समूह के अन्याय-अत्याचार की महागाथा है जिसे न कोई अपना गांव है न घर न खेत। उनके रिश्तेदार कहां से आते हैं कहां जाते हैं कुछ पता नहीं।

'उचक्का' में उठाईगीरी करने वाली एक विशिष्ट कौम की वेदनाओं का चित्रण किया है। इन्हें गांव छोड़ते वक्त गांव के पुलिस पाटील से प्रमाणपत्र लेना पड़ता है। इस पशुतुल्य व्यवस्था के बारे में लेखक लिखते हैं, "किसी जानवर को अगर कहीं बेचना हो या एक गांव से दूसरे गांव से जाना हो तो जैसे उसके लिए प्रमाणपत्र लेना पड़ता है और ऐसे प्रमाणपत्र के बगैर उस जानवर का सौदा नहीं होता। ठीक उसी जानवर की तरह हमारी बिरादरी का हाल था।"[7] इन्हें हर दिन थाने में हाजिरी देनी पड़ती है। उनकी स्त्रियों का अपमान किया जाता है। एक जगह तीन दिन से ज्यादा नहीं रह सकते। कही भी चोरी होने पर पुलिसों द्वारा बेतहाशा पिटा जाता है। इस तरह से उनका सामाजिक, आर्थिक, मानसिक शोषण किया जाता है। अन्यायों से पीड़ित यह समाज अर्धनग्न जीवन जीने के लिए विवश है। इस समाज का विदारक वास्तव यह आत्मकथा हमारे सामने रखती है।

'पराया' लक्ष्मण माने की यह आत्मकथा सन् 1980 में प्रकाशित हुई। और सन् 1993 में यह हिंदी में अनूदित हुई। कैकाडी घुमंतू जाति में जन्मे लक्ष्मण की यह आत्मकथा है। यह आत्मकथा महाराष्ट्र के घुमंतू कैकाडी जाति के जीवन की वीकट दयनीय अवस्था से समूचे समाज को परिचित कराती है। लक्ष्मण माने जितने लेखक के रूप में प्रसिद्ध हैं, उससे भी अधिक समाज सेवक के रूप में परिचित हैं। उन्होंने कुछ काल विधायक के रूप में भी महाराष्ट्र विधान परिषद में कार्य किया है, "डॉ. अंबेडकर की प्रेरणा से निर्मित हुए वैचारिक, वाङ्मयीन वातावरण,

शिक्षा से निर्मित अस्मिता या समाज को मनुष्यता प्राप्त करने के लिए किया हुआ दृढ़ निश्चय, दलित साहित्य आंदोलन, समाजवादी आंदोलन, युवक क्रांतिदल का कार्य इन सबका परिपक्व और विवेकपूर्ण आविष्कार यानी 'उपरा' यह स्वकथन है।"[8]

'पराया' यह आत्मकथा दलित, अस्पृश्यों से भी बदतर जीवन जीने वाले पेट के लिए गधों पर घर संसार लाद कर दर-दर, गांव-गांव भटकनेवाले, ना घर के न घाट के लोगों की समाज कहानी है। इस संदर्भ में प्रभाकर बागले लिखते हैं, "दुख की जाति नहीं होती यह भले ही सत्य हो पर हर एक जाति का दु:ख अलग होता है, क्योंकि दु:ख के कारण भी अलग होते हैं। जिसे हम अस्पृश्य कहते हैं उन्हें गांव के बाहर रहना पड़ता है, यह निश्चित ही बुरा है। परंतु उन्हें गांव के बाहर ही क्यों न हो एक जगह है, उन्हें हाडकी है, हडवळा है, सर पर छप्पर है। कैकाडी ऐसा एक समाज है कि जिसके पगडंडियां और रास्तें ही दोस्त हैं।...इसलिए कैकाडी समाज के व्यक्तियों की कहानी यानी एक 'मोबाइल अंगनी' होती है। इस दु:ख की जाती अलग है। 'उपरा' के माध्यम से घुमंतू जाति का दु:ख मराठी साहित्य में आया है।"[9] और अब 'पराया' के माध्यम से हिंदी साहित्य में आया है।

'जीवन हमारा' यह मराठी दलित लेखिका बेबी कांबळे की आत्मकथा है। जो मराठी सन् 1986 में प्रकाशित हुई और सन् 1995 में हिंदी में अनूदित हुई। यह आत्मकथा लेखिका की कम और समाज की ज्यादा है। वस्तुतः यह आत्मकथा न होकर समाज व्यथा की कथा है। पददलित समाज अस्पृश्यता, दरिद्रता, भूख की अवहेलना सहकर भी किस तरह अपनी संस्कृति, रीति-रिवाज,रुढि-परंपरा, विधि संस्कार के अन्याय-अत्याचार वाले झूठेआवरण के नीचे जीवन जीने में अपनी नियति एवं धन्यता मानता है इस पर आत्मकथा में चिंतन व्यक्त हुआ है। एक दलित स्त्री दूसरी दलित स्त्री का शोषण कितने अमानवीय स्तर पर जाकर करती है, उसका भी चित्र 'जीवन हमारा' में आया है।

'जीवन हमारा' यह दलित विमर्श के साथ-साथ स्त्री विमर्श की भी आत्मकथा है। आत्मकथा में स्त्रियों पर होने वाले अन्याय-अत्याचार का खाका खोला है और इस शोषण व्यवस्था का मुखिया स्त्री होने का दु:ख बेबी कांबळे ने व्यक्त किया है। कच्ची उम्र में जब सात-आठ साल की लड़की ससुराल में आती है, तब उसे अनेक अग्नि परीक्षाओं से गुजरना पड़ता है। सास-ससुर, देवर-नंनद, पति की घुडकियों, गालियों के साथ-साथ मार भी खानी पड़ती है। सांस तो इसकी तलाश में ही रहती की कब उसे मौका मिलता है। सांस गली-गली, मोहल्ले में घूम कर उस कच्ची उम्र वाली बहू की बुराइयां करती, "गालों को उमेठते हुए कहती अरे तेरी मां घर संभालती है या कुमार के गधे चराती है"[10] इस आत्मकथा में अस्पृश्यता और अंधश्रद्धा में जीवन जीता डोम समाज चित्रित हुआ है।

'अक्करमाशी' मराठी दलित लेखक, आलोचक शरणकुमार लिंबाळे की आत्मकथा है। जो सन् 1984 में मराठी में और 1997 में हिंदी में अनूदित रूप में प्रकाशित हुई है। सूर्यनारायण रणसुभे जी ने लिखा है कि - 'अक्करमाशी' एक मराठी शब्द, जिसका अर्थ है – एक ऐसी संतान जिसके माता पिता पारम्परिक ढंग से विवाह सूत्र में न बंधे हों, अर्थात नाजायज़ संतान'। ऐसे ही एक संतान की आत्मकथा है 'अक्करमाशी'।

'अक्करमाशी' यह केवल शरणकुमार लिंबाळे की ही आत्मकथा नहीं तो शरणकुमार लिंबाळे की माँ, भाई-बहन एवं दोगलेपन का जीवन जीनेवाले समस्त 'अक्करमाशी' माने जानेवाले समाज के साथ हुए सामाजिक अन्याय-अत्याचार एवं बलात्कार की है। लेखक लिखते हैं, "यह कथा मेरी, व्यथा माँ की आत्मकथा एक समाज की। 'अक्करमाशी' जितना मेरा व्यक्तिगत जीवन है, उतना ही वह जनरल वार्ड है।"[11] 'अक्करमाशी' यह एक दहकता हुआ इस्पाती दस्तावेज है। जिसमें रखैल एवं उनके बच्चों की करुणामय दास्तां है। इसलिए इसे अपनी आत्मकथा के साथ ही शरणकुमार ने 'जनरल वार्ड' भी कहा है। इसमें दो अहम सवाल उठाए गए हैं - मैं कौन हूं? और क्या

मैं समाज को स्वीकार हूं? पहले प्रश्न का उत्तर तो 'अक्करमाशी' के रूप में मिल गया पर दूसरा प्रश्न यहां के समाज व्यवस्था से पूछा गया है, जो अब तक अनुत्तीर्ण ही है।

'अक्करमाशी' में लेखक को सामाजिक व्यवस्था के कारण मिलने वाले अपमान, विशेषणों जैसे- धेड का बच्चा, नाजायज औलाद, रंडी का बेटा आदि का समावेश है। जिसके कारण आत्मकथा में आत्मसंघर्ष, आत्मापीड़ा, आत्मविडंबना एवं व्यवस्था विरोध के प्रखर भाव प्रकट हुए हैं।

'छोरा कोल्हाटी का' मराठी लेखक किशोर शांताबाई काळे की यह आत्मकथा मराठी में सन् 1994 में प्रकाशित हुई और हिंदी में सन् 1997 में अनूदित हुई। यह आत्मकथा कोल्हाटी जाति के मां और बेटे के वात्सल्य वियोग की करुण कहानी है। कोल्हाटी समाज में नाचने वाली स्त्रियों के जीवन की मर्मांतक व्यथा व सामाजिक शोषण, दारिद्र एवं रूढ़ियों का एक संवेदनशील मन ने लिया हुआ परामर्श है।

एक तरफ यह आत्मकथा को कोल्हाटी समाज के नाचने वाली स्त्रियों की और उनकी कमाई पर बैठकर खाने वाले मां-बाप, भाई-बहन की कहानी है तो दूसरी ओर, "कोल्हाटी जाति में जन्म लेने वाले पलनेवाले, निश्चय, एकाग्रता व परिश्रम के बल पर दारिद्र में भी एम.बी.बी.एस. डॉक्टर बने किशोर शांताबाई काळे की करुण कहानी पाठक को अस्वस्थ्य करती एक अपरिचित दुनिया में ले जाती है"।[12] कोल्हाटी समाज आज भी मुख्य धारा से अलग है।कोल्हाटी समाज की स्त्रियों के चेहरे पर लगाए हुए रंगों के पीछे कई दु:ख होते हैं। जो सभ्य समाज में रहने वाले लोग नहीं जान पाते।

'डेराडंगर' यह दलित लेखक दादासाहेब मोरे की आत्मकथा है। जोसन्1983 में 'गबाळ' नाम से मराठी में प्रकाशित हुई जो सन् 2001 में 'डेराडंगर' नाम से हिंदी में अनूदित हुई। इस आत्मकथा में लेखक लिखते हैं, अपनी आत्मकथा 'गबाळ' में मैंने अब तक जो अनुभव किया, देखा, भोगा और जिसे आज भी जी रहा हूं, भुगत रहा हूं इसका यथार्थ चित्रण किया है। इस आत्मकथा का प्रत्येक पात्र आज भी इसी वास्तविक परिस्थिति में जी रहा है। समाज में स्थित ऐसी इकाई का जिसका खुद अपना अस्तित्व नहीं उस कुडमुडे जोशी (डुग्गी जोशी) का जीवन इसमें विस्तृत रूप से चित्रित किया है। यायावर जाति के दु:ख-दर्द व्यथा-वेदना, रूढ़ि-परंपरा, रीति-रिवाज, अंधश्रद्धा और अशिक्षा और स्त्रियों के पशुतुल्य जीवन का वास्तविक दस्तावेज मैंने आपके सम्मुख प्रस्तुत किया है।"[13]

भारत जैसे खंडप्राय बहुभाषिए, बहुप्रदेशीय, बहुजातिय अर्थात बहुरूपिया देश में अनेक अस्तित्वहीन यायावरी करने वाले बहुरुपिए हैं। इन्हीं बहरूपियों में 'कुडमुडे जोशी' एक जाति है। जिन्हें न अपना गांव है, न अपना घर है। आज यहां तो कल वहां सर्दी-नमी-धूप-बारिश से संघर्ष करते हुए अपने कुत्तों और मरियल घोड़े के साथ अपना कबीला लेकर घूमते हैं। जो हमें आदिमानवीय कबीला संस्कृति की याद दिलाकर हमारे पिछड़ेपन की वास्तविक स्थिति से परिचित कराते हैं। यह लोग गांव से थोड़ी दूर बंजर भूमि में अपना तिरपाल बनाकर 'डेराडंगर' (गबाळ) डाल देते हैं। और गांव में लोगों का भविष्य बता कर भीख मांगते हैं। यह आत्मकथा यायावरी, भीख और लेखक की शिक्षा को केंद्र में रखकर उसके चारों ओर घूमती है। आत्मकथा लेखक परंपरागत व्यवसाय की ओर पीठ करके अनेक संकटों का सामना करते हुए हाथ में भीख मांगने की झोली और लेखनी लेकर अपनी बी.कॉम. तक की शिक्षा पूरी करता है।

भारतीय सामाजिक संरचना के अंतिम नीचे वाले छोर पर रखी पंचम या अंत्यज समझी जानेवाली अस्पृश्य जाति के जीवन को माधव कोंडविलकर ने अपनी आत्मकथा '**मुकाम पोस्ट देवाचे गोठणे'** के माध्यम से हमारे सामने रखा है। जो सन् 1979 में प्रकाशित हुई। सन् 2001 में जिसका हिंदी अनुवाद हुआ।

माधव कोंडविलकर ने इस आत्मकथा में महाराष्ट्र के कोकण प्रदेश में रहने वाले चमारों के समाज-जीवन एवं वहां के लोक-जीवनका चित्रण किया है। इस आत्मकथा में समाज में व्याप्त उच-नीच, अस्पृश्यता, अज्ञानता, नशाखोरी आदि के प्रति शोक व्यक्त किया है। मानव अस्तित्व को अस्तित्वहीन करने वाली अस्पृश्यता के कारण होने वाली पीड़ा, बाल मन पर पड़ने वाला अस्पृश्यता का प्रभाव आत्मकथा में विशेष ध्यान खिचता है। लेखक लिखते हैं, "बचपन में गांव के रास्ते चलने लगे तो गांव वाले कहते, बच्चे उस तरफ हो! हमें स्पर्श मत कर! दुकान पर जाने के बाद वाणी चिल्लाकर कहता, ये बच्चे पैसे ऊपर से डाल! नहीं तो मैं अपवित्र हो जाऊंगा। पनघट पर जाने पर सवर्णों की स्त्रियाँ कहती, बच्चे पानी दूर उस नीचे वाली तरफ से भर! यहां मत आ हमें छूत लग जाएगी ।"[14] इस पीड़ा से भी बढ़कर अस्पृश्यता की पीड़ा उन्हें अध्यापकीय जीवन में उस वक्त होती है जब उन्हें पता चलता है कि स्कूल छूटने के बाद बच्चे नाले पर नहाते हैं, क्योंकि उन्हें पढ़ाने वाले मास्टर एक अस्पृश्य हैं। इन प्रसंगों से लेखक का सुसंस्कृत मन छिन्न-विच्छिन्न होता दिखाई देता है।

इस आत्मकथा से अभिव्यक्त होने वाली प्रदेशिकता वहां के चमारों के जीवन के साथ-साथ अन्य दलित एवं सवर्ण जीवन को भी प्रादेशिक संस्कृति के साथ अभिव्यक्त करती है।

'बेरड़' यह भीमराव गस्ती की आत्मकथा है। जो सन 1987 में मराठी में प्रकाशित हुई। और हिंदी में भी इसी नाम से अनूदित होकर प्रकाशित हुई है। यह आत्मकथा विमुक्त जनजातियों के जीवन संघर्ष का दस्तावेज है, "विमुक्त जनजातियों का इतिहास बताता है कि किस तरह कागज का एक टुकड़ा अनगिनत समुदायों और हजारों-हजार लोगों के भाग्य को अगले सौसालों के लिए बदल सकता है। कागज का यह टुकड़ा था अपराधिक जनजातीय अधिनियम 1871 जिसके द्वारा भारत की कुछ जनजातियों को पुश्तैनी रूप से अपराधी रूप में वर्गित किया गया, और उनके सब सदस्यों को (नए पैदा होने वाले समेत) इस जनजाति में जन्म लेने मात्र के आधार पर अपराधी घोषित कर दिया गया है। इस अधिनियम का बोझ ये जनजातियां आज तक ढो रही हैं।"[15] इन्हीं जनजातियों में सेभीमराव गस्ती एक है। जिन्होंने अपनी आत्मकथा 'बेरड' के माध्यम से इनी समस्याओं को उकेरा है।

भीमराव गस्ती एक सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में प्रसिद्ध हैं, जो एक ऐसे समाज में पैदा हुए जो प्रकृति से गुस्सैल, अज्ञानी, निरही एवं बहादुर है, जो किसी के फुसलाने पर तुरंत खून खराबे पर उतर आता है। जो स्वयं को वाल्मीकि का वंशज मानकर चलता है। ऐसे समाज के बच्चों की शिक्षा-दीक्षा का कोई चलन नहीं था किंतु भीमराव गस्ती ने बड़ी कठिनाईयों से शिक्षा प्राप्त की। जब वे स्कूल जाने लगे जब वे हर किसी को अपना परिचय देते तब उन्हें यही सवाल पूछा जाता कि, "तू बेरड़ जाति का है ना?"[16] 'तेरा बाप चोरी ही करता होगा'? जैसे उपेक्षा भरे क्षोभ व्यक्त करने वाले सवालों का सामना करना पड़ता। इस तरह के दिल दहलाने वाले कई प्रसंग इस आत्मकथा में आए हैं। यह आत्मकथा 21 वीं सदी में हो रहे बेरडों के शोषण के साथ उनके सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति पर भी प्रकाश डालती है।

'असीम है आसमा' यह पुणे विश्वविद्यालय पुणे की भूतपूर्व उपकुलपति, भारतीय अर्थतज्ञ एवं नियोजन आयोग के सदस्य रहे चुके डॉ. नरेंद्र दामोदर जाधव की आत्मकथा है। जो मराठी में सन् 1993 में प्रकाशित हुई और सन् 2006 में हिंदी में अनूदित होकर प्रकाशित हुई। मराठी में इसका शीर्षक 'आमचा बाप आणि आम्ही' यह है। यह आत्मकथा एक व्यक्ति की, एक पीढ़ी की या एक व्यक्ति द्वारा लिखी आत्मकथा नहीं है। इसमें परिवार के अनेक सदस्यों के अनुभव एवं यादें है। इस आत्मकथा में लेखक के पिता स्वयं लेखक और लेखक की पुत्री इन तीन पीढ़ियों की यात्रा हुई है। इसी कारण से यह सभी अन्य दलित आत्मकथाओं में अपना अलग स्थान रखती है। साथ ही यह आत्मकथा वेदना के साथ उल्लास को भी अभिव्यक्त करती है। आत्मकथा का केंद्रीय चरित्र या नायक

दामू अर्थात लेखक के पिता दामोदर जाधव हैं। जिनके व्यक्तित्व एवं कार्य पर प्रकाश डालने का काम स्वयं दामू की पत्नी सोनू, बेटा नरेंद्र का जीवनांश करता है। जिससे दामू के स्वभाव की विशेषताएं एवं विचार प्रकट होते हैं। दामू के विचार में हर काम लगन से करना चाहिए, जो अव्वल दर्जे पर पहुंचा दे। दामू के शब्दों में, "मुझे बस इतना ही कहना है तू जो भी करे सबसे अव्वल दर्जे का कर। तू चोर बनना चाहता है, कोई बात नहीं।तू खूब बढ़िया-अव्वल चोर बन ताकि लोग तुझे सलाम करें। दुनिया तुझे देखे और कहे वाह! क्या चोर है। क्या दिमाग पाया है।"[17]

साथ ही यह आत्मकथा दलितों के भूख, दारिद्रय, शोषण, अंधश्रद्धा, छुआछूत, सामाजिक, आर्थिक विषमता आदि के प्रति आक्रोश एवं विद्रोह का भाव व्यक्त करती है। परंपरागत सफेदपोश समाज द्वारा अंगीकृत मूल्यों को नकार देती है, दलित आंदोलन के स्वरूप पर प्रकाश डालती है और आत्मभान एवं आत्मशोध की पूर्ति करती है। परिणामस्वरूप इन सभी बलस्थानों का एक जगह मिलना आत्मकथा का बनावटी रूप सामने लाकर उसे आरंभिक दलित आत्मकथाओं की कार्बन कॉपी सिद्ध करता है। आत्मकथा में आया हर एक प्रसंग निश्चित उद्देश्य सामने रखकर लिखा हुआ लगता है । साथ ही आत्मकथा आत्मप्रौढ़ित्व, बड़बोलेपण को भी न टाल सकी है ।

मराठी दलित आत्मकथाओं में अंकित सामाजिक पक्ष का जब हम अध्ययन करते हैं, तो एक विस्तृत परंपरागत संहिता में बंधित विषमतामय सामाजिक संरचना सामने आती है। इस संरचना में दलित सबसे नीचे होने का यथार्थ आत्मकथाएँ सामने लाती हैं । मराठी दलित आत्मकथाओं में अंकित सामाजिक यथार्थ दलितों के लोक-जीवन, शोषण, अन्याय-अत्याचार एवं विषमतामय जीवन का यथार्थ है ।

मराठी दलित आत्मकथाएँ भारतीय समाज-व्यवस्था के वैषम्य मूलक सामाजिक यथार्थ को सामने लाती हैं, कि किस तरह से इस व्यवस्था ने मनुष्य को सवर्ण-अवर्ण, अमीर-गरीब, स्पृश्य-अस्पृश्य, मालिक-गुलाम, शोषक-शोषित, श्रेष्ठत्व-कनिष्ठत्व की विडम्बनाओं में विभाजित किया है ।

मराठी दलित आत्मकथाएँ दलितों के अस्पृश्यता, भूख और दारिद्र्य की केंद्रीभूत समस्याओं को यथार्थ रूप में सामने लाकर एक भयानक, अमानवीय, पशुतल्य, गुहावासी, आदिमानवीय जीवन वास्तव को स्पष्ट करती हैं, और इनसे निजात पाने का संकल्प रखती हैं ।

मराठी दलित आत्मकथाओं के माध्यम से महाराष्ट्र के महार, मांग, चमार, डोम, कैकाड़ी, बेरड़, कोल्हाटी, कुड़मुड़े जोशी, उठाईगीर आदि जातियों के जन-जीवन (लोकसंस्कृति) को समझा जा सकता है, कि उनमें जन्म-विधि, नामकरण संस्कार, पांचवीं-पूजन, मृतक विधि, विवाह पद्धति, मान-सम्मान, लोक-विश्वास, लोक-रूढ़ि, लोक-प्रथा, लोक-कला, पर्व, उत्सव, त्यौहार आदि का कितना प्राबल्य एवं कम्पलशनहोता था।

मराठी दलित आत्मकथाएँ दलित स्त्री के वर्ग, वर्ण एवं लिंग के आधार पर हो रहे शोषण एवं दलित्व को उजागर करती हैं। आत्मकथा में आनेवाली 'स्त्री' व्यक्ति रेखाएँ दारिद्र्य में रहनेवाली पति से पीटनेवाली, परिवार के लिए जी तोड़ मेहनत-मजदूरी करनेवाली, भारतीय समाज-व्यवस्था का बलात्कार सहनेवाली, प्रतिकूल परिस्थितियों में आशावाद रखनेवाली, कभी माँ, कभी पत्नी तो कभी रखैल बनकर पुरूष को कठिन, अंधकारमय समय में रोशनी, धैर्य, विश्वास, ढाड़स देनेवाली और अंधश्रद्धा दैववाद की बैसाखियों को आधार बनाकर जीवन जीने वाली हैं।

मराठी दलित आत्मकथाकारों ने दलित समाज ने जो भोगा है, सहा है उसे तथ्यात्मक रूप में सामने लाकर अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता का परिचय दिया है। दलित आत्मकथाओं में सामाजिक प्रतिबद्धता एक मूल्य के रूप में आयी है। दलित आत्मकथाकार अपनी आत्मकथाओं को भारतीय समाज-व्यवस्था के सौतिले व्यवहार से निजात पाने का साधन एवं हथियार मानते हैं। सामाजिक प्रतिबद्धता के कारण ही लेखक आत्मकथा में केवल

अपने अकेले की समस्याओं के साथ नहीं आता, तो वह अपने दलित समूह के समस्याओं के साथ आता है और उससे निकलने के लिए छटपटाता है।

मराठी दलित साहित्य यह डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर द्वारा चलाये गये दलितोत्थान के आंदोलन का अपत्य है। डॉ. बाबासाहेब द्वारा चलाये गये आंदोलन एवं दलित आत्मकथाकारों की जीवन-यात्रा साथ-साथ चलती है। परिणामस्वरूप दलित आत्मकथाओं में दलित आंदोलन के स्थल, काल, घटना, स्वरूप, दशा एवं दिशा का समावेश हुआ है। कुछ आत्मकथाकार डॉ. बाबासाहेब के कार्य एवं विचारों के संपर्क में आने के कारण उससे परिचित थे, जिसे आत्मकथाओं में व्यक्त किया है।

मराठी दलित आत्मकथाएँ दलितों के अमानवीय जीवन-वास्तव के आशय को व्यक्त करने के लिए जीवन-वास्तव से संबंधित विषयों का चयन करती हैं। जिसकी प्रस्तुति में आक्रोश, विद्रोह, नकार, आत्मभान, आत्मशोध, तटस्थता, स्पष्टता, प्रामाणिकता आदि विषयगत विशेषताओं का समावेश हैं। मराठी दलित आत्मकथाओं में पग-पग पर होनेवाले अन्याय, अत्याचार, शोषण, सामाजिक-आर्थिक विषमताओं, अमानवीय जीवन एवं मनुवादी सामाजिक संरचना के प्रति आक्रोश दिखाई देता है। वह आक्रोश विषय को बोझिल एवं दुरूह या उबाउ नहीं बनाता तो संवेदनशील एवं कारूण्यमय बनाता है। साथ ही यह आक्रोश लेखक एवं दलितों की अगातिकता एवं असमर्थता को भी स्पष्ट करता है ।

हिंदी में अनूदित दलित मराठी आत्मकथाओं के बारे में संक्षेप में कह सकते हैं, कि यह आत्मकथाएँ लेखक के व्यक्तिगत जीवन के साथ-साथ दलित समाज के जीवन-वास्तव को व्यक्त करनेवाला दहकता हुआ इस्पाती दस्तावेज हैं, जो दलितों के भूख, अस्पृश्यता, दारिद्रय, अभाव, अंधश्रद्धा, शोषण, अज्ञान, अन्याय-अत्याचार, अशिक्षा आदि के साथ ही समग्र विषमतामय स्थितियों को समाज के सामने लाती हैं और इन समस्याओं सेबाहर निकलने का आशावादी संदेश देती हैं।

संदर्भ :

1. दया पवार - अछूत, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि. दिल्ली, द्वि.आ. 2006,पृ. 74
2. प्र. ई. सोनकांबले - यादों के पंछी, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि. दिल्ली, सं. 2004,पृ. 77
3. गुलाबराव हाडे -मराठी दलित साहित्य:आत्मकथा के मीलस्तंभ, जयभारती प्रकाशन,इलहाबाद, सं. 2007, पृ. 212
4. डॉ. यशवंत मनोहर - आंबेडकरी चळवळ आणि साहित्य, अभय प्रकाशन नागपुर, सं. 1999, पृ.140
5. लक्ष्मण गायकवाड - उचक्का, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि. दिल्ली, सं. पेपरबैक्स 2004,पृ. लेखक की ओर से - v
6. डॉ. सुनीता साखरे - हिंदी और मराठी का दलित साहित्य : एक मूल्यांकन, अमन प्रकाशन कानपुर, सं. 2008,पृ. 49
7. लक्ष्मण गायकवाड - उचक्का, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि. दिल्ली, सं. पेपरबैक्स 2004, पृ. 10
8. डॉ. आरती कुसरे - दलित स्वकथने : साहित्य रूप, विजय प्रकाशन नागपुर, सं.1991, पृ. 65
9. प्रभाकर बागले - 'अनुभवाच्या डहाळीला आलेला स्फोटक अंकुर उपरा', अनुष्टुभ, जुलाई-अगस्त, 1982 पृ. 37
10. बेबी कांबळे - जीवन हमारा,किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली,सं.1995,पृ.106
11. शरण कुमार लिंबाळे - 'बखर एका अक्करमाशीची', अबकडई - दिवाळी अंक, 1986 पृ. 52-53
12. डॉ. सुरेश पैठणकर - उगवतीचे रंग, ए.मे.जू.- 2006, पृ. 20
13. दादासाहेब मोरे - डेराडंगर, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि. दिल्ली, सं. 2001, पृ. लेखक की ओर से - viii
14. माधव कोंडविलकर - मुकाम पोस्ट देवाचे गोठणे, राज्य मराठी विकास संस्था, मुंबई, सं. 2001,पृ. 7
15. स्वरा भास्कर - उचक्का आत्मकथा के मंचन के अवसर पर प्रकाशित पत्रक से (राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय)
16. भीमराव गस्ती- बेरड़, विद्या विहार प्रकाशन, कानपुर,सं. 2006, पृ. 46
17. डॉ. नरेंद्र जाधव - असीम है आसमा, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं.2006, पृ. 22

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

समकालीन हिंदी साहित्य में मजदूर तथा कृषक जीवन

नितिन सुभाषराव कुंभकर्ण

शोधार्थी

डॉ.बाबासाहेब आंबेडकर मराठवाडा विश्वविद्यालय, छत्रपति संभाजीनगर

शोध सारांश :

किसान को पुरे जगत का पालनहार कहा जाता है| किसान इस धरती को माँ मानकर उसकी झोली धान से भरकर जी-जानसे उसकी सेवा करता है; धूप,बारिश,ठण्ड की परवा किए बिना खेत में काम करता है| फसल को छोटे बच्चे की तरह संभालता है|फसल को समय – समय पर खाद देता है,पानी देने के लिए और फसल की निगरानी करने के लिए रात को खेतो मे जाता है|किसानो को बहुत कठिण परिश्रम करने पड़ते है तब जाके यह धरती माँ वापिस किसान की झोली धन – धान से भर देती है| लोगों को किसान का सिर्फ अनाज दिखता है पर उसके पीछे के श्रम नहीं दिखते है| मजदूरों का हाल भी वैसा ही है ; बहुत से लोग मजदूरों से काम करके लेते है पर उनके काम का उचित मोल नहीं देते है |ज्यादातर लोग तो यह भी भूल जाते है की मजदूर भी एक इंसान है उससे इंसानियत से पेश आना चाहिए | किंतु आज बड़े अफसोस के साथ कहना पड़ता है की किसान एवं मजदूरों की हालत पर किसी को कोई लेना-देना नहीं है | किसान ना जाने कितने सालों से साहुकारो,बैंक के ऋण में दबे आ रहे है| आज किसान को जगत का पालनहार तो कहा जाता है पर बहुत बार यह पालनकर्ता के बच्चे भूखे पेट सो जाते है क्योकि बहुत बार कुदरत के कहर का सामना फसलों को करना पड़ता है| इससे फसल बचती है तो विभिन्न किस्म के जंगली जिव,इन्सान फसलो को नुकसान पहुचाते है |इससे भी फसल बच जाये तो यह कह नहीं सकते के उसको अच्छा बाजार मूल्य मिल जाए| बहुत बार तो किसानो के बुवाई का खर्चा नहीं निकल पाता है| खेती में लगाया हुवा पैसा मिट्टी में मिल जाता है इसलिए कहा की जगत का पालनहार बहुत बार अपने परिवार के साथ भूखा सो जाता है यह बहुत बड़ी विडम्बना किसानया कृषक जीवन की है |

बीज शब्द :

१) किसान की दुर्दशा २) मजदूरों की स्थिति ३) अन्याय ४) कर प्रणाली ५) साहूकार

प्रस्तावना :

भारत कृषि प्रधान राष्ट्र है।हमारे देश की अर्थव्यवस्था आज भी कृषि पर आधारित है। वैसे देखा जाए तो हजारों सालों से देश के ज्यादातर लोग किसानी करते हैं। ग्रामीण परिवेश में तो नब्बे फ़ीसदी लोग कृषि या कृषि पर आधारित व्यवसाय करते हैं। कृषि से ही इन लोगों का भरण पोषण होता है हमारे देश की ज्यादातर जमीन उपजाऊ है|उन्हें हम माता का स्थान देते हैं हमारी यह धरती फसल,अनाज के रूप में हमारी भूख मिटाती है। इन फसलों को हीरे मोती मानकर कहते हैं मेरे देश की धरती सोना उगले उगले हीरे मोती मेरे देश की धरती| सभी लोगों का भरण पोषण करने वाली धरती को जोतने का काम किसान करता है| वास्तविकता से देखा जाए तो यह किसान पूरे विश्व का अन्नदाता है किंतु बहुत बार ऐसा होता है कि वह स्वयं भूखा पेट सोता है|उसे उसके फसल की कीमत तक नहीं मिलती जिसके चलते वह आत्महत्या करने तक पहुंच जाता है| खुशहाली से जीवन व्यापन करने की एक छोटी सी इच्छा भी उसकी पुरी न होकर उसकी जिंदगी कैसे बत से बत्तर होती है उस पर

हम इस शोधालेख में चर्चा करेंगे। सामाजिक और आर्थिक स्थिति समाज के दायरे में सबसे बदनसीब तथा गरीबी और शोषण का शिकार होने वाले दो घटक है - मजदूर और दूसरा किसान! यह बात कहनी अतिशयोक्ति न होगी। संसार के पाटे में यही दो घटक सबसे ज्यादा पीसते हैं क्योंकि मजदूर समाज रचना में सबसे निम्न दर्जे का होता है| उसकी सामाजिक कीमत ना के बराबर होती है बड़े-बड़े आदमी अपना काम करने के लिए नौकर या मजदूर रखते हैं| उनसे बहुत ज्यादा पैमाने पर काम करके लेते हैं किंतु उनके काम का दाम नहीं देते थे ;उनसे सिर्फ काम करके लेते थे|मालिक जो देगा उसी पर अपना जीवन बसर करना पड़ता था| 'प्रेमचंद' द्वारा रचित उपन्यास 'गोदान' में राय साहब के यहाँ काम करने वाले नौकर मजदूरी के साथ एक समय का भोजन माँगने की बात करते हैं और उस वजह से काम बंद करने का फैसला लेते हैं| यह बात राय साहब को उनका चपरासी कहता है- "सरकार,बेगारो ने काम करने से इनकार कर दिया है |"१ तो राय साहब उन मजदूरों को धमकाने की बात करते हैं| यानी उन मजदूरों को कोई कीमत नहीं है;उनका कोई मोल नहीं है ऐसा हमें प्रतीत होता है| गोदान इस उपन्यास में कृषक जीवन की यानी किसानी की खस्ता हालत पर प्रकाश डाला है| गोदान उपन्यास का एक पात्र जिसका नाम 'होरीराम' है| वह गरीब किसान है उसके पास बहुत थोड़ी जमीन होती है;जिसमें उसके परिवार का भरण - पोषण भी ठीक तरह से नहीं होता है| खेती से मिलने वाले अनाज पर बहुत ज्यादा कर होते थे जिसके चलते उनको उनके मेहनत के जितना फायदा नहीं होता था| होरी के परिवार में उनकी पत्नी धनिया,एक बेटा गोबर और दो लड़कियाँ रूपा और सोना यानी कुल पाँच लोगों का परिवार था| पर उतनी खेती पर घर खर्च भी नहीं निकलते थे; छोटे किसानों को कोई भी अधिकार न थे उनकी सामाजिक स्थिति ज्यादा ठीक नहीं थी| समाज में बड़े लोग कुछ भी करें उनको कोई रोक-टोक नहीं थी किंतु आम लोग या आम किसानों के लिए बहुत सारे व्यवधान थे| 'गोदान' मे होरी का लड़का गोबर जब दूसरी जाति की लड़की से शादी करता है तो उसके बिरादरी के लोग के शिकायत से पंचायत उसे 'सौ रुपये नगद और तीस मन अनाज का डांड लगाया जाय|"२ ऐसा कहती है ; गोबर तो गांव छोड़करशहर चला जाता है पर होरी को यह जुर्माना भरना पड़ता है| इस जुर्माने के लिए होरी दातादीन से तीस रुपये का कर्ज लेता है जो बढ़कर सौ रुपये हो जाता है| जिसको भरने के लिए होरी के खेत में खड़ा अनाज भी पूरे कर्ज का सूद भरने में ही चला जाता है; बाद में उसे अपनी जमीन भी छोड़नी पड़ती है|अपनी दोनों बेटियों की शादी में होरी को बहुत परेशानियों का सामना करना पड़ता है| सोना की शादी में लड़केवाले दहेज़ के लिए अड़े बैठे थे; बड़ी मिन्नतें करने के बाद लड़केवाले शादी के लिए तैयार होते है| अपनी दूसरी बेटी रूपा को एक तरह से होरी बेच ही देता है क्योंकि अपनी गरीब परिस्थिति के कारण वह रूपा की शादी उससे कई ज्यादा बड़े एक अधेड़ उम्र के इंसान से कर देता है इसी आत्मग्लानी से होरी आगे मृत्यु को प्राप्त हो जाता है| 'पूस की रात' इस कहानी में देखने को मिलता है कि 'हल्कू' नाम का एक छोटा किसान है| खेत जोतने के लिए वह एक साहूकार से कुछ रुपए ब्याज पर लेता है| हल्कू को अपनी खेती से ज्यादा आमदनी नहीं होती है इसलिए वह कुछ अन्य काम भी करता था। एक समय जाड़े के महीने में साहूकार हल्कू से अपने ब्याज के पैसे माँगने आता है तब हल्कू अपनी पत्नी से तीन रुपये लाने को कहता है| पत्नी उसे कहती है – " तीन ही तो रुपये है ;दे दोंगे तो कम्बल कहाँ से आवेगा |"३ तुमने बड़ी मेहनत करके यह तीन रुपये कमाए है; अभी पूस का महीना आ रहा है| ठंड बहुत गिरती है तुम्हें खेतों में जाना पड़ता है तो तुम इसका एक कंबल ले लो| हम फसल आने के बाद साहूकार को सूद के साथ पूरे पैसे दे देंगे| पर उस समय हल्कू कहता है कंबल का बाद में देखेंगे इस कर्ज के फंदे से मेरी गर्दन हटने दो| उस समय दोनों में बहस होती है पत्नी कहती है कि कैसे जाने क्या मालूम इतना सारा सूद चुकाया है पर पैसे तो वैसे की वैसे ही रह जाते हैं| पत्नी के इतना समझाने के बावजूद भी हल्कू नहीं माना उसने वह तीन रुपये साहूकार को देकर अपने कर्ज में जमा करने को कहा| पूस का महीना शुरू होने के बाद फसल की निगरानी करने के लिए

हल्कू खेत मे जाता है तब उसका कुत्ता 'जबारा' भी उसके साथ खेत में जाता है| पूस के महीने की खून जमाने वाली ठंड के कारण हल्कू आग जलाकर शेक रहा था| ठंड बहुत ज्यादा होने के कारण और बदन पर कंबल ना होने के कारण उसको ज्यादा ठंड लग रही थी| वह आग जलाकर शेक रहा था और उसका कुत्ता भी उसके साथ बैठकर शेक रहा था| थोड़ी देर में कुछ आवाज उसके कानों पर पड़ती है पर वह बहुत ठंड होने के कारण आग के पास से उठता नहीं है| उधर कुत्ता जोर-जोर से भोंक रहा था; हल्कू सोचता है कि जबरा के कारण कोई भी नीलगाय या जानवर खेत में आकर फसल नहीं खा सकता है ;यह सोचकर आग के पास ही बैठे रहने के कारण गर्मी से उसे नींद लग गई| उधर कुत्ता भी भोंक - भोंक कर थक गया था| हल्कू को भी कब नींद लगी पता भी नहीं चला जब सुबह उसे उसके पत्नी ने आवाज लगाई और हल्कू को उठाया और बोली " वाह ! तुम्हारी रखवाली? नीलगायें पूरा खेत चर गई तुम और तुम्हारा कुत्ता दोनों सोए पड़े हैं| हल्कू नींद से हड़बड़ा कर उठता है देखा तो फसल पूरी की पूरी नीलगायें चर गई थी| फसल का हुआ नुकसान देखकर हल्कू थोड़ा उदास हो जाता है लेकिन तुरंत अपनी छवि बदलकर अपनी पत्नी को बोलता है कि अच्छा हुआ नीलगायें पूरा खेत चर के चली गई| अब मुझे इतनी ठंड में रात को फसलों की निगरानी करने की जरूरत नहीं है तुम्हारे कहने के मुताबिक अब मैं नौकरी करूंगा और नौकरी करके मालगुजारी भरूंगा| नीलगायों द्वारा पूरा खेत चर जाने से हल्कू को बहुत बड़ा नुकसान उठाना पड़ता है| जिस फसल के बलबूते हल्कू इस साल साहूकार का ऋण चुकाने की बाते करता था| इस साल फसल अच्छी होने के कारण कुछ पैसे शेष रहेंगे जिससे परिवार को थोड़ा खुशहाल बनाने का सपना उसका मन में ही रह जाता है |इन्ही फसलों के बलबूते उसकी एक छोटी सी आशा खुद को कंबल लेने की वह भी पूरी नहीं होती है| उसको बहुत बड़ा आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता है| किसानों की यह खस्ता हालत मन को सुन्न कर देने वाली है किसान की कोई बड़ी-बड़ी चाहते या बड़े-बड़े अरमान नहीं है उसका तो बहुत छोटा सा सपना है लेकिन परिस्थितियाँ वह भी पूरा होने नहीं देती है; यह बहुत बड़ा विडंबन है। शोषण व्यवस्था स्वतंत्रता पूर्व कालखंड में अंग्रेजों द्वारा सबको लूटा जाता था| मगर उसके साथ-साथ महाजन, साहूकार, जमींदार लोग आम आदमी, मजदूर और छोटे किसानों का आर्थिक, शारीरिक शोषण की किया करते थे| मानो शोषण करना उनका जन्मसिद्ध अधिकार है| महाजन, साहूकार, जमींदार,उच्चवर्णिय लोगों के घरों में धार्मिक या अन्य कोई उत्सव हुआ करता था तब सबको बड़े लोगों को गरीब लोगों द्वारा शगुन या नजराना देना पढ़ता था| मजदूर, किसान इनके द्वारा उत्सव में सभी काम किए जाते थे; यह बड़े आदमी तो शानोशौकत से आराम फरमाते थे पर उनकी खिदमत में बेचारे गरीब मजदूर और किसान झुलस जाते थे| 'गोदान' उपन्यास में राय साहब के घर पर दशहरे के पर्व पर बड़ा उत्सव होने वाला था| उस उत्सव के लिए राय साहब कहते हैं की होरी तुम सभी किसानों से दशहरे का शगुन भेंट देने के लिए कहो राय साहब कहते हैं – " तुम्हारे गाँव से मुझे कम से कम पाँचसौ की आशा है।"४ वास्तविकता से यह सब किसान राय साहब' साहूकार और महाजनों के कर्ज में पूरी तरह से डूब चुके हैं; उनके खेत,घर नीलाम होने को है| उनके घर का भरण - पोषण भी नहीं हो रहा है बहुत से बच्चे भूखे हैं पर फिर भी इन गरीब मजदूर और किसानों से रायसाहब शगुन,नजराना,पैसे लेते हैं| अंग्रेजों की शासन व्यवस्था एक प्रकार की शोषण व्यवस्था थी इसका परिचय 'प्रेमचंद' के गबन इस कहानी के माध्यम से हम देख सकते हैं| 'जालपा' का पति 'रमानाथ' म्युनिसिपालिटी में चुंगी नाके पर नौकरी करता था अपनी पत्नी जालपा को गहने बहुत प्रिय थे| उसे गहने बनाने के चक्कर में वह चुंगी नाके पर आए आठसौ रुपयों की अफरा-तफरी करता है| बाद में खजाने में पैसे भरने के लिए उसके पास पैसे नहीं होते हैं; पैसे ना होने के कारण गिरफ्तारी के डर से वह कोलकाता भाग जाता है| इधर जालपा को रमानाथ के भाग जाने की वजह समझ आती है तो वह रमानाथ द्वारा बनाए हुए गहने बेचकर चुंगी नाके के आठसौ रुपये खजाने में जमा करवा देती है। उधर कोलकाता में रमानाथ डर-डर कर रहता है उसे लगता है पैसे न भरने के कारण अपने ऊपर

गिरफ्तारी का वारंट निकला होगा| पुलिस से थोड़ा दूरी बनाकर ही रहता है लेकिन एक दिन पुलिस को देखकर डर जाता है; पुलिस उसका ऐसा व्यवहार देखकर उसे गिरफ्तार करती है| रमानाथ को लगता है कि पुलिस ने उसे पैसों के गबन की वजह से ही गिरफ्तार किया है| रामनाथ स्वयं ही चुंगी नाके के आठसौ रुपये गबन की बात स्वयं ही पुलिस को बताता है| पुलिस उसे हवालात में बंद कर म्युनिसिपालिटी के दफ्तर में टेलीफोन से पूछताछ करती है; लेकिन उधर से बताया जाता है कि रमानाथ ने कोई गबन नहीं किया है वह निर्दोष है| पर पुलिस उसे यह बात नहीं बताते हैं और उसे उस समय कोर्ट में क्रांतिकारियों के मुकदमे मे क्रांतिकारियों के खिलाफ उनको पढ़ा लिखा गवाह चाहिए था; इसलिए पुलिस वाले उसको झूठी बात कर तुम्हें हम हवालात से रिहा कर देंगे ऐसा कहते है; पर तुम्हें हमारा एक काम करना पड़ेगा तुमको कोर्ट में जाकर हम जितना कहते हैं उतना ही करना है उसके बाद हम तुम्हें निर्दोष छोड़ देंगे। सिर्फ गवाही ही देनी है यह सोचकर रमानाथ हां कह देता है पर वह नहीं जानता था कि उसकी एक झूठी गवाही से क्रांतिकारियों को फांसी के फंदे में लटकना पड़ेगा। इस प्रकार का शोषण कामगार या मजदूरों के साथ भी अंग्रेजी हुकूमत किया करती थी। धार्मिक व्यवस्था उस समय की धार्मिक व्यवस्था बहुत ही सख्त हुआ करती थी इसका अफसोस 'गोदान' इस उपन्यास में देखने को मिलता है| होरी सारी जिंदगी भर एक गाय लेने के लिए तड़पता था उसकी तीव्र इच्छा थी मै एक किसान हूँ और किसान के घर के सामने एक तो भी गाय होनी चाहिए पर वह पूरी जिंदगी भर ना ले सका क्योंकि उसे साहूकार, रायसाहब, दातादीन, महाजन इन सब ने अलग-अलग मार्ग से लूटा| जिसके चलते उसके पास अब खुद की जमीन भी नहीं रही थी| होरी जब अपने जीवन की अंतिम साँसे गिन रहा था तब मातादिन कहता है की होरी को अगर स्वर्ग जाना है तो उसे ब्राह्मण को याने दातादीन को एक गो दान करनी पड़ेगी; तभी तुम स्वर्ग पहुँचोगे| दातादीन ने पूरी जिंदगी होली का खून चूसा आज वही दातादीन होली को बैकुंठ जाने के लिए गो- दान करने की बात कहता है| यह कितना विस्मयकारक है कि जो पूरी जिंदगी भर घर पर एक गाय पालने का सपना मन में ले बैठा लेकिन वह एक गाय को पाल न सका और आज उसे मृत्यु के पश्चातभी बैकुंठ जाने के लिए भी दातादीन को गो का दान करना पड़ेगा| जीस दातादीन ने होरी का पूरी जिंदगी खून चूसा आज उसे ही दातादीन को गाय का दान करना पड़ेगा!

निष्कर्ष

उपरोक्त चर्चा से हम यह कह सकते हैं कि समकालीन हिंदी साहित्य में हमें विविध लेखक,कवियों के साहित्य में मजदूर तथा कृषक जीवन पर लिखा हुआ बहुत सारा मिलेगा| प्रेमचंद,फणीश्वरनाथ 'रेणु', नागार्जुन आदि साहित्यकारों के साहित्य तथा कविताओं में मजदूर और कृषक जीवन पर लेखनी चली है| उस समय की व्यवस्था मजदूर, गरीब तथा छोटे किसानों को सताकर जुर्माना द्वारा लूटने के लिए ही बनाई गई थी| मजदूर तथा किसान वर्ग को सम्मान नहीं मिलता था| वह सिर्फ और सिर्फ कामकरने के लिए बने थे| बड़े-बड़े लोग इन्हीं छोटे लोगों को अपना गुलाम ही समझते थे| उनके साथ मनचाहा बर्ताव करते थे उनका शोषण किया करते थे| गरीब के पसीने के बलबूते स्वयं ऐशो आराम में जिंदगी बसर किया करते थे| मजदूर,किसान इन बड़े-बड़े साहूकारों से जमीदारों से ब्याज पर पैसे लेकर अपनी खेती किया करते थे किंतु पूरा ब्याज देने के बावजूद भी मूल रकम जैसे कि वैसे ही रहती थी। उस समय और आज के समय की स्थिति देखें तो मजदूर और किसान इन दोनों में आज मजदूर थोड़ा सुखी मालूम पड़ता है क्योंकि उसको उसके काम का मुआवजा समय-समय पर मिलता रहता है| लेकिन किसान की हालत आज भी जैसे के वैसी बनी है| किसान हमेशा से ही सरकारों द्वारा और कुदरत द्वारा परेशान होता है| कभी - कभी बरसात कम होने की वजह से फसल अच्छी नहीं आ पाती है और कभी कबार फसल अच्छी हो लेकिन बाजार में भाव ना मिलने के कारण नुकसान उठाना पड़ता है| क्योंकि अपनी खेती में मजदूरों को तो मजदूरी देनी पड़ती है उसमें कोई कमी नहीं होती है यह खर्च जैसे कि वैसा ही होता है लेकिन फसल को अच्छा

दाम न मिलने के कारण संभावित पैसा ना मिलने की वजह से किसानों को नुकसान उठाना पड़ता है| जिस कारण किसान की आर्थिक हालत दिन-ब-दिन बिगड़ रही हैं। एक तरफ बैंक और साहूकारों का ऋण दुकानदारों का बीज,खाद, उर्वरक का पैसा यही खेती के उत्पादन से नहीं निकल रहा है; घर का खर्चा तो अलग ही! तो किसान करे तो क्या करें? इन सभी समस्याओं के चलते बहुत से किसान आत्महत्या करते हैं; इसके अलावा उनके पास अन्य कोई चारा नहीं होता है। इसके संदर्भ में कवि 'सुदीप भोला' कहते हैं –

"जो देता है खुशहाली, जिसके दम पर हरियाली,
आज वही बर्बाद खड़ा है, देखो उसकी बदहाली,
बहुत बुरी हालत है ईश्वर, धरती के भगवान की'
टूटी माला जैसे बिखरी किस्मत आज किसान की |" ५

किसान की या कृषक जीवन की हालत जल्द से जल्द सुधरनी चाहिए क्योकि पुरे विश्व में लोगो को खाने में अनाज ही लगता है | कोई कितना भी आमिर क्यों ना हो वह पैसे नहीं खा सकता उसको भी अनाज ही चाहिए |हमेशा घाटे में चल रही खेती अगर किसान ने करनी छोड़ दी तो यह दुनिया भूख के कारण समाप्त हो जाएगी |एअतनी भयंकर परिस्थिति किसान ने खेती करना छोड़ दिया तो आएगी इसका हमें ध्यान रखना पड़ेगा | देश की सरकार किसनों की हालत सुधारने के लिए प्रयत्न करे और किसानों को जीवनदान दे ताकि वह पुरे देश का फिर से पालनहार बने| इसी उमीद के साथ जय हिन्द,जय नवभारत !...

संदर्भ :

१) गोदान – प्रेमचंद – प्रकाशक – सरस्वती प्रेस,इलाहाबाद – संस्करण १९६१ – पृष्ट सं. १९

२) वही - पृष्ट संख्या – १३१

३) मानसरोवर खण्ड १ – प्रेमचंद - प्रकाशक – सरस्वती प्रेस, बनारस – संस्करण – १९४७ – पूस की रात – पृष्ट सं.१५०

४) गोदान – प्रेमचंद – प्रकाशक – सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद – संस्करण १९६१ – पृष्ट सं.१९

५) सुदीप भोला – सुदीप भोला कविता वाहिनी (यूट्यूब)

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

हिंदी कविता में कृषक विमर्श

डॉ. गोविंद बुरसे
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
शिवाजी महाविद्यालय कन्नड़, जि औरंगाबाद
महाराष्ट्र, 431103

वर्तमान साहित्य आलोचना में विमर्श बहुत चर्चित शब्द है। वैसे तो यह शब्द समीक्षा या आलोचना का विकल्प शब्द भी माना जाता है। कुछ शब्दकोशों में इसे साहित्यिक कृति के गुण दोषों की तुलना करना या परखना यह भी कहा गया है। विवेचन समीक्षा या पर्यालोचन या तथ्यानुसंधान यह शब्द भी विमर्श इस संकल्पना को समझने के लिए प्रयुक्त किए हैं। सामान्यतः विमर्श शब्द विचार विमर्श इस तरह से जोड़कर भी प्रयुक्त किया जाता है जिसका अर्थ किसी विशेष विषय पर गंभीरता से चर्चा करना यह भी होता है। वर्तमान काल में साहित्य में विमर्श यह संकल्पना, किसी निश्चित विचारधारा या चिंतन का किसी साहित्य कृति में किस तरह से प्रतिबिंब आया है, उसका अंकन कथा कहानियां या नाटकों में किस तरह से हुआ है, कविताओं में वह किस तरह से भावाभिव्यक्ति हुआ है और समीक्षा में किस दृष्टि से उन संवेदनाओं, संकल्पनाओं, कथानकों, भावों और प्रश्नों का मूल्यांकन किया जा रहा है, इस दृष्टि से प्रयुक्त की जा रही है। दलित विमर्श, स्त्री विमर्श,आदीवासी विमर्श, किन्नर विमर्श वृद्ध विमर्श, विकलांग विमर्श, ग्राम विमर्श, कृषि विमर्श आदि संकल्पनाएं इसी भूमिका से हिंदी साहित्य में निर्माण हुई है। उपर्युक्त संकल्पना या विचारधारा या चिंतन के आधार पर विमर्श निर्माण होना हिंदी साहित्य की अपनी अनोखी विशेषता है और इस तरह के आलोचनात्मक अध्ययन का स्वागत ही होना चाहिए क्योंकि विशेष संकल्पना या विचारधारा के आधार पर साहित्य लिखना और उस दृष्टि से ही उसकी समस्या होना साहित्य अध्ययन का बृहद विस्तार ही है। यह इस बात का पुख्ता प्रमाण है कि साहित्य केवल रजनी सजनी तक ही सीमित न रहकर बुनियादी सामाजिक प्रश्नों को अभिव्यक्त करने का माध्यम बन चुका है और उन्हीं निकषों के आधार पर उसकी समीक्षा भी हो रही है।

हिंदी साहित्य में कृषि विमर्श को किस तरह से देखा यह भी एक अत्यंत महत्वपूर्ण विषय है। हिंदी में प्रेमचंद्र जैसे महान हस्ताक्षर हुए जिनके कृषक और ग्रामीण जीवन पर लिखे उपन्यास और कहानियां सबसे अधिक चर्चित रहे। इस कारण यह भी माना जाता रहा कि हिंदी साहित्य में कृषि विमर्श को बहुत बड़ा स्थान दिया है। इस कथन को हिंदी साहित्य का पूरा जायजा लेने के बाद परखना आवश्यक है। वैसे हम यह भी मान सकते हैं कि हिंदी में कृषि विमर्श की अभिव्यक्ति मध्यकाल में तुलसीदास के साहित्य में दिखाई देती हैं।

खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, भलि,
बनिक को बनिज, न चाकर को चाकरी,
जीविका-विहीन लोग सीद्यमान सोच बस,
कहैं एक एकन सों, 'कहा जाई, का करी?'[1]

लेकिन तुलसीदास की यह अभिव्यक्ति कृषि या किसानों के जीवन को लेकर केंद्रित नहीं है। तुलसीदास यहां पर अकाल की विभीषिका व्यक्त करना चाहते हैं लेकिन उस का उपाय रामभक्ति यह बताते हैं, या यह कहें की रामभक्ति का महत्व बताने के लिए ही उन्होंने किसानों के जीवन की दुरावस्था को लिखा है। हां कवितावली में ही

उन्होंने किसानों के जीवन के संदर्भ में 'हाथ कछु नाही लागी है,' यह जरूर कहा है और प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक की किसानों की विभीषिका जरूर व्यक्त की है। इतिहास इस बात का गवाह है कि प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक किसानों का जीवन कभी सुखी नहीं रहा। किसान दो राजाओं के युद्ध के सबसे पहले शिकार होते रहे और युद्ध के बाद किसी देश में शांति फैली तो उस वक्त वह जागीरदारों और जमींदारों के शिकार होते रहे। तुलसीदास ने जिस बात का जिक्र किया वह अकाल और प्राकृतिक आपदा तो किसानों के साथ निरंतर रही है।

आधुनिक काल में भारत की पुख्ता नींव रखने वाले पंडित जवाहरलाल नेहरु जी इस संदर्भ में एक भाषण में कहते हैं की 'अनाज के लिए दूसरे देशों से मदद मांगना लज्जा और अपमान का कारण है।' नेहरू जी शायद ऐसे पहले शासक रहे जिन्हें कृषि की कम उपज के कारण उन्हें लज्जा महसूस हुई हो, लेकिन दुर्भाग्य से उनके आगे की नीतियां जिनकी नींव उन्होंने रखी थी आगे नहीं चल पाई और वर्तमान समय में किसान आत्महत्या तक आ पहुंचा। नेहरू जी के भाषण का जिक्र दत्त सुन्दरम ने किया हैं। India's first Prime Minister Jawaharlal Nehru realised that it was with great difficulty that India was able to avoid the political strings attachead with food aid , but it did hurt national pride . In one of his broadcasts to the nation , Nehru stated very candidly : " We have sought help from abroad ... and we shall continue to do so under pressure of necessity , but the conviction is growing upon me more forcefully than ever how dangerous it is for us to depend for this prime necessity of life on foreign countries . It is only when we obtain self - sufficiency in food that we can progress and develop ourselves. Otherwise, there is the continuous pressure of circumstances, there is trouble and misery and there is sometimes shame and humiliation. "[2]

तुलसीदास ने कृषकों की दुरावस्था के लिए अकाल को जिम्मेदार ठहराया। हिंदी साहित्य में कृषक विमर्श का आरंभ हम कुछ इस तरह से मान सकते हैं कि किसानों की दुरावस्था को जिम्मेदार अगर किसी को ठहराया गया तो वह अकाल है, यानी प्रकृति है, यानी किसानों की दुरावस्था के लिए किसी मानवीय हस्तक्षेप की कोई भूमिका नहीं, यह मध्यकाल का चिंतन है। आधुनिक काल में भी यह चिंतन प्रतिबिंबित, प्रवर्तित हुआ है। इस का तात्पर्य यह नहीं की इस के जिम्मेदार तुलसीदास है। वे तो कवि और भक्त हैं और उन्होंने उस काल का प्रतिनिधिक मत रखा हैं। आधुनिक काल में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक दृष्टि से नए नए विचार निर्माण हुए और साहित्यकारों ने भी नए विचार अपनी लेखनी के माध्यम से समाज के सामने रखें। उसमें किसानों की दुरावस्था का भी वर्णन है। हिंदी के महाकवि मैथिली शरण गुप्त जी को किसानों के शोषण में मानवी हस्तक्षेप जिम्मेदार दिखाई देता है। वे कहते की अच्छी फसल होने पर भी उसका लाभ किसानों को नहीं मिलता किसानों के शोषण के लिए वे महाजनों को जिम्मेदार ठहराते हैं अर्थात हिंदी में कृषि विमर्श प्रकृति से आगे जाकर मनुष्य की भुमिका जिम्मेदार मानता हैं।

हो जाये अच्छी भी फसल, पर लाभ कृषकों को कहाँ
खाते, खवाई, बीज ऋण से हैं रंगे रक्खे जहाँ

आता महाजन के यहाँ वह अन्न सारा अंत में
अधपेट खाकर फिर उन्हें है काँपना हेमंत में

बरसा रहा है रवि अनल, भूतल तवा सा जल रहा
है चल रहा सन सन पवन, तन से पसीना बह रहा

देखो कृषक शोषित, सुखाकर हल तथापि चला रहे
किस लोभ से इस आँच में, वे निज शरीर जला रहे [3]

किसानों की दुरावस्था के लिए महाजन और जमींदारों को जिम्मेदार मानना वैसे बहुत बड़ी उपलब्धि है उस काल के शोषण के विरोध में काम करने वाले अर्थशास्त्री समाजशास्त्री और राजनीतिज्ञों को इस बात का एहसास हुआ और साहित्य में भी उसे साहित्यकारों ने अभिव्यक्त किया। मैथिलीशरण गुप्त की तरह ही सूर्यकांत त्रिपाठी निराला जैसे महान कवि ने भी जमींदार के सिपाही किस तरह से लट्ठ की धाक दिखाकर गरीब किसानों का शोषण करते रहे इस बात का अंकन अपनी कविता कुत्ता भौकने लगा इसमें किया है। इस कविता में उन्होंने डिप्टी साहब के चंदे का जिक्र किया है कि डिप्टी साहब को चंदा एक हफ्ते में देना है। निराला जी की कविता भारतीय किसान के जीवन के निरंतर शोषण को स्पष्ट करती है कि जिसमें कभी महाजनों और जमींदारों ने कभी सम्राट के नाम पर तो कभी बादशाह के नाम पर तो कभी साहब के नाम पर किसान को निरंतर लूटा है। यहां पर ध्यान देने लायक बात यह भी है कि जमींदार और महाजन सामान्य जनता को बड़ी बेदर्दी से लूटते रहे और बदले में सम्राट बादशाह और साहब इन जमींदारों की रक्षा करते रहे। इस तरह से स्थानीय सत्ता और केंद्रीय सत्ता दोनों मिलकर किसानों को लूटते रहे। किसानों और उन्हीं के जैसे गरीब सामान्य लोगों को कभी भी केंद्रीय सत्ता की ओर इन जमींदारों अर्थात स्थानीय सत्ता की शिकायत का मौका नहीं मिला क्योंकि केंद्रीय सत्ता भी इन शोषकों के पक्ष में ही रही।

जमींदार का सिपाही लट्ठ कंधे पर डाले
आया और लोगों की ओर देखकर कहा,
"डेरे पर थानेदार आए हैं,
डिप्टी साहब ने चंदा लगाया है,
एक हफ्ते के अंदर देना है.
चलो बात दे आओ"
कौड़े से कुछ हटकर
लोगों के साथ कुत्ता खेतिहर का बैठा था
चलते सिपाही को देखकर खड़ा हुआ
और भौकने लगा,
करुणा से,बंधु खेतिहर को देख-देख कर [4]

हिंदी साहित्य में किसानों के शोषण को वास्तविक धरातल पर देखना शुरू हुआ। किसानों के शोषण के केवल एक दो कारण है और उन्हीं कारणों से किसान त्रस्त और शोषित है ऐसी बात नहीं है। वास्तव यह है कि किसान मेहनत करता है लेकिन उसके मेहनत से निर्माण हुए फसल पर कुछ दूसरे ही लोग अधिकार जमाए हुए बैठे है। किसान का जीवन प्रकृति सानिध्य में बीतता है। प्रकृति के बदलाव किसान की दुर्दशा के कारण तो है ही, साथ ही प्रकृति में रहने वाले जीव भी किसान को बुरी तरह त्रस्त करते हैं। शायद प्रकृति में जीने वाले पक्षियों और प्राणियों को भी अनाज खाने का हक है, लेकिन शोषक मनुष्य का क्या? मानव समाज ने ऐसी व्यवस्था निर्माण

की है जिस व्यवस्था में कोई एक व्यक्ति श्रम करता है और कोई दूसरा व्यक्ति उस श्रम का लाभ उठाता है। कवि केदारनाथ अग्रवाल किसानों की दुर्दशा के इस कारण की ओर संकेत करते हुए कहते हैं

"एक जोते और बोए, ताक कर फसलें उगायें,
दूसरा अपराध में काटे उन्हें अपनी बनाए,
मैं इसे विधि का नहीं, अभिशाप जग का जानता हूँ |" [5]

समय बदला है और बदलते समय के साथ साथ किसानों का शोषण करने वाले लोग भी बदलें है। अब तो वह सभापति है, पटवारी है, पेशकार, मुहर्रिर है, दरोगा है, व्यापारी है, कंपनिवाला है, सांसद है और पार्षद भी है।

गीध बने हइँ दुकन्दार सब डार ते घात लगाये हइँ
मारि झपट्टा मुफतखोर सब चौंगिरदा घतियाये हइँ।

सभापती कहइँ हमका देउ, हम तुमका खेतु देवाय देई
पटवारी कहइँ हमका देउ, हम तुम्हरेहे नाव चढाय देई।

पेसकार कहइँ हमका देउ, हम हाकिम का समुझाय देई
हाकिम कहइँ हमइँ देउ, तउ हम सच्चा न्याव चुकाय देई।[6]

कृषि व्यवसाय के इतने सारी शोषक है। किस-किस के विरोध में लड़े किसान अगर लड़ना तय भी करता है तो इतने सारे शोषक सहज रूप में इकट्ठे हो जाते हैं। यह प्रक्रिया इतनी आसान और मजबूत बन गई है कि शासकों को भी ऐसा नहीं लगता कि वे कुछ गलत कर रहे है। इस व्यवस्था ने एक सिलसिला शुरू किया है। किसानों की जमीन हो या उनका माल बहुत सस्ते में उसे खरीदना वे लोग अपना अधिकार समझने लगे। लोक कल्याणकारी व्यवस्था के नाम पर चलने वाली सरकार भी किसानों को छोड़कर अन्य लोगों का कल्याण करने के लिए किसानों से सभी चीजें बहुत ही सस्ते दामों में खरीदना चाहती है। वर्तमान काल में सरकार की यह जिम्मेदारी मान ली गई है कि सरकार जनता को सही दामों में अनाज उपलब्ध कराएं। इसमें सही दामों में उन लोगों के लिए भी है जो कृषि उत्पादन ठीक मूल्य पर खरीदने की क्षमता रखते हैं। लेकिन सरकार उन्हें भी गरीब जनता के जैसे ही कृषि का सामान सस्ते दामों में उपलब्ध कराती है और फिर वह आदमी जो बड़े मॉल में बड़ी कंपनियों की चीजें ऊंचे दामों में खरीदता है और ऊंचे दामों में खरीदने पर गर्व भी करता है वही आदमी कृषि उत्पादन सस्ते दामों में खरीदना अपना अधिकार समझता है। वे चीजें भी जो बहुत जी आवश्यक चीजें नहीं है वह भी उसी तरह से सस्ते दामों में खरीदना लोग अपना अधिकार समझने लगते हैं। किसानों को अपने उत्पादन सस्ते दामों में बेचने के लिए सरकार और बाजार मजबूर करता है और उन्हें कृषि उत्पादन के लिए आवश्यक वस्तुएं बड़े महंगे दामों में बेची जाती हैं। कभी-कभी निकृष्ट और कभी वे भी नहीं मिलती तो ऐसे अवसरों पर जब किसान आंदोलन करते हैं तो उन पर गोलियां बरसाई जाती है, डंडे बरसाए जाते हैं। किसानों से विकास के लिए जमीन लेना सरकार अपना अधिकार समझती है और किसानों ने अगर विरोध किया तो उन पर गोलियां अपना कर्तव्य। आलोक धन्वा जी ने वास्तव को व्यक्त करते हुए गोली दागो पोस्टर यह चर्चित कविता लिखी है

जिस ज़मीन पर मैं चलता हूँ
जिस ज़मीन को मैं जोतता हूँ

जिस ज़मीन में बीज बोता हूँ और
जिस ज़मीन से अन्न निकालकर मैं
गोदामों तक ढोता हूँ
उस ज़मीन के लिए गोली दागने का अधिकार
मुझे है या उन दोग़ले ज़मींदारों को जो पूरे देश को
सूदख़ोर का कुत्ता बना देना चाहते हैं [7]

इतने सारे शोषण ओं के बाद नतीजा जो होना है वही होता है सदियों से चलते आ रहा शोषण अब भयंकर निराशा में परिवर्तित हो रहा है और जब निराशा अपनी हद पार करती है तो इंसान आत्महत्या करता है। हिंदी कविता ने इस आत्महत्या को भी व्यक्त किया है। हरीश चंद्र पांडे जैसे कवि इस आत्महत्या को वास्तविक दृष्टि से देखते हुए हत्या ही मानते हैं और उस दुर्नीति की नीति को कोसते है।

कितना आसान है हत्या को आत्महत्या कहना
और दुर्नीति को नीति। [8]

लेकिन दुर्भाग्य है कि किसान किस कारण आत्महत्या कर रहे हैं, उस ओर वास्तविक दृष्टि से, संवेदनशीलता से नहीं देखा जाता। कभी इन आत्महत्याओं को प्रेम प्रकरणों का नतीजा कह कर इसकी खिल्ली उड़ाई जाती है तो कभी शराबियों की आत्महत्या कह कर बहुत ही हेय दृष्टि से देखा जाता है। जहरीली शराब से मरने वाले लोगों को आकस्मिक सहायता करने वाली सरकार भी बड़ी हीन दृष्टि से इन आत्महत्याओं को देखती है। कहने का तात्पर्य किसानों की आत्महत्या की ओर सरकार समाज और तथाकथित विद्वानों की दृष्टि इतनी हीन हो चुकी है की उनमें किसी प्रकार की कोई शर्म, दुख या पश्चाताप नहीं है।। विख्यात कवि राजेश जोशी जी ने इसे बहुत सटीक शब्दों में व्यक्त किया है।

देश के बारे में लिखे गए हजारों निबन्धों में लिखा गया
पहला अमर वाक्य एक बार फिर लिखता हूँ
भारत एक कृषि प्रधान देश है
दुबारा उसे पढ़ने को जैसे ही आँखे झुकाता हूँ
तो लिखा हुआ पाता हूँ
कि पिछले कुछ बरसों में डेढ़ लाख से अधिक किसानों ने
आत्महत्या की है इस देश में
भयभीत होकर कागज पर से अपनी आँखे उठाता हूँ
तो मुस्कुराती हुई दिखती है हमारी सरकार
कोई शर्म नहीं किसी की आँख में
दुःख या पश्चाताप की एक झाईं तक नहीं चेहरे पर [9]

किसान जीवन की यह भयावहता है। एक और किसान राजा है कहने वाले भाटहै और उन की आड़ में शोषण जारी रखनेवाली व्यवस्था। अप्रत्यक्ष रूप से यह बंधुआ मजदूरी ही है। बस इसे बंधुआ मजदूरी घोषित करने के लिए हमारी व्यवस्था को शर्म आती होगी। वैसे भी अलंकारिक भाषा में बहलाकर शोषण करते रहना भी हमारी एक

परंपरा रही है। कवि बुरी परंपराओं को तोड़ते हैं। हिंदी कविता में संख्या में अल्प क्यों न हों लेकिन तीव्र स्वर कृषी विमर्श के रूप में उभर रहा है।

संदर्भ

1. कवितावली / तुलसीदास पृ. कृ 162
2. Indian Economy, Dutta Sundaram page no. 217.seventeenth Edition, S. Chand Publication, page no.21
3. किसान मैथिलीशरण गुप्त https://www.hindisahityadarpan.in/2016/12/kisan-maithilisharan-gupt-hindi-peom.html
4. कुत्ता भौकने लगा /सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला
   https://www.apnimaati.com/2017/11/blog-post_46.html
5. अभिशाप जग का/ केदारनाथ अग्रवाल
https://www.apnimaati.com/2017/11/blog-post_46.html
6. एक किसान की रोटी /वंशीधर शुक्ल
   https://www.apnimaati.com/2017/11/blog-post_46.html
7. गोली दागो पोस्टर /आलोक धन्वा
https://www.apnimaati.com/2017/11/blog-post_46.html
8. किसान और आत्महत्या /हरीशचंद्र पाण्डेय
https://www.apnimaati.com/2017/11/blog-post_46.html
9. इस आत्महत्या को अब कहाँ जोंडू/ राजेश जोशी
https://www.apnimaati.com/2017/11/blog-post_46.html

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

हिंदी के दलित उपन्यासकारों में जगदीशचंद्र का स्थान

शीतल भास्कर धनेधर

शोधार्थी, हिंदी विभाग
डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर मराठवाडा विश्वविद्यालय, छ.संभाजीनगर

शोध-सारांश :

दलित उपन्यासों का प्रमुख स्वर दलितों की पीड़ा, यातना, घुटन, प्रतिहिंसा, अत्याचार, छुआछूत की भावना, जातिवादी, संवेदना, व्यथा, सामाजिक असहिष्णुता, मन्दिर निषेध, देव-देवियों की पूजा का निषेध आदि रहा है । दलित उपन्यासों के पात्र जाति-व्यवस्था से पीड़ित है । वे भेदभावपूर्ण सामाजिक अन्याय के शिकार है । किन्तु वे अपनी अस्मिता की रक्षा के लिये मानवीय अधिकार बोध के साथ संघर्षरत है । मूलतः सामाजिक क्षेत्र की रचनाएँ होकर भी सभी उपन्यासों में समस्याएँ एवं समाधान अलग-अलग है । दलित उपन्यासकारों ने मानव जीवन की समस्याओं को नवीन रूप में विस्तार के साथ प्रस्तुत किया । देश की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक परिस्थितिओं में परिवर्तन लाने का कार्य दलित उपन्यासकारों ने किया । इनके परिणामस्वरूप उपन्यासों को व्यापक क्षेत्र की प्राप्ति हुई ।

बीज संज्ञा : दलित, उपन्यास, जगदीशचंद्र, दलित उपन्यास का स्वरूप, दलित उपन्यासकार

भूमिका :

भारत विभिन्न धर्मों एवं जातियों का समूह है । भारत के संविधान के अनुसार यहाँ किसी धर्म, जाति, रंग अथवा लिंग के आधार पर किसी भी व्यक्ति के साथ भेदभाव नहीं बरता जायेगा, किन्तु भारत में हिन्दू धर्मावलम्बियों की जनसंख्या अधिक होने के कारण सदैव उनका ही वर्चस्व रहा है । अन्य धर्मावलंबी संवैधानिक होने के बावजूद अपने आपको दूसरे वर्ग का नागरिक समझते रहे है । छुआछूत की भावना भी केवल हिन्दू समाज में ही रही है, अन्य धर्म एवं समाजों में नहीं । अतः दलित सन्दर्भों में भारतीय समाज से हमारा तात्पर्य केवल हिन्दू समाज से है ।[1] वस्तुतः इस हिन्दी वर्चस्व के विरुद्ध नई चेतना से ही दलित साहित्य एवं दलित उपन्यासों की शुरुआत हुई ।

स्वतंत्रता पूर्व तक भारत में धर्म की वही भूमिका रही थी जो वर्तमान समय में राजनीति की है । धर्म ही तय करता है कि कौन क्या व्यवसाय करेगा एवं किस अपराध की सजा क्या मिलेगी । आध्यात्मिक उपलब्धि को ही सर्वोपरि माना जाता था । दलित वर्गों के लोगों का मन्दिर में प्रवेश कर पाना सम्भव नहीं था, एवं उपासना का अधिकार भी उन्हें नहीं था । इन सब बातों मे से दलित साहित्य एवं दलित उपन्यासों का विकास हुआ । हम दलित उपन्यासों की परिभाषा देते है तो यह बाबत स्पष्ट हो जाती है कि जिन उपन्यासों में दलित व्यथा, पीड़, घुटन, संवेदना, आदि उदघाटित हुई हो उसे दलित उपन्यास कहा जा सकता है । दलितों का मान-सम्मान एवं आत्मविश्वास जो जगाता हो, वह दलित उपन्यास है ।[2]

दलित उपन्यास का स्वरूप :-

हिन्दी उपन्यासों में वर्णाश्रम व्यवस्था से उत्पन्न विषमता का चित्रण करीब करीब सभी उपन्यासों में देखने को मिलता है । आर्थिक, सामाजिक रूप से पिछड़े समाज को धर्म की प्रवृत्तिओं से दूर रखा जाता था । स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान यह अनुभव किया जाने लगा कि समाज व्यवस्था की विषमताओं एवं विसंगतिओं को दूर करना अति आवश्यक है । इन्हीं परिस्थितियों में सुधार लाने के लिये राष्ट्रीय आन्दोलन हुए । राष्ट्रीय आन्दोलन ने दलित को नई पहचान दी जो दलित उपन्यासों में व्यक्त होने लगी ।[3]

दलित उपन्यासकारों ने मानव जीवन की समस्याओं को नवीन रूप में विस्तार के साथ प्रस्तुत किया । देश की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक परिस्थितिओं में परिवर्तन लाने का कार्य दलित उपन्यासकारों ने किया । इनके परिणामस्वरूप उपन्यासों को व्यापक क्षेत्र की प्राप्ति हुई । सभी उपन्यासकारों ने अपनी-अपनी विचारधारा के तहत दलितों, पीड़ितों, पिछड़े हुऐ लोगों के जीवन की समस्याओं, पीड़ाओं, कष्टों, दुःख - दर्दों को अपने उपन्यासों में रुपांतरित करने का सफल प्रयास किया । इन उपन्यासों के नायक-नायिका कहीं उच्च वर्ग के तो कहीं निम्न वर्ग के चित्रित किये, जो दलितों के उध्धार, समानता के अधिकार के लिये लड़ते हुऐ दिखाई दिये है । स्वातंत्र्योत्तर काल में दलित चेतना से अनुप्राणित उपन्यासों की संख्या पर्याप्त मात्रा में पायी जाती है । इन उपन्यासों में जहाँ एक ओर दलित जीवन की व्यथा, दुःख, दर्द, पीड़ा, त्रासदी आदि का वर्णन है तो दूसरी ओर दलित, पिछडे एवं पीड़ित लोगों में आ रही अपने अधिकारों के प्रति चेतना का स्वर भी सुनाई पड़ रहा है । यहाँ पर एक बात मैं कहना चाहूँगी कि दलितों के पिछड़ेपन के लिये अशिक्षा को ही दोषी ठहराया जा सकता है । अर्थ के अभाव एवं सामाजिक समानता के अभाव में यह अपने अधिकारों से वंचित रहे । पर अब वह भविष्य की नई रोशनी के प्रति आशावादी है । परिवर्तन की दिशा दलित उपन्यासों में सक्रिय दिखाई पड़ती है ।

दलित उपन्यासकारों ने अपने युग की विसंगतियाँ पूंजीवादी, सामंती शिकंजे में फँसी हुई गरीब, दलित एवं पीड़ित व्यक्ति की मानसिकता को अभिव्यक्त किया है एवं सामाजिक चेतना, अस्पृश्यता का खण्डन, नारी उध्धार, शोषण, दलित चेतना, शिक्षा प्राप्ति, राष्ट्रीय चेतना आदि के स्वर दलित उपन्यासों में गूंजते हुऐ दिखाई देते है ।

हिंदी के दलित उपन्यास

उन्नीसवीं शताब्दी से आधुनिक साहित्य का विकास हुआ । आधुनिकता से प्रभावित होकर या नवजागरण से अनुभावित होकर साहित्य की सभी विधाओं का विकास हुआ, उसी तरह से दलित साहित्य का भी प्रचार-प्रसार हुआ है ऐसा कहने में कोई आपति नहीं होनी चाहिए । भाविक दृष्टि से देखें तो संस्कृत युग, प्राकृत युग, अपभ्रंश तक भले ही दलित शब्द प्रकाश में न आया हो किन्तु, सामाजिक व साहित्यिक दृष्टि से जब दृष्टिपात करते है तो दलित साहित्य के लक्षण उसकी केन्द्रस्थ समस्या, उसके मुख्य तत्व तथा बीज प्रारंभ से ही दिखाई देते है । दलित साहित्य का प्रारंभ मुख्य रुप से मराठी साहित्य से हुआ । नये वातावरण में महाराष्ट्र के ज्योतिबा फुले आदि से उसका विकास हुआ । किन्तु धीरे-धीरे उसने भारत की तमाम भाषाओं में अपना स्थान बनाते हुऐ, भारतीय दलित साहित्यरुपी विशाल आकार प्रकट कर लिया है ।

हिन्दी दलित साहित्यकारों में ओमप्रकाश वाल्मीकि डॉ. सोहनलाल सुमनाक्षर, डॉ.पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, मोहनदास नैमिषराय, धर्मवीर, जयप्रकाश कर्दम, बुध्धशरण हँस, दीपक मौर्य, डॉ. तारा परमार, डॉ. एन. सिंह आदि के नाम उल्लेखनीय है । गैर दलित रचानाकारों में डॉ. ठाकुर प्रसाद राही, डॉ. कुंवरपाल सिंह, डॉ. सन्तकुमार, डॉ. श्योराजसिंह बैचेन, प्रो. पारुकान्त देसाई, रधुवीरसिंह आदि का नामोल्लेख किया जा सकता है ।

झीनी - झीनी बीनी चदरिया

अब्दुल बिसमिल्लाह (१९८६) का एक ऐसा उपन्यास है जिसमें बनारस के बुनकरों के जीवन का वास्तविक चित्रण किया गया है। जुलाहों की औरतों की स्थिति चाहे वह ग्रामीण हो या बनारस शहर की एक सी है । बनारस की औरत की जिन्दगी कतान में है एवं यहाँ करघे में । मुस्लिम दलित बुनकरों की दोहरी दयनीय स्थिति है कि उन्हीं के मजहब के उच्च वर्ग द्वारा वे शोषित होते है । नितांत गरीबी में पिस रहे मुसलमान रोजा के दिनों में भी कर्ज लेकर अपने धार्मिक संस्कारों की रस्में पूरी करते है ।

लेखक उपन्यास में अपने लेखकीय विचारों से परिचित कराते हुऐ कहते है कि "बनारसी साड़ी बनानेवाले साधारण मजदूरों की जो दुर्दशा है उनके शोषण का जो भयानक चक्र गिरस्ता लोगों और गोलघर के शेठों के बीच फैला है । अपने उपन्यास में वे इन सब चीजों को दर्शाना चाहते है । वे यह दिखाना चाहते है कि कीमती से कीमती साड़ीयाँ देश-विदेश के बाजारों में पहुँचानेवाला आम बुनकर खुद कैसी जिन्दगी जी रहा है ।"[4]

छप्पर जयप्रकाश कर्दम (१९९४)

जयप्रकाश कर्दम द्वारा लिखित उपन्यास 'छप्पर' हिन्दी उपन्यास यात्रा के सफर में मील का पत्थर (mile stone) माना जाता है । इस उपन्यास को कर्दम जी ने पश्चिमी उत्तर प्रदेश के गंगा पर बसे छोटे गाँव मातापुर के चमार जाति को केन्द्र में रखकर लिखा है । उपन्यास के केन्द्र में है सूक्खा का एक गरीबी, अभावग्रस्त दलित परिवार । जयप्रकाश कर्दम ग्रामीण समाज के जातीवादी चरित्र को परिवार के माध्यम से दिखाना चाहते है कि किस प्रकार वर्णव्यवस्था और जातिवाद के द्वारा होनेवाले शोषण, उत्पीड़न और अत्याचार को मजबूत आधार देनेवाले ब्राह्मण सामन्तों के गठबन्धन के खिलाफ सुक्खा विद्रोह की नींव रखता है । सुक्खा अपनी पत्नी रमिया के साथ घास-फूस के छप्पर में रहता है । "जयप्रकश कर्दम दलितों के लिए शिक्षा के महत्व को रेखांकित करते बताते है कि शिक्षा से ही सोये हुए दलितों में जागृति आएगी, तभी वे शोषण की बेड़ियाँ तोड़ पाएंगे ।"[5] जयप्रकाश कर्दम ने अपने उपन्यास 'छप्पर' में दलितों के यथार्थ जीवन का सजीव चित्रण किया है ।

मुक्तिपर्व - मोहनदास नैमिशराय

इस उपन्यास में आजादी के पूर्व और आजादी के बाद दलितों की स्थिति में आये परिवर्तन को चित्रित किया गया है । देश आजाद हुआ किन्तु आजादी मिलने के बाद भी दलितों को न्याय नहीं मिल पाता । ऐसी स्थिति में दलित व्यक्ति सोचने को मजबूर होता है, आखिर उसे कब मुक्ति मिलेगी, उसका मुक्तिपर्व कब आयेगा? इस उपन्यास का विद्रोही पात्र बंसी अपने मालिक नवाब अलिवर्दी खाँ के खिलाफ विद्रोह करता है । वह उनकी आज्ञा की अवहेलना करता हुआ कहता है ..... "जनाबे आली, हम न गुलाम थे, न गुलाम है और न गुलाम रहेगें ।"[6]

आजादी के सत्तर साल बाद भी देश की सामाजिक आर्थिक स्थितियों में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं आया है । पर दलितों ने सामाजिक विषमता और जातिगत आधार पर होते भेदभाव, छुआछूत के विरुध्ध अपना स्वर तीव्र किया है । इस तरह लेखक बंसी, सुनीत आदि चरित्रों के माध्यम से जातिगत संधर्ष तथा वर्ग व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठाते है ।

मिट्टी की सौगंध - प्रेम कपाडिया (१९९५)

प्रेम कपाडिया द्वारा लिखा गया उपन्यास 'मिट्टी की सौगंध' स्वतंत्रता पंश्चात् दलितों की वास्तविक स्थिति को चित्रित करता है । उपन्यास का मूल कथ्य है- ग्रामीण सामंती ताकतों के खिलाफ दलित में चेतना जागृत करना । उपन्यासकार ने ग्रामीण दलितों के सामाजिक, आर्थिक, शारीरिक व नैतिक शोषण की पर्त-दस्पर्त खोलने हुऐ शोषणखोर व्यवस्था को बेनकाब कर दिया है ।

जस तस भई सवेर- सत्यप्रकाश (१९९८)

लेखक सत्यप्रकाश ने 'जस तस भई सवेर' उपन्यास के माध्यम से दलितों के जीवन की तमाम समस्याओं को पर्त-दर-पर्त खोलने का प्रयास किया है । सामंती वर्ग इन दलितों को आर्थिक, सामाजिक एवं धार्मिक शोषण के साथसाथ शारीरिक शोषण भी करता है । प्रस्तुत उपन्यास में दलित वर्ग की अभावग्रस्त जिन्दगी, सामाजिक विसंगतियाँ, विद्रुपताओं, उत्थान-पतन, उन पर होनेवाले अत्याचार, उनकी जलन, पीड़ा, नारकीय जिन्दगी तथा कुंठाओं के विविध आयामों पर प्रकाश डाला है ।

कगार की आग - हिमांशु जोशी

प्रस्तुत उपन्यास में पर्वतीय अल्मोडा गाँव की निम्न समाज की व्यथा एवं पीड़ा को चित्रित किया है । निम्न समाज जो परेशानियाँ दुःख-दर्द, पीड़ा, घुटन व्यथा एवं शोषण को झेलता है इसका लेखकने प्रस्तुत उपन्यास में चोटदार वर्णन किया है। प्रस्तुत उपन्यास में दर्शाया गया हे कि दलित स्त्री तीन तीन अभिशापों को झेलती है । अछूत जाति की नारी होना, उसकी आर्थिक दशा का कमजोर होना एवं तीसरा विधवा स्त्री को और परेशानिय झेलनी पड़ती है । आजादी के बाद दलितों एवं गैरदलितों के सामाजिक सबंधों एवं उनकी मानसिकता का खुलासा यह उपन्यास बखूबी से करता है ।

बंधन-मुक्त - डॉ. रामजीलाल सहायक

आज मदिरापान एवं भ्रष्टाचार ने समाज में व्यापक रूप ले लिया है। दलित वर्ग भी इससे अछूता नहीं रहा है । डिप्टी कलेक्टर की बेटी से एक निर्धन दलित को प्रेम हो जाता है किन्तु डिप्टी कलेक्टर नहीं चाहते कि उनकी बेटी निर्धन एवं दलित के साथ विवाह करे । शिवराज कई बार अपनी जान जोखिम में डालता है । दलित वर्ग की परेशानियाँ, सामाजिक बन्धन, छुआछूत आदि समस्याओं को लेखक ने यहाँ चित्रित किया है।

अमरज्योति - डी. पी. वरुण (१९८२)

लेखक ने यह उपन्यास अंतर्जातीय विवाह को लक्ष्य करके लिखा है । परंतु सामाजिक वास्तविकता अन्तर्जातीय विवाह को इजाजत नहीं देती । हिन्दू समाज अभी अन्तजातीय विवाह अर्थात निम्न समाज के साथ शादी-ब्याह के सबंधों को मंजूरी नहीं देता ।

पहला खत - धर्मवीर (१९८९)

इस उपन्यास में डॉ. धर्मवीर का धर्म विषयक विचार सामने आता है । उपन्यास में दलित जाति की नारी व्यथा को उजागर किया गया है । दलित नारी की व्यथा, पीड़ा, घुटन, उत्पीड़न, शोषण, एवं जाति प्रथा के कारण

झेलनी पड़ती समस्याओं आदि प्रश्नों को ध्यान में रखकर लेखक ने दलितविषयक चिन्तन का अध्ययन एवं विश्लेषण किया है ।

करुणा - जयप्रकाश कर्दम - (१९८६)

नायक नायिका का अन्त में जीवन की समस्याओं से बचने का एकमात्र हल बौध्धधर्म में न सिर्फ प्रवृत्त होना बल्कि भिक्षु–भिक्षुणी बनकर विरक्ति का जीवन जीना है । इन सब घटनाओं का आम जीवन पर क्या प्रभाव पड़ेगा । क्या जीवन की समस्याओं से जूझने की बजाय उनसे पलायन कर जाना चाहिये । क्या पलायनवाद ने कभी समस्याओं का समाधान किया ? हाँ, मनुष्य के मन में उठी जिझासाओं का ज्ञान अवश्य किया है । धर्म ने मनुष्य को संगठित किया किन्तु जीवन-दृष्टि में ज्ञान- विज्ञान का विकास नहीं किया ।

जगदीशंचद्र :

जगदीशचंद्र की नई पीढी के समर्थ रचनाकारो के बीच अपनी एक अलग पहचान रही है। विद्यार्थी जीवन में मुख्यतः महाविधालय के जीवन में राजनीतिक सरगर्मियों से प्रभावित होना, साम्यवादी साहित्य के प्रति आकर्षण, प्रेमचन्द - टैगोर साहित्य का अध्ययन तथा भगतसिंह जैसे सेनानी के प्रति एकान्त श्रद्धा-भाव जगदीशचन्द्र के व्यक्तित्व के प्रभावित करने में सहायक हुए है। जगदीशचन्द्र के उपन्यासों एवं कहानियो में समकालीन जीवन से गहरी टकराहट और आधुनिकता एवं परम्परा का संघर्ष भी है। जगदीशचन्द्र एक सवेदनशील लेखक है, इसलिए उनके उपन्यास काव्यात्मक एवं कलात्मक बन पड़े है। स्वातंत्र्योतर हिन्दी कथा साहित्य को जिन साहित्यकारों ने समृद्ध किया है, और दिशा प्रदान की है, उनमें जगदीशचन्द्र का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। प्रेमचन्द्र के उपन्यासों की यथार्थवादी धारा में उनका उपन्यास 'धरती धन न अपना' काफी चर्चित रहा है। जगदीशचन्द्र के कथा-साहित्य में स्वतंत्रता के बाद के जीवन यथार्थ के बहुरंगी चित्र उभरकर सामने आए है। उन्होंने मानवजीवन के मूल्यों को नए आयामों पर नए स्वर दिए है। मूलतः उनकी कृतियों में नए मूल्यों के अन्वेषण की छटपटाहट है। एक साहित्यकार के रुप में हिन्दी साहित्य जगत में जगदीशचन्द्र का महत्वपूर्ण स्थान रहा है।

सब मिलाकर जगदीशचन्द्र की एक बड़ी विशेषता यह है कि रचनाओं की विषय-व्यापकता,कथावस्तु की गहराई उनकी अलग पहचान कराती है। रचनाओं की कथावस्तु से लगता है कि जगदीशचन्द्र का जीवन उसी वातावरण में बीता होगा । उन्होंने अपने साहित्य में पूंजीवादी, सामंती महाजनी उपभोक्ता को बड़ी ईमानदारी के साथ चित्रित किया है। रचनाकार का प्रतिपार्ध उसी मूल विचारधारा की उपज प्रतीत होता है, जो आजादी से पहले हमारे देश में साहित्य को लेकर बरकरार रही है। जगदीशचन्द्र ने अपने भोगे हुए यथार्थ को अपने उपन्यासों का केन्द्रबिन्दु बनाया है। उन्होंने इन शब्दों में इसे व्यक्त भी किया है- “अपने जातिगत संस्कारों तथा सामाजिक मान्यताओं की कठोर जकड़न के कारण मैं हरिजनों के जीवन की कटुताओं को स्वयं तो नहीं भोग सका फिर भी मुझे अपने दुस्साहस के कारण उनके जीवन को निकट से देखने का अवसर अवश्य मिला है। मैंने सर्वथा निरपेक्ष रहकर भारतीय जीवन के इन कटे हुए संदर्भों का चित्रण किया है और कहीं भी अपना मत थोपने या अपनी विचारधारा को लादने की चेष्टा नहीं की है ।"[7] जगदीशचन्द्र की दृष्टि उनकी रचनाओं को पर्याप्त सार्थक बना देती है।

निष्कर्ष :

हिन्दी के प्रारम्भिक साहित्य में वर्णाश्रम व्यवस्था से उत्पन्न विषमता का चित्रण है । उनका आर्थिक-सामाजिक पिछड़े समाज को धर्म की प्रवृत्तियों से दूर रखा जाता था। स्वतंत्रता आन्दोलन दौरान यह अनुभव किया

जाने लगा कि समाज व्यवस्था की विषमताओं एवं विसंगतियों को दूर करना अति आवश्यक है । इन्हीं परिस्थितियों में सुधार लाने के लिये राष्ट्रवादी आन्दोलन हुऐ । राष्ट्रीय आन्दोलन ने दलितों को नयी पहचान दी। स्वातंत्र्योत्तर काल में दलित चेतना से अनुप्राणित उपन्यासों की संख्या पर्याप्त मात्रा में पायी जाती है । इन उपन्यासों में जहाँ एक ओर दलित जीवन की व्यथा, दुःख, दर्द, पीड़ा, त्रासदी आदि का वर्णन है, तो दूसरी और पिछड़े हुऐ दलित, पीड़ित लोगों में आ रही अपने अधिकारों के प्रति चेतना के स्वर सुनाई पड़ रहे है । यहाँ एक बात कहना चाहूँगी कि दलितों के पिछड़ेपन के लिये अशिक्षा को दोषी ठहराया जा सकता है । अर्थ के अभाव एवं सामाजिक समानता के अभाव में यह अपने अधिकारों से वंचित रहे है ।

संदर्भ :

1. डॉ.सी.बी. भारती - दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, हंस-11, अंक-1, 1996, पृ. 70-72
2. अर्जुन डांगले - दलित साहित्य : एक अभ्यास, 1978 महाराष्ट्र राज्य साहित्य संस्कृति मंडल, पृ.41
3. पुन्नीसिंह, कमला प्रसाद, राजेंद्र शर्मा - भारतीय दलित साहित्य : परिप्रेक्ष्य, पृ. 344
4. अब्दुल बिस्मिल्लाह, झीनी-झीनी बीनी चदरिया, पृ. 164
5. जयप्रकाश कर्दम - छप्पर, पृ. 43
6. मोहनदास नैमिशराय - मुक्तिपर्व, पृ. 28
7. जगदीशचंद्र - धरती धन न अपना, भूमिका पृ. 8

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

हिंदी साहित्य मे बाल साहित्य का महत्व

डॉ. शिल्पा डी. जीवरग
हिंदी विभाग
सहयोगी प्राध्यापक
पंडित जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय
छत्रपती संभाजीनगर

पांडव मनिषा प्रकाश
हिंदी विभाग
शोध छात्र
डॉ. बाबासाहेब
आंबेडकर मराठवाडा विश्वविद्यालय
छत्रपती संभाजीनगर

प्रस्तावना :

बाल साहित्य सामान्य साहित्य से पूरी तरह भिन्न होता है। यह एक स्वतंत्र विषय है जिसके अंतर्गत बाल कथा, कविता, नाटक, एकाकी, जीवनी आदि प्रमुख विधाएँ आती हैं। इसके सृजन में साहित्यकार, बाल मनोविज्ञान का ध्यान रखते हैं क्योंकि बाल साहित्य का सृजन बच्चों के लिए ही किया जाता है। इसमें शाश्वत मूल्यों के साथ-साथ मनोरंजन का समावेश आवश्यक है। डॉ. सुरेन्द्र विक्रम तथा जवाहर 'इन्दु' ने कहा है - "बाल मनोविज्ञान का अध्ययन किए बिना कोई भी रचनाकार स्वस्थ एवं सार्थक बाल साहित्य का सृजन नहीं कर सकता है। यह बिल्कुल निर्विवाद सत्य है कि बच्चों के लिए लिखना सबके वश की बात नहीं है। बच्चों का साहित्य लिखने के लिए रचनाकार को स्वयं बच्चा बन जाना पड़ता है। यह स्थिति तो बिल्कुल परकाया प्रवेश वाली है।"1

बाल साहित्य के प्रसिद्ध कवि सोहनलाल द्विवेदी ने बाल साहित्य का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा है "सफल बाल साहित्य वही है जिसे बच्चे सरलता से अपना सकें और भाव ऐसे हों, जो बच्चों के मन को भाएँ। यों तो अनेक साहित्यकार बालकों के लिए लिखते रहते हैं, किन्तु सचमुच जो बालकों के मन की बात, बालकों की भाषा में लिख दें, वही सफल बाल साहित्य लेखक हैं।"2

हिन्दी बाल साहित्य के स्वरूप के विषय में विभिन्न विद्वानों के विचारों से यह निष्कर्ष सामने आता है कि बाल साहित्य बच्चों को स्वस्थ मनोरंजन देने के साथ-साथ उन्हें वर्तमान परिवेश और परिस्थितियों के प्रति भी जागरूकता प्रदान करे। भूमण्डलीकरण के इस 21वीं सदी के दौर में वैज्ञानिक और यांत्रिक आविष्कारों, चिंतन-मनन, रहन-सहन, काम-काज की बदलती शैली से बाल-मन भी प्रभावित है अतः बाल साहित्य भी परिष्कृत रूचि का होना आवश्यक है। बच्चों की प्रवृत्तियों, आकांक्षाएँ, जिज्ञासा, कौतूहल आदि सभी चीजें उनके मन से सम्बन्ध रखती हैं। डॉ. हरिकृष्ण देवसरे ने लिखा है "आज बाल साहित्य में जिस सैद्धान्तिक आधार भूमि की बात कही जा रही है वह उसी बाल मनोविज्ञान पर अवलम्बित है जो बालक के विकास तथा बदलते हुए परिवेश में सामन्जस्य स्थापित करने में उसके लिए सहायक होता है। बाल साहित्य के शास्त्रीय विधान न केवल मनोवैज्ञानिक दृष्टि से, बल्कि साहित्य रचना की दृष्टि से भी बड़ों के साहित्य शास्त्रीय विधानों से बिल्कुल अलग हो जाते हैं। बाल अनुभूति की सरल और गेय शब्दों में छन्दबद्ध अभिव्यक्ति ही बाल गीत है। कहानियाँ सुनकर बच्चे कुछ सीखते हैं, नए-नए सपने देखते हैं। उनके सामने सारा संसार होता है, उनके मानसिक क्षितिज का विस्तार होता है और उनकी रूचि गहरी होती है।"3

डॉ. सुरेन्द्र विक्रम भी इसके सम्बन्ध में लिखते हैं - "सच तो यह है कि बाल साहित्य का उद्देश्य बालक के व्यक्तित्व का निर्माण करना तथा उसके विकास के लिए समुचित दिशा प्रदान करना होना चाहिए। इस दृष्टिकोण से बाल साहित्य के लेखन एवं चुनाव के लिए आवश्यक हो जाता हैं कि लेखक तथा अध्यापक बालक के व्यक्तित्व के विकास की विविध अवस्थाओं में मनोवैज्ञानिक विशेषताओं को पहचानें। बाल साहित्य बच्चों की दृष्टि के अनुकूल उनका मनोविज्ञान समझकर उन्हीं के स्तर पर उतरकर, उन्हीं की भाषा में उनके समझने योग्य अभिव्यक्ति के द्वारा लिखा जाना चाहिए।"4

बाल मनोविज्ञान को समझे बिना बाल साहित्य लिखना, अंधेरे में तीर छोड़ने जैसा है। बच्चों का मन कोमल और लचीला होता है। उन पर डाला गया प्रभाव अमिट और स्थायी होता है। इसलिए बाल मनोवृत्तियों का विज्ञान, बाल मनोविज्ञान, बाल साहित्यकारों के बड़े काम की चीज है।मनोरंजन तो किसी भी साहित्य की प्रमुख विशेषता होती है। हिन्दी के बाल साहित्यकारों ने भी बाल मनोरंजन को केन्द्र में रखकर साहित्य रचा है। कविता, गीत, नाटक, कहानी, उपन्यास, निबंध आदि सभी विधाओं में बाल मनोरंजन की प्रवृत्ति का पोषण हुआ है। इसके साथ-साथ ज्ञानवर्धन को भी खेल-खेल में शामिल कर लिया जाता है। प्रकृति और पर्यावरण के साथ छोटे-छोटे वैज्ञानिक आविष्कारों के बारे में भी बच्चों को सिखाने के लिए कविता, कहानी, उपन्यास आदि विधाओं में बाल साहित्य लिखा गया है।बाल साहित्य की भाषा के विषय में राजेन्द्र कुमार शर्मा ने लिखा है "भाषा, भावनाओं और विचारों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। काव्य सृजन की प्रभावात्मकता पर भाषा का सीधा प्रभाव पड़ता है। शिशुगीतों और बाल कविताओं में तो भाषा का विशेष महत्व होता है। बाल कवियों के लिए बाल मनोविज्ञान के अनुरूप काव्य भाषा में सृजन करना, वास्तव में एक गम्भीर चुनौती है। सामान्य साहित्य की रचना तो कोई भी व्यक्ति कर सकता है, किन्तु बाल साहित्य सृजन सभी के बस की बात नहीं होती है।"5

बाल साहित्य की भाषा सरल और कोमल होनी चाहिए तभी बालक उसे समझ सकेंगे तथा बाल साहित्य के माध्यम से ही बालकों का भाषा ज्ञान भी विकसित होता है तो बाल साहित्य के लेखक को इसका भी ध्यान रखना होता है। शब्द संयोजन, शब्दों की आवृत्ति, लय एवं कोमल ध्वनि बालकों को प्रभावित करती हैं।

वात्सल्य की प्रवृति बाल साहित्य की प्रमुख विशेषता है। यह नितान्त स्वाभाविक है कि बच्चे प्यार की भाषा समझते हैं। यही वजह है कि बाल साहित्य में वात्सल्य भाव की मात्रा सर्वाधिक रहती है। बच्चों के प्रति प्रेम और स्निग्धता दर्शाने वाला रस वात्सल्य है। बाल साहित्यों में बालकों के प्रति प्रेम तो दर्शाया ही जाता है, साथ ही साथ बच्चों को भी प्रेम प्रदर्शन, आत्मीयता का भाव रखने की प्रेरणा दी जाती है। छोटे बालकों को परिवार, समाज, जीव-जंतु तथा प्रकृति से प्रेम करना बाल साहित्य ही सिखलाता है। राष्ट्र प्रेम तथा देश भक्ति का भाव भी बाल साहित्य के माध्यम से भरा जाता है। इन माध्यमों से बाल साहित्य एक सम्पूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण करता है। डॉ. शिरोमणि सिंह 'पथ' ने लिखा है- "बाल कविता की रचना ठीक उसी तरह होनी चाहिए जिस प्रकार माँ बच्चे का पालन पोषण करती है। उसी प्रकार बाल कविता की प्रकृति होनी चाहिए जो बाल मन में एक खिलखिलाहट और स्वतंत्र भावों का संचार करे जो न तो किन्हीं उपदेशात्मक या नैतिक बंधनों में बांधती हो, और न ही उबाऊ हो, जो बाल कविता केवल बाल मन को रिझाने और लुभाने वाली और बिना किसी बोझ वजन के होनी चाहिए।"6

वर्तमान शिक्षण प्रणाली ने बालकों को मशीन बना दिया है, जिससे उनके सोचने और विश्लेषण करने की शक्ति दब जाती है। दूसरों से प्राप्त ज्ञान बालकों के लिए जरूरी है, किन्तु यह ज्यादा जरूरी इस ज्ञान को वह अपनी बुद्धि से परखकर अपना बनाए अन्यथा उसका बौद्धिक विकास नहीं हो पाएगा। सामान्य तौर पर बालकों की मूल

आवश्यकताएँ निम्नलिखित हैं, जिनकी पूर्ति बाल साहित्य से होती है। क. सुरक्षा की आवश्यकता, ख. आत्मीय सम्बन्ध की आवश्यकता, ग. प्यार पाने और प्यार करने की आवश्यकता, घ. प्रशंसनीय कार्य करने और उसकी स्वीकृति पाने की आवश्यकता, ड. नीरसता से मुक्ति की आवश्यकता और च. सौंदर्यानुभूति की आवश्यकता। इसके लिए जरूरी है कि माता-पिता बचपन से ही पाठ्यपुस्तकों से इतर पुस्तकें पढ़ने के लिए बच्चों को प्रेरित करें। बच्चों की मानसिक आवश्यकता की पूर्ति का शक्तिशाली माध्यम अच्छा बाल साहित्य ही है। आस-पास की सुपरिचित वस्तुओं, पशु-पक्षियों, खिलौनों की कहानियाँ उसे अपने अनुभवों को नए संदर्भों में देखने का अवसर देती हैं। डॉ शकुंतला कालरा कहती हैं :- "साहित्य जीवन का परिष्कार और पकड़ है इस विचार चिंतन में बच्चों के विकास में बाल साहित्य और उसे रचने वाले साहित्यकारों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है और रहेगी।"7

वर्तमान में बाल साहित्य के स्वरूप में परिवर्तन आया है। वैज्ञानिक तरक्की के साधनों ने पश्चिमी सभ्यता और भोगवाद का आधिपत्य बढ़ा दिया है। लोक कथाओं, लोकगीतों का स्थान धीरे-धीरे समाप्त होता जा रहा है।" आज विश्व भर में बच्चों पर मीडिया के प्रभावों को लेकर सबसे अधिक चिंता उसके हिंसात्मक प्रभावों की है। मनोवैज्ञानिक सर्वेक्षण के अनुसार बचपन में पड़ने वाले हिंसा के प्रभाव बड़े दूरगामी होते हैं। ये बच्चे के विकास, चरित्र, आचरण, व्यवहार, विचार, स्वभाव, कार्य-शैली आदि सबको प्रभावित करते हैं।[12]

साहित्य बालकों के लिए तमाम अभावों की पूर्ति का साधन है। अच्छे स्कूल, शिक्षक, साथी, संबंधी हर बालक को नहीं मिलते लेकिन अच्छा साहित्य तो हर बालक को मिल ही सकता है। यह सच है कि बच्चों के जीवन में पुस्तकें माता-पिता और शिक्षकों का स्थान नहीं ले सकती, लेकिन पुस्तकों का स्थान कोई अन्य चीज नहीं ले सकती छायावादी काव्य का प्रमुख स्तम्भ महादेवी वर्मा जी ने सेंट्रल पेडागाजिकल इंस्टीट्यूट, इलाहाबाद में बाल साहित्य रचनालय का उद्घाटन करते हुए इस संदर्भ में अपने विचार व्यक्त किए थे :- "वस्तुतः बालक तो विश्व का सबसे व्यापक बुद्धि वाला, विशाल हृदय वाला नागरिक है। सच्चे अर्थ में हम उसी को विश्वनागरिक कह सकते हैं। उसका धर्म ही जीवन धर्म है। जब हम प्रौढ़ हो जाते हैं तब धीरे-धीरे देश-काल की सीमाएँ हमें बांधने लगती हैं और उसी प्रकार बांध लेती हैं जिस प्रकार नदी को उसके तट बांध लेते हैं और वर्षा में जो जल की तरलता सब ओर छाई रहती है वह तटों में बंट जाती है। हम भी बड़े होकर प्रौढ़ होकर अपनी कल्पनाओं को एक निश्चित दिशा दे लेते हैं। अपनी भावना को एक निश्चित लक्ष्य दे लेते हैं। अपनी बुद्धि की क्रिया को एक सांचे में ढाल लेते हैं और इस प्रकार हमारा जीवन बंध जाता है। हम एक परिवार के एक समाज के एक देश के प्राणी हो जाते हैं। संसार भर के जितने भी बालक हैं वे सब सारे विश्व के बालक हैं। उन्हें इस बात का कोई बोध नहीं है कि हम किस देश के हैं, किस समाज के हैं और किस परिवार के हैं।..... बाल साहित्य की रचना में, मेरे विचार में, सबसे बड़ी बाधा तो मनोवैज्ञानिक है। साधारणतः हम सोचते हैं कि बालक के लिए लिखना ही क्या है? हमारे विचार में, हमारी हीन भावनाओं में ऐसा लगता है कि बालक के बहुत थोड़े ही विषय हैं और बहुत सहज ही उसे बहकाया जा सकता है, किंतु उसे बहकाया नहीं जा सकता। आपमें से जो विद्वान हैं, जो विदुषी हैं, जानते होंगे कि कोई भी बालक दो मिनट में आपको निरुत्तर कर देगा। उसकी जिज्ञासा इतनी बलवती है, उसकी कल्पना इतनी विस्तृत है, उसकी भावना विश्व के हर जीवन को छूती है। और निरंतर कुछ जानना चाहती है, कुछ पाना चाहती है। हम थक जाते हैं। और कहते हैं कि इस समय नहीं, फिर, और वह समय कभी नहीं आता क्योंकि हमारे जीवन में उसका उत्तर कभी नहीं आता, समाधान कभी नहीं आता आवश्यकता यह है कि हम यह समझें कि बालक की जिज्ञासा, हमारी जिज्ञासा से विशाल है और उस जिज्ञासा को किसी एक दिशा में बांधना बड़ा कठिन है।"8

किसी भी समाज का बाल साहित्य, सामाजिक यथार्थ का सूचक होता है। बाल साहित्य समाज के जीवन दर्शन का सूचक होने के साथ-साथ उसके विकास की अवस्था का द्योतक भी होता है। पाल हजार्ड ने अपनी पुस्तक 'बुक्स, चिल्ड्रेन्स एंड मैन' में कहा है कि जिन वयस्कों ने शताब्दियों तक बच्चों को ठीक ढंग से कपड़े पहनाने की बात तक नहीं सोची वे उनके लिए उपयुक्त पुस्तकों की व्यवस्था करने की बात कैसे सोच सकते थे? अर्थात् जो समाज रोटी, कपड़ा और मकान की मूलभूत आवश्यकताओं में ही फंसा हुआ है और निर्वाहमूलक अर्थव्यवस्था से ऊपर अपने आपको नहीं उठा सका है वह बच्चों के लिए साहित्य की व्यवस्था करने की बात सोच नहीं सकता है। विश्व के अधुनातन एवं समृद्धतम देशों में भी बच्चों के लिए स्कूली पुस्तकों के अतिरिक्त अन्य साहित्य की आवश्यकता अट्ठारहवीं शताब्दी में महसूस की गई। उससे पहले 'बाल साहित्य' शब्द की कल्पना किसी ने स्वप्न में भी नहीं की।आज के बालक कल के नागरिक हैं, हम बालकों को जिस प्रकार का साहित्य देंगे उसी के अनुसार कल के समाज का रूप निश्चित होगा। जब कभी हम अपने समाज अथवा राष्ट्र में किसी बात की अत्यंत आवश्यकता अनुभव करते हैं तो उसकी सर्वप्रथम प्रतिक्रिया बाल साहित्य पर होती है। चाहे कोई राष्ट्र लोकतंत्रीय हो अथवा समाजवादी उसकी सबसे बड़ी समस्या आज यही है कि राजनैतिक और सामाजिक संस्थाओं का संचालन करने वाले साधारण जन-समुदाय को सच्चाई, ईमानदारी, (सहनशीलता, विद्वता और मूल्यों की भावना जैसे महान गुणों से संपन्न कैसे किया जाए? इस महत्वपूर्ण कार्य में बाल साहित्य बहुत बड़ा योगदान दे सकता है। वयस्कों को तो बदलना संभव नहीं है लेकिन बालकों का परिष्कार बाल साहित्य कर सकता है। साहित्य जीवन के महान मूल्यों का साधारणीकरण करता है। परीकथाओं और लोककथाओं के बीच पलने वाले बच्चे में सच्चाई, ईमानदारी, निर्भीकता और न्यायप्रियता के भाव सहज रूप से ही भर जाते हैं। पशुकथाएँ बालक की संवेदना को इतना परिष्कृत करती है कि उसमें मानव-मानव के बीच तो क्या मानव और पशु के बीच भी भेद-भाव करने की गुंजाइश नहीं रहती।

वर्तमान युग की समस्या चरित्र की समस्या है। भौतिक साधनों की बहुलता और वैज्ञानिक प्रगति ने मनुष्य के हाथ ऐसी शक्ति सौंप दी है, जिससे वह संसार का कल्याण और सर्वनाश दोनों ही कर सकता है। आवश्यकता है ऐसे चरित्रवान व्यक्तित्व की जो इस शक्ति का सदुपयोग कर सके। लोकतंत्र, समाजवाद, संयुक्त राष्ट्र संघ, पंचवर्षीय योजनाएँ और अन्य राजनैतिक अथवा सामाजिक संस्थाएँ अपने में बहुत अच्छी हैं किंतु उनका संचालन करने वाले व्यक्तियों का चरित्र ऊँचा नहीं है, उनमें भ्रष्टाचार व्याप्त है। समानता और सद्भाव का उपदेश देने वाले नेता की कथनी तथा करनी में भेद होता है। न्यायालयों में शपथ लेने के बाद भी हम झूठ बोलते हैं। दूर-दूर तक समाज में चारित्रिक संकट ही नजर आता है।

21वीं सदी भूमंडलीकरण और बाजारवाद की सदी है। बाल साहित्य भी बाजार के विस्तार में शामिल है। आज बाल साहित्य नए-नए विषयों को तलाश रहा है। सरल, सहज, सुगम भाषा में बाल साहित्य प्रस्तुत है। इंटरनेट, डिजिटल और ई-पुस्तकों के माध्यम से आधुनिक बाल साहित्य, आधुनिक बालकों तक पहुँच बनाए हुए है।

बच्चा, स्वभाव से अत्यंत कोमल, सरल, जिज्ञासु, उत्साह से लबालब, कल्पना के पंख लगाकर आकाश पाताल एक करने वाला तथा इतना मौलिक, विलक्षण संकल्पना वाला, जैसा और कोई कभी हो ही नहीं सकता। रचनात्मकता उसमें कूट कूट कर भरी है। मेरी बिटिया रानी' कविता में सुभद्रा कुमारी चौहान के भाव अगर देखें तो ऐसा ही बचपन हमारे सामने नाच उठता है।

"मैं बचपन को बुला रही थी।
बोल उठी बिटिया मेरी।
नन्दन वन-सी फूल उठी वह
छोटी सी कुटिया मेरी।।[9]

च्चों की चेतना अलौकिक है, उनकी प्रेक्षण शक्ति अद्भुत है, विनोदप्रियता और ऊर्जा उसमें स्वतः ही विद्यमान है और सदैव नवीनता की ओर उन्मुख उसका बाल-मन एक खोजी अन्वेषक की तरह हर समय क्रियाशील एवं सचेत रहता है। इन सभी विशेषताओं के साथ-साथ बालमन इतना संवेदनशील है कि जरा से आघात से सहम जाता है। विलियम वड्र्सवर्थ अपने बाल्यकाल को स्मरण करते हुए लिखते हैं।

"प्रत्येक बालक के पास कल्पना के पंख होते हैं, अपने जिज्ञासु मन द्वारा वे सोचने के नए ढंग संजोते हैं। किंतु उड़ने के पहले ही उनके पंख कुचल दिए जाते हैं, सृजनशीलता के बीज अंकुरित होने के पहले मसल दिए जाते हैं।"10

सृजनशीलता के इस बीज को प्रस्फुटित होने में बाल साहित्य मदद करता है। बाल साहित्य, बालकों की कल्पनाशीलता बढ़ाता है, उनके विश्वास और आस्था को सुरक्षा देता है। बच्चों को शिक्षा, जिज्ञासा एवं संस्कार से सम्पन्न करता है। मनुष्य को मनुष्य बनाने या यों कहें कि एक सामाजिक जानवर में मनुष्यता के बीज डालने का कार्य करने वाले अवयव ही बाल साहित्य है। बाल-साहित्य, नई कोपलों में संवेदना जगाता है। वही नए जीवन की आधारशिला है।

इक्कीसवीं सदी में देश-दुनिया और समाज तेजी से बदला है। बच्चे इन सबसे अलग कैसे हो सकते हैं। आज का बाल साहित्य भी इन सबसे अनभिज्ञ नहीं है। वह वर्तमान की चुनौतियों को खुली आँख और खुले दिल से ले रहा है। समाज में व्याप्त अनैतिकता, चारित्रिक पतन, भ्रष्टाचार, विलगाव आदि समस्याओं को यदि हल किए जाने के प्रति हम सोचें तो बाल साहित्य मुख्य जरिया बन सकता है। "नीति-कथाओं और पौराणिक कथाओं की प्रासंगिकता के पक्ष में विदेश के बाल साहित्य समीक्षक आज की राजनीतिक विचारधारा और विभिन्न समाजों के नए मूल्यों की स्वीकृति का तर्क देते हैं।"11

आज बच्चों को आधुनिक जीवन की मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। चूँकि बाल साहित्य के माध्यम से उन्हें ये प्राप्त होते हैं। अतः बाल साहित्य के पठन का प्रचार प्रसार करना अत्यावश्यक है। बच्चों के विकास के लिए बाल साहित्य की उपयोगिता को झुठलाया नहीं जा सकता। बाल साहित्य बच्चों में ज्ञान-रूचि कल्पना जगाता है। बचपन में जिज्ञासा सर्वाधिक होती है। जिज्ञासा की पूर्ति और कल्पना शक्ति के विकास में सबसे अधिक सहायक साहित्य होता है। पुस्तकों के माध्यम से बच्चा दुनिया देखता है और अपनी छोटी - सी दुनिया के साथ तादात्म्य बिठाता है। विश्व कवि रवीन्द्र नाथ टैगोर के शब्दों में "बच्चों का अर्द्धचेतन वृक्षों की तरह सक्रिय होता है जैसे वृक्ष में धरती से रस खींचने की शक्ति होती है, वैसे ही बच्चे के मन में अपने चारों ओर के वातावरण से जरूरी खाद्य प्राप्त करने की क्षमता होती है।"12

अंतहा कह सकते है की बाल साहित्य सामान्य साहित्य से पूरी तरह भिन्न होता है। यह एक स्वतंत्र विषय है जिसके अंतर्गत बाल-कथा, कविता, नाटक, एकांकी, जीवनी आदि प्रमुख विधाएँ आती हैं। इसके सृजन में साहित्यकार, बाल मनोविज्ञान का ध्यान रखते हैं क्योंकि बाल साहित्य का सृजन बच्चों के लिए ही किया जाता है। इसमें शाश्वत मूल्यों के साथ-साथ मनोरंजन का समावेश आवश्यक है। 21 वीं सदी में वैज्ञानिक और यांत्रिक

आविष्कारों, चिंतन मनन, रहन सहन, काम-काज की बदलती शैली से बाल मन भी प्रभावित है अतः बाल साहित्य भी परिष्कृत रूचि का होना आवश्यक है। बाल साहित्य बच्चों की रूचि, योग्यता एवं प्रतिभा को ध्यान में रखकर लिखा जाना चाहिए।

बाल साहित्य, संस्कृति, समाज, राष्ट्र, विश्व बंधुत्व, शिक्षा और बच्चों के सर्वांगीण विकास की दृष्टि से बेहद महत्त्वपूर्ण है। आवश्यकता है तो केवल यह कि समाज निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले बाल साहित्य का महत्त्व हम बड़े समझें और इसके समुचित विकास, प्रसार पर ध्यान दें। बाल साहित्य, बच्चों में आत्मविश्वास तथा आत्म-विकास एवं आत्म निष्ठा का संचार करता है। इसके माध्यम से बच्चे स्वयं को आधुनिक जीवन की चुनौतियों के अनुरूप ढालने में समर्थ होते हैं।

संदर्भ -

1. संपादक राष्ट्र बंधु, बाल साहित्य समीक्षा, मई 1988, बाल कल्याण संस्थान, कानपुर, पृष्ठ-06
2. हरिकृष्ण देवसरे, हिन्दी बाल साहित्य एक अध्ययन, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, सन् 1969, पृष्ठ-07
3. सुरेन्द्र विक्रम, हिन्दी बाल पत्रकारिता : उद्भव और विकास-साहित्य वाणी, इलाहाबाद, 1991, पृ. 13-14
4. राजेन्द्र कुमार शर्मा, समकालीन हिन्दी बाल कविता फाल्गुनी प्रकाशन, दिल्ली, सन् 2013, पृष्ठ 143
5. शिरोमणि सिंह ,बाल कविता में सामाजिक सांस्कृतिक चेतना , आशा प्रकाशन, कानपुर, 2013, पृ. सं. 62
6. प्रेम भार्गव, कैसे बने बालक संस्कारी और स्वस्थ-राधाकृष्ण पेपरबैक्स, नई दिल्ली. 2015 पृ. 129
7. वही, पृ. 193
8. मस्तराम कपूर, हिन्दी बाल साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन-अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि., नई दिल्ली, 2015.पृ. 31
9. वही, पृ. 35
10. अभिनेष कुमार जैन – हिन्दी बाल साहित्य प्राचीन एवं आधुनिक दृष्टि, नीरज बुक सेंटर, दिल्ली-प्रथम संस्करण, पृ. 106
11. शकुंतला कालरा (सं.) ,हिन्दी बाल साहित्य विधा-विवेचन-नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ. 20
12. डॉ. कुमारी उर्वशी विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, रांची विमेंस कॉलेज, रांची (अपनी माटी (ISSN 2322-0724 Apni Maati) अंक-35-36, जनवरी-जून 2021,)

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

मधु कांकरिया कृत 'सेज पर संस्कृत' में चित्रित स्त्री जीवन

रेश्मा वसीम मणेर

शोध छात्रा, हिंदी विभाग
डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर मराठवाडा विद्यापीठ
छत्रपति संभाजीनगर

शोध सारांश :

इक्कीसवीं सदी के हिन्दी कथा साहित्यकारों में मधु कांकरिया प्रमुख हस्ताक्षर है। उन्होंने अपने कथा साहित्य में नवीन सरोकारों को उकेरने का कार्य किया है। मधु कांकरिया प्रश्नों और समस्याओं से घिरी एक स्त्री है। उन्होंने साधारण स्त्री जीवन का वरण नहीं किया, मगर अपनी गहन जीवन अनुभूतियों को खुलकर दिखाने का समर्पित मन उनको रहा। वे साहित्य में समय-समय पर उभरे किसी वाद के साथ जुड़कर स्त्रियों की समस्याओं को बड़ी कुशलता से पकड़ने का कार्य करती है। उन्होंने अपने कथा साहित्य में नारी के विविध रूपों का, महानगरीय समाज नारी का जीवन, संस्कृति, धार्मिक आदि बातों को उजागर किया है। मधु कांकरिया ने जैन धर्म के धार्मिक आडम्बरों में फंसे स्त्रीमन की व्यथा को उजागर करने का सार्थक प्रयास किया है। इस उपन्यास में साहसी, धैर्यवान और विद्रोही स्त्री की आंतरिक पीड़ा को व्यक्त किया गया है। यह उपन्यास धार्मिक आडम्बरों के साथ-साथ नारी विमर्श पर चर्चा करता है।

बीज संज्ञा : मधु कांकरिया, स्त्री जीवन, सेज पर संस्कृत, धार्मिक जीवन

भूमिका :

मधु कांकरिया ने अठारह वर्ष की आयु से साहित्य लेखन आरम्भ किया। अध्ययन काल की कॉलेज पत्रिका में उनकी एक कहानी को स्थान मिला। दाम्पत्य जीवन के कटु अनुभवों ने उनके साहित्य लेखन को नवीन आयाम प्रदान किया। उन्होंने अपनी कहानियाँ अनेक पत्रिकाओं में भेजी परंतु सभी को लौटा दिया गया लेकिन उन्होंने हिम्मत नहीं हारी। इसके कई वर्षों पश्चात् कलकत्ता से प्रकाशित होने वाली 'वागार्थ' पत्रिका में उनकी कहानी 'फैसला फिर से' प्रकाशित हुई। यह कहानी कोर्ट कचहरी से प्राप्त होने वाली अनुभवों पर आधारित थी। इस कहानी के प्रकाशन ने उनके साहित्य सृजन में एक नई ऊर्जा भर दी। इनका पहला उपन्यास वर्ष 2000 में 'खुले गगन के लाल सितारे' प्रकाशित हुआ । मधु कांकरिया का नाम आज हिंदी महिला लेखन में पर्याप्त चर्चित है। इन्होंने अपने साहित्य द्वारा न तो नारी विमर्श का ढोल पीटा है तथा न ही किसी विशेषवाद से जुड़ी है अपितु अपने जीवन से जिन अनुभवों को बटोरा है उन्हें विविध आयामों के माध्यम से लिपिबद्ध भी किया है। मधु जी का साहित्य साधना पर विचार करना अति आवश्यक है। अब तक उनके सात उपन्यास और छह कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके है। इसके अलावा पत्र-पत्रिकाओं में अनेक कहानियाँ समय-समय पर प्रकाशित हो चुकी है।

हिन्दी महिला लेखन आज नए मोड़ पर आकर खड़ा है। आधुनिक महिला कथाकारों में उषा प्रियंवदा, मन्नु भंडारी, ममता कालिया, शिवानी, मेहरुन्निसा परवेज़ प्रभा खेतान, कृष्णा सोबती, सूर्यबाला, गीतांजली श्री, अलका सरावगी, मैत्रेयी पुष्पा, सुनीता जैन, राजी सेठ, मृदुला गर्ग, चित्रा मुद्गल, चन्द्रकांता, मनीषा कुलश्रेष्ठ, महुआ माजी अल्पना मिश्र, आदि का योगदान महत्वपूर्ण है। उनके साथ मधु कांकरिया का नाम गिना जा सकता है। मधु कांकरिया अपने कथा-साहित्य में अपनी अनुभूतियों को गंभीर रूप से अभिव्यक्त करती है। गाँव की सड़ी गलियों से लेकर महानगर के रिश्ते अंधेरे और वेश्याओं के नरक उनकेलिए प्रेरणादायक है क्योंकि वहाँ के गिरी हुई ज़िन्दगी

को देख परखकर और अपनी अनुभूतियों से सींचकर उसे लेखनी में उतारती है। मधु कांकरिया के लेखन का विषय अपने समय के जीवंत यथार्थ है। निरंतर अनुभूतियों को बटोरने की ज़िन्दगी के हर रंग को देखने की इच्छा और विभिन्न किस्म के लोगों से मिलने की लालसा के कारण वे हमेशा भटकती रहती हैं। इसलिए उनमें अनुभूतियों और अनुभवों का क्षेत्रफल व्यापक है।

सेज पर संस्कृत' में चित्रित स्त्री जीवन

मधु कांकरिया के 'सेज पर संस्कृत' उपन्यास का प्रकाशन सन् 2008 में राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली से हुआ था। मधु कांकरिया ने जैन धर्म के धार्मिक आडम्बरों में फंसे स्त्रीमन की व्यथा को उजागर करने का सार्थक प्रयास किया है। इस उपन्यास में साहसी, धैर्यवान और विद्रोही स्त्री की आंतरिक पीड़ा को व्यक्त किया गया है। यह उपन्यास धार्मिक आडम्बरों के साथ-साथ नारी विमर्श पर चर्चा करता है।

उपन्यास की नायिका संघमित्रा है । संघमित्रा के पिता और उसके भाई ऋषि की अकाल मृत्यु हो जाती है। परिवार में उसकी माँ और छोटी बहन छुटकी है। आर्थिक अभावों से गुजरता परिवार अपने अस्तित्व को लेकर चिंतित है। संघमित्रा की माँ पूर्णिमा अपनी आर्थिक एवं सामाजिक समस्या का हल साध्वी जीवन में ढूंढती है। पूर्णिमा देवी की हार्दिक इच्छा है कि संघमित्रा और छुटकी जैन साध्वी बन दीक्षा ग्रहण करें। पूर्णिमा देवी का विचार है कि स्त्री के साध्वी बन जाने पर उनके मान-सम्मान में वृद्धि हो जाती है। जैन धर्म में आस्था रखने वाली पूर्णिमा देवी धर्म की आड़ में परिवार को सुरक्षित रखना चाहती है। संघमित्रा अपनी माँ पूर्णिमा देवी के इस विचार का विरोध करती है। संघमित्रा अपनी माँ पूर्णिमा देवी को समझाने का प्रयास करती हुई कहती है कि मनुष्य को आशावादी एवं कर्मशली होना चाहिए। संघमित्रा के शब्दों "तुमने तो धर्म को लोमड़ी की तरह चालाक बना दिया है। जीवन मुश्किल लगे तो धर्म का लबादा डाल लो। सोचो माँ, तुम्हारा डर और असुरक्षा बोध इस कारण है कि घर में कोई पुरुष नहीं। तुम्हें लगता है कि तुम अपने बूते हमारे लिए पति का जुगाड़ नहीं कर पाओगी तो इन्हें धर्मरूपी पति के हवाले कर दो। पर हमे न पति चाहिए न घर पूर्णिमा देवी 'शिखर जी' की धार्मिक यात्रा प्रतिबन्द व सूर्यास्त के पश्चात् भोजन न करने का कड़ा नियम अपने परिवार पर लागू करती है। संघमित्रा इन नियमों का उल्लंघन करती है। पूर्णिमा देवी अपनी छोटी बेटी छुटकी पर इन नियमों का पालन करने का दबाव देती है। छुटकी के बालसुलभ मन पर घर के धार्मिक परिवेश का प्रभाव बढ़ता जा रहा था।"[1] ऋषि की मृत्यु होने पर वह स्वयं को अकेला महसूस करने लगी थी। छुटकी की जाने में रूचि लगातार कम होती जा रही थी। इसके दो प्रमुख कारण थे, स्कूल टीचर्स की डाँट फटकार एवं लोगों द्वारा उसकी प्रशंसा करना, इसीलिए वह साध्वी जीवन की ओर आकर्षित होने लगी । संघमित्रा अपनी छोटी बहन छुटकी को दीक्षित होने से रोकने का प्रयास करती है। पूर्णिमा देवी और छुटकी साध्वी जीवन में दीक्षित होने के लिए कलकत्ता पहुँचती हैं। दीक्षा समारोह को रोकने के लिए संघमित्रा संघ प्रमुख गुरुदेव से मिलती है परंतु उसको वहाँ भी निराशा हाथ लगती है।

पूर्णिमा और छुटकी की दीक्षा के लिए मोहम्मद अली पार्क को दुल्हन की तरह सजाया गया तथा धर्म गुरुओं और अपार जनसमूह की मौजूदगी में छुटकी को दीक्षित कर उसे दिव्याप्रभा का नाम दे दिया गया। छुटकी के नामकरण के साथ शुरू हुई विरूपीकरण की क्रिया जिसमें दुल्हन की तरह सजी छुटकी के शरीर से एक-एक कर आभूषण उतार उनकी बोलियां लगाई गई। केश लुंचन प्रक्रिया में छुटकी दाँत भींचकर इस वेदना को सहन करती रही। अब छुटकी एक साध्वी का रूप धारण कर चुकी थी । इसके पश्चात् पूर्णिमा देवी के दीक्षित होने का क्रम आरम्भ हुआ। नामकरण के पश्चात् पूर्णिमा देवी साध्वी मणिप्रभा बन चुकी थी ।

संघमित्रा बी. कॉम की पढ़ाई पूरी कर अपनी सहेली मालविका के पास आती है। कम्प्यूटर अप्लीकेशन में डिग्री हासिल कर वह एक कम्पनी में नौकरी करना आरम्भ कर देती है। कम्पनी के सिस्टम मैनेजर मि. मेहता द्वारा की गई बदतमीजी के कारण संघमित्रा अपनी नौकरी से त्याग पत्र दे देती है। उत्तराधुनिकता के इस दौर में गिरते मानव मूल्य और स्त्री-स्वाभिमान को देख वह चिंतित होने लगती है। महानगरों में नारी स्वाभिमान और सम्मान के गिरते स्तर को देख्ख संघमित्रा 'नारी शक्ति संघ' की स्थापना करती है। कथाकार के शब्दों में- "न्याय का सूरज अगर उगाना होगा तो आसमान की ओर छलाँग मारने की चोट भी खानी ही पड़ेगी।"[2] संघमित्रा अपने साथ हुए दुर्व्यवहार के लिए विरोध करती है । संघमित्रा के इस विरोध को परिणामस्वरूप मि. मेहता को अपनी इस गलती के लिए लिखित रूप में माफी मांगनी पड़ती है। छुटकी से साध्वी बनी दिव्याप्रभा में यौवन अंकुर प्रस्फुटित होने लगते हैं।

साध्वी दिव्याप्रभा साध्वी जीवन के यथार्थ को भोगते हुए उसमें भौतिक संसार के प्रति प्रेम भाव जागता है। साध्वी रेणूश्री दिव्याप्रभा पर कड़ी नज़र रखती है कि कही वह साध्वी जीवन की मर्यादाओं का उल्लंघन तो नहीं कर रही। दूसरी तरफ साध्वी शशिप्रभा भी अपने सांसारिक जीवन में लौटना चाहती है, परन्तु संघ के दबाव के चलते वह ऐसा नहीं कर पाती है। शशिप्रभा अन्त में आत्महत्या कर लेती है। 'विजिटेरियन कांग्रेस' नामक धार्मिक सम्मेलन में साध्वी दिव्यप्रभा और विजयेन्द्र मुनि का मिलन होता है और एक दूसरे की तरफ आकर्षित होते हैं। साध्वी दिव्वाप्रभा और विजयेन्द्र मुनि दोनों का ही संन्यासी जीवन से मोह भंग हो चुका था। विजयेन्द्र मुनि संघ से पलायन करने की बजाय संघ प्रमुख के नाम एक पत्र छोड़ संन्यासी जीवन से मुक्त होना चाहते हैं। विजयेन्द्र मुनि का मित्र अभय मुनि दिव्याप्रभा को रेणुश्री के उपसार से बहार ले जाने में कामयाब हो जाता है। अभय मुनि वासना के अधीन हों साध्वी दिव्याप्रभा का बलात्कार कर देता है। कथाकार मधु कांकरिया ने संन्यासी जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत करने का सार्थक प्रयास किया है। दिव्याप्रभा के गर्भ में बढ़ता भ्रूण उसे कंलकित घोषित करवा देता है। दिव्याप्रभा को संघ से निष्कासित कर दिया जाता है। विजयेन्द्र मुनि उसे लेने के लिए रेणूश्री के उपसार पहुँचता है तब तक दिव्याप्रभा को अपमानित कर संघ से निष्कासित कर दिया जाता है। संघ ने छुटकी को उसके चाचा को सौंप दिया। चाचा के नौकर ने छुटकी को नौकरी दिलाने के बहाने उसे किसी चकले में बेच दिया। जब तक छुटकी यह जानपाती कि वह कहाँ है? वेश्यावृत्ति का कलंक उसके मस्तिष्क पर लग चुका था। छुटकी ने एक कन्या को जन्म दिया जिसका नाम था- ऋषि कन्या। छुटकी इन बदनाम गलियों में रहते हुए भी अपनी पुत्री ऋषिकन्या की पवित्रता को बनाए रखती है।

संघमित्रा एक सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में कार्य करती है। उसके द्वारा स्थापित 'नारी शक्ति संघ' में बीस हजार महिलाएं इसकी सदस्यता प्राप्त कर चुकी थी। संघमित्रा अपनी बहन छुटकी को दीक्षित होने से न रोक पाने का दुखः पल- प्रतिपल उसे पश्चाताप की अग्नि में जला रहा था। संघमित्रा अपने कार्यालय में बैठी छुटकी के बारे में सोच रही थी तभी ऋषिकन्या नामक एक लड़की उसके घर चलने का आग्रह करती है। उसका घर बहु बाजार की इन बदनाम गलियों में था जहाँ चौदह् वर्ष से चवालिस वर्ष तक की महिलाएं सस्ते मेकअप, आभूषण और भड़कीले वस्त्रों में ग्राहकों की प्रतिक्षा में खड़ी थी। ऋषिकन्या की माँ छुटकी अपनी बहन संघमित्रा को देख भावुक हो उठती है । संघमित्रा छुटकी से साध्वी दिव्यप्रभा से वेश्या बनने तक के यथार्थ के बारे में विस्तारपूर्वक पूछती है कि वह यहां कैसे पहुँची। छुटकी की ऐसी दशा देख संघमित्रा फूट-फूट कर रोने लगी। छुटकी संघमित्रा को बताती है कि माँ ने उसके कलंकित होने की बात सुन संथारा पचख लिया। वह ऋषिकन्या और छुटकी दोनों को अपने घर ले आती है। वह छुटकी की डॉक्टरी जाँच करवाती है जिसकी रिपोर्ट के अनुसार कैंसर उसके पूरे शरीर में फैल चुका है। कैंसर के कारण छुटकी की मृत्यु हो जाती है। संघमित्रा उस अभयमुनि से प्रतिशोध लेना चाहती है जिसने छुटकी के साथ

बलात्कार किया। वह अभय मुनि की खोज कर उसे अपने प्रेमपाश में फंसाकर अपने घर पर गोचरी की निमंत्रण देती है। इस निमंत्रण से उत्तेजित अभय मुनि को संघमित्रा मृत्युदण्ड दे स्वयं को पुलिस के हवाले कर देती है। दो साल कोर्ट केस चलने के पश्चात् संघमित्रा को आजीवन कारावास की सजा सुनाई जाती है। संघमित्रा अलीपुर सेंट्रल जेल में महिला वार्ड में सजा काटती है। संघमित्रा संघ के धार्मिक आडम्बरों पर प्रकाश डालती हुई कहती है कि "काली अंधेरी रातों का मुकाबला किया जा सकता है, क्योंकि वे भ्रम नहीं पैदा करती, पर जब सूर्य ही उजाले में भ्रम में अंधेरा फेंकने लगे, धरती को काला करने लगे तो उसे मिटाने के अलावा कोई रास्ता नहीं बचता।"[3] इस उपन्यास के अन्त में ऋषिकन्या और विजयेन्द्र मुनि उससे मिलने के जेल आते हैं। ऋषिकन्या और 'नारी शक्ति संघ' की जिम्मेदारी जैनमुनि विजयेन्द्र को लेता देख संघमित्रा अचरज में पड़ जाती है। कथाकार मधु कांकरिया ने विजयेन्द्र मुनि जैसे पात्रों के माध्यम से समाज के कर्तव्यनिष्ठ, सभ्य व्यक्तियों का चित्रण किया है। 'सेज पर संस्कृत' उपन्यास पारिवारिक, सामाजिक व धर्म के विकृत को रूप को उजागर करता है। संन्यासी जीवन के यथार्थ और धर्म की आड़ में होने वाले अनाचार, अपराध को बेबाक तरीके से व्यक्त किया गया है। आधुनिकता के इस युग में भी धर्म को समाज के मार्गदर्शक के रूप में देखा जाता है। इस उपन्यास के अध्ययन के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि मूल्य संक्रमण, अर्थ के बढ़ते वर्चस्व व धार्मिक आडम्बरों ने धर्म को विकृत करने का कार्य किया है। संन्यासी के रूप में धूर्त चालाक व अपराधी लोग समाज में रह रहे हैं। मधु कांकरिया स्वयं एक जैन परिवार से सम्बंध रखती हैं फिर भी उन्होंने जैन मुनियों और साध्वी जीवन के यथार्थ का चित्रण अपने कथा साहित्य में किया है। निस्संदेह उन्होंने समाज का विरोध झेलना पड़ा होगा। संवेदनशील एवं भावुक मधु कांकरिया ने समाज में व्याप्त समस्याओं को अपने लेखन के विषय के रूप में चुनना उनकी साहसिकता का परिचायक है।

"मधु कांकरिया ने सेज पर संस्कृत' में धर्म और अध्यात्म के नाम पर चल रहे धन्धों पर बहुत साहसपूर्ण चोट की है। जैन धर्म के गुरुडम के दुर्ग पर वे न केवल चुनौतीपूर्ण आक्रमण करती हैं अपितु तद्विषयक अपनी गहन शोध पूर्ण दृष्टि से इस समाज का समाजशास्त्रीय अध्ययन ही प्रस्तुत कर देती हैं। मालविका, संघमित्रा, छुटकी आदि के माध्यम से बड़ी बहन धर्म नाम पर हो रहे कुत्सित मनोवृत्ति के मिथ्याचारों पर बड़ी तार्किक विवेचना कर उन मान्यताओं को बुरी तरह खंडित करती हैं जिन्होंने धर्म के नाम पर मानवता और संस्कृति के सहज विकास को अवरुद्ध कर दिया है। दिगम्बर सम्प्रदाय में दीक्षित निर्मल साधु और साध्वियों के जीवनेतिहास में गहरे जाकर धर्म के नाम पर चल रहे आडम्बर और धर्माचार्यों के छद्माचरण की कलई खोली गई है। धर्म तत्वों को लेकर जो विमर्श स्थान-स्थान पर रचा गया है वह बहुत प्रभावी बन पड़ा है। भाषा की ताजी तराश भी उपन्यास को बहुत आकर्षक रूप में पठनीय बनाती है।"[4]

इस प्रकार मधु कांकरिया ने 'सेज पर संस्कृत' उपन्यास में धार्मिक आडम्बरों में फसे नारी के जीवन को चित्रित किया है। आज के आधुनिक जीवन में महिला प्रगति की ओर जा रही है परंतु धर्म की आड में उसे पिछे लाने का प्रयास किया जा रहा है। इसका वास्तविक चित्रण मधु कांकरिया ने अपने उपन्यास के माध्यम से किया है।

संदर्भ :

1. कांकरिया मधु - सेज पर संस्कृत, पृ. 51
2. वही, पृ. 158
3. वही, पृ. 227
4. सिंह पुष्पपाल, 21वीं शती का हिंदी उपन्यास, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली, 2016, पृ. 61

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

महिला लेखिकाओं के कथा-साहित्य में स्त्री-विमर्श

डॉ. राठोड संजीवनी जनार्धन
पोस्ट डॉक्टरल फेलो
भारतीय सामाजिक विज्ञान
अनुसंधान परिषद,नई दिल्ली.

स्त्री विमर्श उस साहित्यिक आंदोलन को कहा जाता है, जिसमें स्त्री अस्मिता को केन्द्र में रखकर संगठित रूप से स्त्री साहित्य की रचना की गयी है। हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श अन्य अस्मितामूलक विमर्श की भाँती ही मुख्य विमर्श रहा है, जो लिग विमर्श पर आधारित है। स्त्री विमर्श को अग्रेजी में 'फेमिलिज्म' कहा गया है। हिन्दी कथा साहित्य में स्त्री विमर्श जिसमें नारी जीवन की अनेक समस्याए देखने को मिलती है। हिन्दी साहित्य में छायावाद काल से स्त्री विमर्श का जन्म माना जाता है। प्रेमचंद से लेकर आज तक अनेक पुरूष लेखकों ने स्त्री समस्या को अपना विषय बनाय लेकिन उस रूप में नहीं लिखा जिस प्रकार महिला लेखिकाओं ने लिखा है।

स्त्री विमर्श स्त्री के जीवन विषयक एक ऐसा तत्वज्ञान है, जिसमें स्त्री जीवन के सभी पहलुओं पर उसके दृष्टिकोण से प्रकाश डाला जाता है। यह विचार आधुनिक युग की आवश्यकता बन गया है। इसमें एक बात ध्यान में रखनी होगी कि, स्त्री विमर्श पुरूष संस्कृति का विरोधी नहीं है, बल्कि व तो समान अधिकारों का विचार लेकर चलता है। 'स्त्री अस्मिता' जानने वाला व्यक्तित्त्व की स्वतंत्र पहचान के लिए आंदोलन हो रहे है। क्योंकि अब तक स्त्री पुरूषाधिकार तथा सत्ताधिकार में दबी हुई और सहमी हुई थी। आज उसे शिक्षा का अधिकार प्राप्त हुआ और उसने बोलना सीख लिया। बेजुबान को जुबान मिली और उसने अपने अधिकारों को वाणी देकर अपने स्थान की मांग की। 'शिक्षा' की वजह से उसमें आत्मविश्वास जगा और अपने स्वतंत्र अस्तित्व एवं व्यक्तित्त्व के लिए वह अधिकारों को खुलकर अभिव्यक्ति करने लगी इस संदर्भ में डॉ. राजकुमार लिखते हैं- "बेसे आधुनिक नारीवाद के सिध्दान्त का पहला मील का पत्थर पहली बार १९४६ में फ्रांसीस में प्रकाशित सिमोन द बोउवा की कृति 'द सेकण्ड सेक्स' या जिसमें व्यापक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, सामाजिक-आर्थिक विश्लेषण और नारी आन्दोलन की एक स्पष्ट दिशा के अभाव के बावजूद नारी उत्पीडन के कई सूक्ष्म पहलुओं को रेखांकित किया गया था और वह प्रस्थापना दी गई थी कि स्त्रियों की मुक्ति में ही पुरूषों की भी मुक्ति है जो स्वयं पुरूष स्वामित्त्व की मानव द्रोही मानसिकता के दास है।"[1]

महिलाओं को समान अधिकार, प्रतिष्ठा और सम्मान मिलना चाहिए इस में स्त्रीवाद विश्वास करता है। नारी की पीडा, दुखः, दर्द त्याग, बलिदान, वात्सल्य, छटपटाहट, त्रासदी को ही अधिक साहित्यकारों ने दर्शाया है। स्त्रियों के साथ मानवता का व्यवहार होना चाहिए। स्त्री न तो दासी बनकर जीना चाहती है, न ही देवी बनकर जीना चाहती है, वह केवल इन्सान, मनुष्य बनकर जीना चाहती है। उसकी छटपटाहट केवल अपने अस्तित्व को बचाए रखने की है। नारी की इस समस्याओं को महिला कहानीकारों ने अपनी कहानियों में चित्रीत किया है। मन्नू भंडारी हो या शशिप्रभा शास्त्री, मैत्रेयी पुष्पा, उषा प्रियवंदा हो या उषा देवी मित्र हो या देवी चौधरी होमबति हों या सत्यवती, चन्दकिरण सौनरैक्सा, शिवरानी बिश्नोई इन सभी लेखिकाओं ने घरेलू परिवेश में मानवीय अनुभूतियों को चित्रित किया है। उषा प्रियवंदा की कहानियों में आधुनिक जीवन की व्यस्तता, कुलबुलाहट, उलझनों की अभिव्यक्ति है। कहानी वापसी हो या झूठा दर्पण, मोहबंध, एक कोई दूसरा, सागर पार का संगीत, जिन्दगी और गुलाब के फूल,

इन सभी कहानियों में विवाहित जीवन पर व्यग्य तथा विवशताओं को उभारकर नारी के लिए संरक्षण की मांग की है।

मन्नू भंडारी की कहानी तीसरा आदमी में संदेह के चक्रव्यूह में फसी पत्नी का चित्रण मिलता है। बदलते हुए परिवेश में स्त्री-पुरूष संपर्क सहज स्वाभाविक है। तीसरे आदमी की उपस्थिति से पति की बदली मानसिकता का चित्रण इस कहानी में किया गया है। पति सतीश के मन में पत्नी शकुन को लेकर संदेह पैदा होने लगता है। शकुन के परिचित लेखक आलोक जब शकुन से मिलने आता है तब सतीश के मन में शकुन और आलोक को लकर गन्दी शंकाएँ आने लगती है। उसने स्वयं आलोक के पात्र पढे है। "उनमें उसे कही कुछ ऐसा नहीं लगा, जिससे वह आहत अनुभव करें पर हमेशा उसे लगता है कि लिखे हुए शब्दों से परे भी कुछ है जरूर वरना इन शब्दों शब्दों में आखिर ऐसा क्या है जो शकुनयों प्रसन्न रहती है।"[2] पत्नी उखडी-उखड़ी जी रही है तो भी शंका और खुश रही फिर भी शंका रहती है। ऐसी स्थिति में स्वी जिए भी तो कैसे जिए? भारतीय पुरूष के संदेह की रष्टि में जीनेवाली रवी का चित्रण इस कहानी में लेखिकाने किया है। मन्नू भंडारी की कहानियों में नारी जीवन के विविध चित्रण है नारी जीवन की समस्याओं को अपने नारी के अन्तर्ईन्यों के साथ बुनकर समाज से आग्रह किया है कि नारी के प्रति दृष्टिकोण की ही विशद न बनाया जाये क्रियात्मक रूप में भी उसके साथ सद्व्यवहार हो, यही नारी विमर्श का आग्रह भी है। तीसरा आदमी सजा, क्षय तथा अकेली मन्नू भंडारी की सशक्त कहानियाँ है।

'रेत का महल' में अकेलेपन की समस्या का चित्रण है। नायिका को जबरन शादी से अकेलेपन से भांगना पड़ा। परिवार में पति की प्रभुत्व भावना पत्नी को बेहद अकेला छोड जाती है। इस संदर्भ में डॉ. बाबासाहेब कोकाटे लिखते हैं, "अकेलेपन का दर्द उपेक्षा किसी भी मनुष्य के अपनेपन और विश्वास को डगमगा देते हैं। अपना अपना नहीं लगता तब अपने से नफरत या ग्लानि का जन्म होता है।"[3] 'रेत का महल' की नायिका के साथ भी यही हुआ। पति का दिनों-महिनों पता नहीं चलता था कि वे कहाँ हैं? बिजनेस था उनका, मालिक थे वे अपने पैसे और मर्जी के भी। मेरी हिस्सेदारी कहाँ थी। उनके जीवन के किसी भी हिस्से में। अकेलेपन की इस समस्या से निपटने के लिए नायिका विद्रोह का रास्ता अपनाती है। बैंकिंग सेवा प्रतियोगिता की परीक्षा में यशस्वी होकर जब उसकी पोस्टींग जमशेदपुर होती है तब नायक आकाश सोच भी नहीं सकता था कि "उनकी कहावर बिसात के नीचे सिकुडता यह पौधा इतना कटीला हो चुका होगा कि उन्हें कोंचते हुए निकल जाएगा।"[4] नायिका कहती है। मैं अकेलेपन से टूटती या झुकती नहीं। एक सामान्य स्त्री होने के बावजूद वह अपनी समस्या का हल खुद ही ढूँढती है और अपने अकेलेपन का सामना करती है। उषा महाजन ने अपने अकेलेपन का सामना करती है। उषा महाजन ने अपनी कहानी में अकेलेपन से लड़नेवाली नारी का चित्रण किया है।

मैत्रेयी पुष्पा ने 'वह छटी बहू' कहानी में विधवा की समस्या को अभिव्यक्ति देने में सक्षम है। कहानी की नायिका दमयंती ने अपने पति की मृत्यु के बाद स्वतंत्र रहने का निर्णय लिया। जिसके कारण उसके जेठ ने जायदाद से उसे बेदखल कर देता है। ऐसी ही विधवा नारी की समस्याओं का चित्रण मैत्रेयी पुष्पा ने अपनी कहानी के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

शशिप्रभा शास्त्री ने तट के बंधन में प्रेम और विवाह की समस्या को उठाते हुए दर्शाया है कि नारी जब पति और पत्नी के बीच दोलायमान रहती है तब अनेक उलझने और द्विधाये उत्पन्न हो जाती है। प्यार की दीवार में संवाद है- "प्यार बिना नरक है जिन्दगी।"[5]

महिला कहानीकारों की कहानियों में नारी जीवन की समस्याओं के साथ-साथ काम कुठाये अधिक उभारी गयी है। लेखिकाओं ने प्रेमविवाह तथा दाम्पत्य जीवन के भिन्न आयामों में निरूपण किया है। कहानी में जीवन निरूपण जिस व्यापकता गंभीरता और सघनता से संभव है, साहित्य की अन्य विधाओं में वो कदाचित नहीं"[6] महिला लेखिकाओं नो अपने कथा साहित्य के माध्यम से नारी विमर्श हेतु उद्बोधन कर जटिल प्रश्नों के उत्तर प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इस बारे में डॉ. रामदशरथ मिश्र कहते है कि, "नयी कहानी के कथाकारों ने अपने-अपने परिवेश के यथार्थ को बड़े प्रामाणिक रूप से पेश किया है। ये लोग प्रेमचन्द के आलोचक थे। [7]

जहाँ तक जनजीवन की समस्याओं का प्रश्न है, वो प्रत्येक कहानी में है जिसके माध्यम से जनमानस को जागृत करने का प्रयास किया गया है। नारी के विषय जीवन ने ही नारी विमर्श को जन्म देकर नारी कल्याण का बीड़ा उठाया है। लक्ष्य कितना ही महान हो जब तक साधना नहीं होती साध्य केवल स्वप्न होकर रह जाता है। इस अन्ध भौतिकवादी युग में नारी जीवन निरन्तर असुरक्षा के लाल में आबध्द होता जा रहा है। जिसका समाधान कोरे विचार नहीं उनके अनुपालन का वृत्ति बनना भी है। नारी के प्रति जितने अपराध हरदिन हो रहे हैं संभवतः इतने कभी नहीं हुए। सिध्दान्त में जहाँ नारी शक्ति दुर्गा, लक्ष्मी आदि का पर्याय है, वहाँ व्यवहार में उतनी ही शोषित, उपेक्षित प्रताडित एवं पीडित है। उसका उच्चतम शैक्षिक स्तर उसके गुण उसका सौंदर्य उसका शील एवं उसके नारी सहज गुण भी उसका मूल्य नहीं बढ़ा रहे हैं। आज वर्तमान में भी उसे दुय्यम दर्जा दिया जा रहा है। स्त्री स्वतंत्र की लडाई केवल स्त्रियों को ही नहीं लडनी चाहिए बल्कि पुरूषों को भी इस लडाकू में उनका साथ देना चाहिए।

संदर्भ:-

1. डॉ. राजकुमार, मानव एवं विकास, पृ.१३३
2. मन्नू भंडारी, यही सच है और अन्य कहानियाँ, पृ.३०
3. उषा महाजन, सच तो यह है, पृ. १६
4. डॉ. बाबासाहेब कोकाटे, हिन्दी साहित्य में महानगरीय नारी जीवन, पृ.१३८ ब्रम्हा स्वरूप शर्मा, हिन्दी कहानी की विकास यात्रा, पृ.११६
5. सुरेन्द्र तिवारी, कथा रंग, पृ.१३६
6. शशिप्रभा शास्त्री, प्यार की दिवार में, पृ.३९

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

उर्दू शायरी पे गालीब मिरज़ा असदउल्लाह खाँ गालीब

प्रा.महेजबीन फारुखी
कला व वाणिज्य महिला महाविद्यालय
अंबाजोगाई ,जिला बीड

गजल में जात भी है और काऐनात भी है
हमारी बात भी है और तुम्हारी बात भी है।

मिरज़ा असदउल्लाह खाँ गालीब उर्दू अदब के एक मशहूर नाम वक्त शायर कवी है। उन की शायराना अजमत को उर्दू शायरों, आम इनसानों सभी ने माना है। उर्दू दुनिया में गालिब का नाम सब से पहले आता है । यह बात भी गालीब के बारे में कही जाती है की जो लोग उर्दू भाषा को जानते भी नहीं वह लोग भी गालीब को जानते है। उन की गज़ल - गजल के अशार पंतीयाँ बहुत से लोगो को याद है।

गालीब 27 फेब्रुवारी 1797 को आगरा में पैदा हुए और 15 फेब्रुवारी 1869 को दिल्ली में इनतेखाल हुवा । हजरत नीजामउददीन औलीया दिल्ली में उन की मजार है।

मीर तखी मीर के बाद उर्दू गजल के जिस शायर ने नई राहे दिखाई, और बुलंद मकान अता किया वह कवी गालीब ही है।गालीब ना सिर्फ बुलंद कवी थे बलकी एक बेमिसाल नसर निगार भी थे। उर्दू Prose में उनके Letters बहुत मशहूर है। गालीब की poetry par उर्दु वालो ने बहुत काम किया। Phd, M.phil के Research के Thesis लिखे गाए।गालीब उर्दू शायरी का एक बहुत बड़ा नाम है जिस पर बहुत ज्यादा बलकी सबसे ज्यादा काम हुवा है। परंतु गालीब को उर्दू वालों से हमेशा शिकायत रही,वह हमेशा यही कहते रहे।

मेरी जैसी खदर होनी चाहिए थी वैसी खदर नहीं हुवी।
या रब जमाना मुझको मीटाता है किस लिए
लुहे जँहा पें हरफे मुकर्रर नहीं हूँ मैं

इस बात में कोई शक नही की गालीब ने जमाने की ना खदरी का गिला किया । आज हम जब गालीब की जिन्दगी के हालात की study करते है तो हमें यह पता चलता है की गालीब की जिन्दगी में ही उन की जितनी कदर हुवी उतनी कदर तो उर्दू के किसी दूसरे कवी को नसीब नहीं हुवी। गालीब को उनकी जिन्दगी में ही भारत का सब से बढ़ा शायर मान लीया गया था। गालीब के कदरदान उन को चाहने वाले भारत के कोने कोने में फैले हुऐ है।

गालीब पर सब से पहेली पुस्तक खाज अलताफ हुसैन हाली ने लिखी, जिस का नाम" यादगारे गालीब है।खाजा अलताफ हुसैन हाली गालीब के शिष्य थे। गालीब के साथ रहेकर उन्होंने गालीब से बहुत कुछ सिखा था। हाली एक नेक शरीफ और धार्मिक व्यक्तीमत्व रखते थे। जब की गालीब आजाद तबीयत के मालिक थे। हर तरह की बनदिशों पाबंदीयो से आजाद थे। उस जमाने के बढ़े बढे उलमा, मुफती, गालीब पर फिदा होते थे । इस की वजहा यही थी के गालीब आजाद मानीश थे परंतु उनका शिक्षण बहुत ज्यादा था और ईश्वर ने उन को गैर मामूली हाफिजा दिया था। हाली ने कहा है।

मिरजा गालीब ३०/३५ साल पहले पढ़ी हुयी किताब का हवाला बढ़ी आसानी से देते थे। गालीब को इलमे फलसफा, मंतीक तसवव्वूफ जैसे मुशकिल विषय पर वह बड़ी आसानी से, बेतकललुफि के साथ और हकीमाना महारत के साथ गुफतगू करते थे।

इस से यह बात साबीत होती है की गालीब ने अपने वकत व जमाने के विषय का भरपूर ज्ञान प्राप्त किया था और उनके इस ज्ञान ने ही उन को वह बुलंदी फिकर, वुसतनजरी, वसीउलखलबी अता की थी। इन सब की झलक उन की शायरी में हर जगह नजर आती है।

गालीब की शायरी की खास बात बताते हुवे खाजा अल्ताफ हुसैन हाली "ने "याद गारे गालीब" में बडी कारामद आमद बात कही है। हाली कहते है की,

गालीव चंद मखसूस बातों की वजह से मुनफरीद है। वह यह है :-१) जिद्द्त (२) तराजी (३) नुदरत (४) नाजुक ख्याली (५)शूखी जराफत (६) वसीउन्नजरी

यही वह बुनयादी खुसूसियत है जिनकी एक एक करके हानी ने जायजा लिया है और गालीब को अपने जमाने का मुनफरीद शायर खरार दिया था।

गालीब ने जिस जमाने में अपनी शायरी का आगाज किया था उस जमाने में हजरत अमीर खुसरो और अब्दुल खादर बेदील (फारसी कवी) का बढ़ा गहरा असर था । बेदिल बहुत मुशकिल जुबान इस्तेमाल करते थे। गालीब ने खूद इस बात को तसलीम किया है ।

तरज़े बेदिल में रीखता कहना (रीकता) असद उल्लाह खाँ कियामत है ।

गालीब के दिवान में ऐसी बहुत सी गज़लें है जिन पर बेदिल का असर नजर आता है। गालीब की इस मुश्कील पसंदी की वजह से शुरुवात के वक़्त में दिल्ली वालों ने गालीब पर तनखीद / अलोचना की थी। परंतु गालीब ने खुद अपने बारे में कहा।

मुझे समझना दुशवार है, जिसमें मिलना जरफ है और अखल व शउर है उस हिसाब से उसने मुझे समझा है। शुरुआत में गालीब ने बेदिल की नकल की पर आगे चल कर उन्होंने यह तरीका छोड दि। और खुद अपने अंनंदाज़ में तरज में शेर कहना शुरु किया। और यहीं से गालीब को इनफरादीयत हासील हुवी- गालीब का मिजाज बढ़ा ही अजीब था आम रविश से हट कर वह जीना और मरना पसंद करते थे । गालीब ने मौत के ताल्लुक से ईश्वर से ये प्रार्थना कि के मै किसि वबा मे मरना नही चाहता । मै ये नही चाहता के कोई वबाई मर्ज आए और मै हलाक हो जाऊ । गालीब ये चाहते थे के जिस दिन मेरी मौत हो उस दिन दिल्ली शहर मे या गली मोहल्ले मे किसी कि मौत ना हुवि हो । जब दिल्ली शहर कि गलियो से मेरा जनाजा गुजरे तो लोग मेरे जनाजे को देख कर ये पुछे के ये किस का जनाजा है ।

उस जमाने में जिस अनदाज कि शायरी दूसरे कवी कर रहे उन सबसे हटकर गालीब ने शायरी की। गालीब के कलाम में जो जीददत थी जो नयापन था वह कीसी और के पास नहीं था।

इमा मुझे रोके है तो रोक है मुझे कुफ्र
काबा मेरे पिछे है कलीसा मेरे आगे।

गालीब ने अपनी शायरी को अलग करने के लिए बढ़ी तरफगीये अदा से काम लिया।

तरफगीये अदा का मतलब होता है ऐसी गुणवत्ता जो किसी और के पास ना मिताली हो। उन की, गजल को देखकर यह लगता है की ऐसी तेकनिक ऐसा खियाल किसी और के पास नहीं है और यही बात गालीब को दूसरों से अलग करती है।

सब कहाँ कुछ लाला व गुल में नुमाया हो गई
खाक में क्या सुरते होगी के पिन्हा हो गई।

गालीब ने तसव्वुफ सूफी इजम भक्ती तहरीक,वारकरी संप्रदाय के विषय पर भी मुनफरीद अनदाज में लिखा है और इस बात को खुबूल भी किया है की वह इस विषय पर कुछ कहने के काबील नही ।

कहु किससे मै के क्या है शबे गम बुरि बल है
मुझे क्या बुरा था मरना अगर एक बार होता ।

तसव्वुफ पर मीर तकी मीर की तरहा गालीबने भी कहा है । गालीब के कलाम में शायरी में बहुत ज्यादा जराफत मिलती है। उन की इसी जराफत मिजाजी को देखकर खाजा अलताफ हुसैन हाली ने गालीब को हैवान नातीक व बजाऐ हैवान जरीफ कहा है। गालीब के मिजाज में जराफत बहुत थी।

ना करदा गुनाहों की भी हसरत को मिले दाद
या रब आगर इन करदा गुनहो की सजा है ।
क्या ही रीजवान से बढाई होगी
कुल्द मे अगर तेरा घर याद आया ।

गालीब को उनकी जिन्दगी में सबसे ज्यादा गम मिले,परंतु उनकी जिन्दगी सकारातमक विचारों से भरी हुवी थी।उनका पुरा दिवान सकारातमक है । गालीब ने हर हाल में जिन्दगी को प्यार कीया है। गालीब के दौर मे ही दिल्ली की सलतनत में लगे हुवी दिल्ली के दौर में दिल्ली के गली मोहल्ले, चोराहे , बरबाद हुवे।

उजडी हुवी दिल्ली कि तसविरे गालीब के खुतूत(पत्र)मे दिखाई देती है । दिल्ली का हाल गालीब के पत्रों में नजर आता है। दिल्ली का दर्द भरा चेहरा गालीब ने अपने खुतूत मे बयान किया है ।दिल्ली का उजड जाना तबाह व बर्बाद होना ।दिल्ली के लोगो का एक दुसरेके प्रेम को भुल जाना यह सब गालीब ने नसर (गद्य) prose मे लिखा है।

गालीब ने गद्य नसर भी इत्नी मीठी लिखि है की अगर वह शायरी नही भी करते तो गद्य से उनकी अहमीयत बढ जाती ।आज जो मकाम उर्दु अदब कि दुनिया मे भारत मे गालीब को है वही काम वही मर्तबा गदिय कि वजह से गालीब को मिलता है ।

इन खुतूत(पत्र) में भी उन्होने सकारात्मक विचार बयान किये है। उनके पास हर जगह जीने की उमंग तरंग है- जीने का हौसला मिलता है। हालात से मुखाबला करने का एक अनोखा दरस हमें गालीब के पास मिलता है व्यकतीक जिन्दगी में भी गालीब ने बहुत दर्द झेले। उन के बच्चों का इन्तखाल होगया था। तो उन्होंने अपनी बहन के बेटे आरीफ को गोद लिया पर आरीफ भी भरी जवानी में गुजर जाता है। तो गालीब कहते है। में जिस से प्यार करता हूँ अल्लाह भी उसी से प्यार करता है।

रंज का खुगर हुवा इनसान तो मिट जाता है रंज मुशकिलों मुझ पर पढ़ी इतनी के आसान हो गई।

इन आबलो से पाँव के तंग, आचूका था। मै,
जी खुश हूवा है राह को पूर खार देखकर,

गालीब के मीजाज में एक जिद थी वह बस आगे बढ़ना चाहते थे। और यही उनके कलाम की विषेशता उनको सभी से अलग करती है। वह कही ठहरना नही चाहते थे। और यही खूबी, अच्छाई हमें जिन्दगी शान से जिने का सबक देती है। गालीब की जिन्दगी में मायूसी depression नाम की कोई चीज़ नही मिलती।

गालीब के कलाम की खुबी यह है कि वह आने वाली नसलों को हैसलों और उमंगों का सबक देते हैं।

दिले नादान तुझे हुवा क्या है
आख़िर इस दर्द की दवा क्या है।

ईश्वर ने गालीब को गैर मामूली सलाहियते दी थी वह जिस तरफ भी निकलते अपना नया रास्ता बनालेते ।उर्दू गजल को गालीब ने ही एक नया जब व लहेजा न्या आहंग, नया मिज़ाज गहराई अता की। गालीब की वजह से उर्दु गजल और उनकी गजल की वजह से उर्दू भाषा की गजल फारसी भाषा की गजल से टक्कर लेने के काबिल बन गई। बन गई।रशीद अहेमद सिद्दीखों ने कहा मुगलों ने भारतको तीन चीजे दि है।

(१) उर्दू (२) गालीब (३) ताजमहल

गालीब बाहादुर शाह जफर (बादशाह) के उस्ताद थे गुरु थे।

एक बार बाहादुर शाह जफर के साथ आम के बाग में टहल रहे थे। तो गालीब की नजर पेढ पर लगे आम पर पढ़ी। बादशाह ने कहा उस्तादे मोहतरम क्या देख रहे है। तो गालीब ने कहा देख रहा हूँ के कौन कौन से आम पर मेरा और मेरे परिवार वालो का नाम लिखा है ।यह थी गालीब की बरजसता मिजाजी।

गलीब की वजह से ही सारी दुनिया में उर्दू भाषा को जाना जाता है। गालीब ने जिन्दगी से जुडे हर हर विषय पर गजल कही है। उनकी गजल के कई विषय तो ऐसे है जिन विद्यार्थीयों ने Research शोध किया है। गालीब जब मोहब्बत, प्यार, दोस्ती, इश्क की बात भी करते है तो ऐसा लगता है यह जजबा हमें ईश्वर के खरीब कर रहा है।

है और भी दुनिया मे सुखरवन बहुत अच्छे
कहते है के गालीब का है अंदाजे बयान और

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

हबीब तनवीर के नाटकों में अभिव्यक्त आदिवासी अस्तित्व और अस्मिता के स्वर (हिरमा की अमर कहानी नाटक के विशेष संदर्भ में)

डॉ. केशव माधवराव मोरे

सहायक प्राध्यापक

हिंदी विभाग

संत तुकाराम महाविद्यालय, कन्नड जि. छ. संभाजीनगर

शोध सारांश :

भारतीय समाज व्यवस्था के मुख्यधारा से कोसों दूर जंगलों में अपनी स्वतंत्र व्यवस्था में जी रहे आदिवासी समाज की कहानी है हिरमा की अमर कहानी। हबीब तनवीर ने लोकतंत्र और सामन्तवाद के दोहरे संघर्ष में जी रहे आदिवासी समुदाय की विभिन्न समस्याओं को इस नाटक के माध्यम से समाज के सामने रखने की कोशिश की है। आदिवासियों के अस्तित्व और अस्मिता पर मंडरा रहे संकट को वाणी दी है। जल, जमीन और जंगल, की समस्या के साथ-साथ आदिवासियों पर हो रहे अन्याय अत्याचार को उजागर किया है।

बीज शब्द : लोकतंत्र और सामन्तवाद,धरती के लाल जंगल के दावेदार,जमीन और जंगल की लड़ाई,जंगल के ठेकेदार के विरुद्ध जंगल के दावेदार का संघर्ष,आदिवासी अस्तित्व और अस्मिता का संकट,

प्रस्तावना :

मुक्त अर्थव्यस्था के नीतियों ने सबसे पहले आदिवासी जीवन व्यवस्था पर हल्लाबोल दिया। उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण की प्रक्रिया से निर्मित बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने आदिवासियों के जल,जमीन,जंगल एवं जीवन पर अतिक्रमण शुरु किया । परिणाम स्वरुप आदिवासी क्षेत्रों में संघर्ष का आरंभ हुआ और दुर्भाग्य की बात तो यह है कि शासन एवं प्रशासन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के साथ एवं आदिवासियों के विरोध में रहा है । इस परिस्थिति में आदिवासियों के अस्तित्व एवं अस्मिता पर संकट पैदा हुआ। इसी संकट का प्रतिरोध है आदिवासी साहित्य,अस्तित्व एवं अस्मिता की लड़ाई है आदिवासी विमर्श । इसीलिए इसे अस्तित्वमूलक विमर्श भी कहा जाता है। बिरसा के 'उलगुलान' से ऊर्जा एवं दलित विमर्श से प्रेरणा ग्रहण करते हुए स्वयं आदिवासियों ने अपनी समस्याओं को वाणी दी और तीर कमान की जगह हाथ में कलम लेकर साहित्य सृजन किया। हजारों वर्षों से हाशिए पर रखे गये आदिवासी समुदाय को इस विमर्श के रुप में साहित्य में जगह मिली है।

छत्तीसगढ़ में आदिवासी जनजातियों की संख्या अधिक है। यह आदिवासी बहुल प्रदेश है। हबीब तनवीर भी छत्तीसगढ़ी मिट्टी से जुड़े नाटककार है। उनके नाटकों में छत्तीसगढ़ का समग्र जीवन अंकित हुआ है। ऐसे में आदिवासी समाज उनके कलम से कैसे अछूता रह सकता है। अतः उन्होंने छत्तीसगढ़ के आदिवासियों की समस्या को लेकर स्वतंत्र रूप से हिरमा की अमर कहानी इस नाटक का लेखन किया है। इस नाटक में आदिवासी समाज की वास्तविक समस्याओं को नग्न यथार्थ के साथ प्रस्तुत किया गया है। अतीत के पटल पर वर्तमान का चित्र अंकित करते हुए वर्तमान समस्या की बात की है। बस्तर जिले के राजा प्रवीणचंद्र भंजदेव से संबंधित घटनाओं को मद्देनजर रखते हुए इस नाटक का कथानक निर्माण किया है।कथानक बस्तर के उन आदिवासी लोगों से संबंधित है जिसका परिचय बाहर की दुनिया को नहीं के बराबर है। उनकी जीवन पद्धति, रीति-रिवाज, न्याय और दंडव्यवस्था, सामाजिक एकसूत्रता आदि अनेक प्रसंग कुतूहल और जिज्ञासा को जन्म देने वाले है ।भारतीय स्वतंत्रता के पश्चात

1953 के समय की यह कहानी है। जिसमें सामन्तवादी व्यवस्था और लोकतांत्रिक व्यवस्था की यथा स्थिति को दर्शाया गया है ।

आदिवासी रियासत तितुरबसना के शासक महाराजा हिरमादेव सिंग इस नाटक के नायक है। तितुरबसना की राजधानी रैनपुर से हिरमादेव अपना राजकाज चलाते हैं। राजा की धर्मपत्नी बैंगिनबाई भी राजनीति में कुशल है। महाराज की जन्मकुंडली में संतान का योग नहीं है। हिरमादेव को एक भाई है बीरमदेव जो हमेशा शराब की नशे में धूत रहता है। इस रियासत की सम्पूर्ण आबादी आदिवासी है। राजा हिरमादेव अपनी प्रजा का दिनरात खयाल रखते हैं। संकट आने पर धार्मिक अनुष्ठान का प्रबंध करना, तथा डुमराग जैसे गरीब युवक को पढ़ाई के लिए बाहर भेजना, गरीब मजदूरों को जमीन देना, अकाल पड़ने पर लोगों में अनाज बांटना जैसे सामाजिक कार्य के कारण हिरमादेव जनता के लिए भगवान बन गये है। वे भी अपने आपको आदिवासियों का भगवान मानते हैं। राजा हिरमादेव का शासन जनता को प्रिय है, अपना लगता है।

तो दूसरी ओर प्रजातंत्र में गरीब किसानों से अधिक लगान वसूल किया जाता है। हिरमादेव की दिमागी हालत के संदर्भ में शक पैदा कर उनकी संपत्ति को शासन द्वारा जप्त किया जाता है, तथा उनके शराबी भाई बीरमदेव को राजा बना दिया जाता है। प्रजा को लोकतंत्र का स्वीकार करने के लिए मजबूर किया जाता है। लोकतंत्र का स्वीकार करने के पश्चात भी उनकी समस्या कम नहीं हुई बल्कि अधिक हुई है, इस संदर्भ में आदिवासी विधायक विधानसभा में भाषण देते हुए कहता है कि आदिवासियों को विकास के नाम पर अपने जल, जमीन और जंगल से खदेड़ा जा रहा है। ठेकेदार एवं फॉरेस्ट ऑफिसर जंगल को लूट रहे हैं किंतु एक आदिवासी अगर दस बीस पेड़ काटकर खेती करना चाहे तो उसे सजा दी जाती है। उन्हें मजदूरी करने के लिए मजबूर किया जाता है। उनकी कला और संस्कृति को नष्ट किया जा रहा है। इस प्रकार सामन्तवादी व्यवस्था और प्रजातंत्र के यथास्थिति को हबीब तनवीर ने सामने रखा है। अंत में यह भी दिखाया गया है कि शासन द्वारा छल कपट से हिरमादेव को मार दिया जाता है किंतु दो साल बाद वे फिर से महाप्रभु नारंगीवाले बाबा के रूप में प्रकट हो जाते है।

अतः हबीब तनवीर के नाटकों में अभिव्यक्त आदिवासी संवेदनाओं को हमने निम्नबिंदुओं के जरिए प्रस्तुत किया है -

धरती के लाल जंगल के दावेदार :

आदिवासी समुदाय धरती को अपनी माँ एवं अपने आप को धरतीपुत्र जंगल के रक्षक एवं दावेदार कहते हैं। धरती माँ एवं जंगल पर ही उनका सम्पूर्ण जीवन निर्भर है। कृषि प्रधान आदिवासी समुदाय खेती एवं शिकार कर अपनी गुजर-बसर करता है। खेती एवं जंगल ही उनके जीविका का साधन है। इसीलिए वे धरती माँ एवं जंगल की पूजा करते हैं। प्रकृति के प्रति श्रध्दा, भक्ति एवं प्रेम की भावना आदिवासियों के संस्कारों में है। प्रकृति के साथ उनके जीवन एवं संस्कृति का अटूट रिश्ता है। वे प्रकृति के विभिन्न रूपों पेड-पौधों, नदी-नाले, पहाड पर्वत आदि की पूजा करते हैं। इससे उनके प्रकृति प्रेम का परिचय मिलता है। आदिवासी साहित्य से पूर्व अन्य साहित्य में प्रकृति के केवल मनमोहक दृश्य एवं प्रकृति का मानवीय चित्रण हुआ है। किंतु प्रकृति को ईश्वर के रुप में आदिवासी साहित्य में ही चित्रित किया गया है। मानवी जीवन में प्रकृति की उपयोगिता एवं महत्व को विशद किया गया है। प्रकृति ने उन्हें जीवित रखा है उसकी पूजा कर उसके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना यह आदिवासियों की सबसे बडी महानता है। आदिवासियों के धरती एवं प्रकृति के अटूट रिश्ते को लेकर रमणिका गुप्ता कहती है कि, "आदिवासी यानी मूल निवासी यानी भारत का मूल बाशिन्दा यानी इस धरती का पुत्र, धरती और प्रकृति के विकास के साथ ही पैदा हुआ,

पनपा, बढा और जवान हुआ। वह प्रकृति का सहयात्री और सहजीवी है। १ इससे आदिवासियों के धरती के महत्त्व का परिचय मिलता है। हिरमा की अमर कहानी इस नाटक में आदिवासियों के प्रकृति प्रेम को गीत के माध्यम से वाणी मिली है।

धरती के सैनिक भी हम है,
हम जंगल के वासी है, जंगल के रक्षक भी हम है
सेवक भी पेड़ों के हम है और मालिक भी हम ही है,
यही हमारी महतारी, ये धरती इतनी प्यारी यही हमारी महतारी। २

प्रकृति आदिवासियों के लिए केवल उपजीविका का साधनमात्र नहीं है बल्कि वे माँ है। इसीलिए वे जान हाथेली पर रख प्रकति की रक्षा करना चाहते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि आदिवासी ही धरती के लाल एवं जंगल के असली दावेदार हैं।

जमीन और जंगल की लड़ाई :

आदिवासी मूलतः संघर्षशील एवं क्रांतिकारी समुदाय है। आज भी वह अपने हक्क एवं अधिकार के लिए निरंतर संघर्ष करता हुआ दिखाई देता है। जब हम इतिहास में झांककर देखते हैं तो हमें पता चलता हैं कि आदिवासियों ने जमीन और जंगल के लिए निरंतर लड़ाई लड़ी है।

हिरमा की अमर कहानी इस नाटक में जमीन और जंगल की इस लड़ाई को लेकर आदिवासी विधायक विधानसभा में आवाज उठाता है। "सैकडों बरस से आदिवासी जिस ज़मीन पर बसे हुए है। उसे अपनी जमीन और जंगल को अपना जंगल मानते चले आए है। मुद्दत से अपनी पंचायत द्वारा ज़मीन, जंगल, जायदा और सारे घरेलू झगडे खूद ही निपटाते चले आये हैं। लेकिन अब .. उनकी ज़मीन उनसे छीन ली गई है और जंगल और उनकी पैदावर से उनका हक छीन लिया गया है। कहा जाता है कि वो जंगल को काट देते हैं और जंगल का नुकसान कर रहे हैं। हमारी मांग है कि हमारी जमीन हमें वापस दी जाये, हमारे जंगल हमें वापस दिये जाये । ३ जंगल आदिवासियों का जीवन है। जंगल ही उनके लिए गीत, संगीत, नृत्य और उल्लास है। कोई अपने जीवन को नष्ट होते हुए कैसे देख सकता है। इसीलिए आदिवासियों की विभिन्न संघटनाएँ अपनी जमीन और जंगल के लिए कानूनी लड़ाई लड़ रही है। अतः आदिवासियों के इस महत्त्वपूर्ण समस्या को नाटक के माध्यम से समाज के सम्मुख लाने का महत्मकार्य हबीब तनवीर ने किया है।

जंगल के ठेकेदार के विरुद्ध जंगल के दावेदार का संघर्ष :

जंगल कटाई के नाम पर बेगूनाह आदिवासियों को हावालात में बंद कर दिया जाता है किंतु जंगल के ठेकेदार बेसूमार जंगल की कत्ल कर रहे हैं, उन पर कोई मुकदमा नहीं चलता। फंस जाते हैं बेचारे आदिवासी । ठेकेदार एवं वनाधिकारी दोनों मिलकर जंगलों को नष्ट कर रहे हैं इस ओर किसी का ध्यान नहीं जा रहा है। इस संदर्भ में विधायक का कथन अत्यंत महत्त्वपूर्ण है वे कहते है कि, "चोरी छिपे सैकडों ठेकेदार और उनके साथ मिले हुए बीसियों सरकारी आदमी और फॉरेस्ट के अधिकारी चारों तरफ जंगल काट रहे हैं और लाखों रुपये सरकारी खजाने से गबन कर रहे है। क्या इससे जंगल को नुकसान नहीं पहुँच रहा ? लेकिन..... अगर एक आदिवासी दस बीस पेड़ काटकर अपने धर्मानुसार खेती करना चाहता है तो उसे सजा दी जाती है, दण्ड दिया जाता है। कहा जाता है कि यह जंगल बरबाद कर रहा है....और उसे खेती छोड़कर मजदूरी करने पर मजबूर किया जाता है। और इधर उसी के जंगल, उसी के माल को बड़े बड़े सेठ हजम किये चले जा रहे हैं और सरकार के कान पर जूँ नहीं रेंगती ।"४

जंगल के इन बड़े चोरों को छोड़कर जंगल के रक्षक एवं दावेदारों को ही अपराधी घोषित किया जा रहा है। ठेकेदार एवं दावेदारों के बीच कड़ा संघर्ष चल रहा है। जिससे आदिवासी विस्थापन की समस्या निर्माण हुई है।

आदिवासी अस्तित्व और अस्मिता का संकट :

आदिवासी समुदाय की समस्या केवल जल, जमीन और जंगल तक सीमित नहीं है। बल्कि इन समस्याओं की कोख से एक अहम समस्या जन्म ले रही है। वह है आदिवासियों के अस्मिता और अस्तित्व की समस्या । आदिवासियों को उनके जल, ज़मीन और जंगल से खदेडा जा रहा है। परिणाम स्वरुप पेट की आग बुझाने के लिए वे शहरों की ओर जाने लगे हैं। जिससे विस्थापन की समस्या पैदा हुई है और यह विस्थापन केवल घर एवं गाँव से विस्थापन नहीं है बल्कि अपने क्रांतिकारी इतिहास गौरवशाली संस्कृति, सुंदर प्रकृति, अद्भुत कला एवं निजी भाषा से विस्थापन है। इस संदर्भ में डॉ. वीरभारत तलवार कहते हैं कि, "औद्योगिकरण और उससे जुड़े हुए तंत्र ने स्थानीय जनता के सामने संकट खड़ा कर दिया है। अस्तित्व का संकट । औपनिवेशक पूंजीवाद बहुत तेजी से झारखंड के आदिवासियों के अस्तित्व को उजाड़ता और मिटाता जा रहा है । ५यह समस्या केवल झारखंड के आदिवासियों की समस्या नहीं हैं बल्कि भारत के तमाम आदिवासियों की अस्मिता एवं अस्तित्व की समस्या है। इस महत्वपूर्ण समस्या की ओर हबीब तनवीर ने ध्यान आकर्षित किया है।

हिरमा की अमर कहानी इस नाटक में आदिवासी विधायक विधानसभा में इस प्रश्न को उठाते हुए कहते हैं कि, "पहले गांव गांव मांदर मंजीरे से गूंज उठता था अब वहां उल्लू बोल रहा है। मुद्दत से तितुरबसना के देहातों में उनके अपने नाच गाने पनपते रहे हैं। बजाय इसके कि उन्हें पनपते रहने का मौका दिया जाए और उनकी कला और संस्कृति जो कृषि शिकार और उनकी रोजमर्रा की जिंदगी से जुडी हुई है, उसी से आदिवासियों को काटकर अलग अलग फेंका जा रहा है। वह कला और संस्कृति साल में एकाध बार चन्द बड़े शहरों में नुमाइश के बतौर इस्तेमाल की जाने लगी है और चन्द व्यक्तियों को पुरस्कार देकर आदिवासी सम्पति को खत्म किया जा रहा है। समाज के साथ साथ उनकी कलाएँ खत्म हो रही है। ६ आदिवासियों की नष्ट हो रही इन संस्कृति एवं कलाओं को जीवित रखना आवश्यक है। केवल साल में एकादबार आदिवासी कला महोत्सव का आयोजन करने से उनकी कला जीवित नहीं रहेगी। बल्कि उसके लिए निरंतर कार्य करना होगा। आदिवासियों के अस्तित्व एवं अस्मिता के संकट को मिटाकर उनकी पहचान और जीवन हमें जीवित रखना होगा। उनकी अस्मिता का बनाए रखते हुए उनका सम्मान करना होगा। इस दिशा की ओर हबीब तनवीर ने साहित्य के माध्यम से पहल की है।

संक्षेप में कह सकते हैं कि हबीब तनवीर ने हिरमा की अमर कहानी इस नाटक के माध्यम से आदिवासियों की बुनियादी समस्याओं को उजागर किया है। साथ ही आदिवासियों की गौरवशाली परम्परा एवं कलात्मक संस्कृति से भी दुनिया को रु-ब-रु किया है। हिरमा की अमर कहानी आदिवासियों के जीवन की संघर्षगाथा है।

संदर्भ सूची :

१. गुप्ता रमणिका, सम्पा. आदिवासी कौन, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली,प्र.सं.२००८, पृ.०५
२. तनवीर हबीब, हिरमा की अमर कहानी, पुस्तकायन प्रकाशन नई दिल्ली,प्र.सं.१९९०, पृ.४२
३. वहीं,पृ.४१
४. वहीं,पृ.४२
५. तलवार वीरभारत, झारखंड के आदिवासियों के बीच,ज्ञानपीठ प्रकाशन नई दिल्ली,सं.२००८, पृ.४६
६. तनवीर हबीब, हिरमा की अमर कहानी, पुस्तकायन प्रकाशन नई दिल्ली,प्र.सं.१९९०, पृ.४२-४३

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

मृदुला गर्ग की कहानियों में स्त्री विमर्श के विविध आयाम

डॉ. सुरेश शेळके
हिंदी विभाग
नागनाथ महाविद्यालय, औंढा नागनाथ जि.हिंगोली - महाराष्ट्र

प्रस्तावना –

साठोत्तर युग में महिला लेखिकाओं का साहित्य सृजन अधिक मात्रा में हो रहा है। इसके लिए प्रमुख रूप से ब्रह्म समाज, आर्य समाज, गांधीवादी विचारधारा का प्रभाव रहा है। साथ ही युग प्रवर्तकों का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है जिस में बुद्ध, बसवेश्वर, संत कबीर, जोतीबा फुले, छत्रपति शाहू महाराज, पेरियार रामस्वामी, गोपाल गणेश आगरकर तथा डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर आदि । इन सुधारकों द्वारा समाज जीवन में आमुलाग्र परिवर्तन आया जिसके परिणामस्वरूप स्त्री-चेतना, स्वातंत्रता तथा अस्मिता का स्वर अंकुरित हुआ। जिससे स्त्री के विकास में नारी मुक्ति आंदोलन का महत्वपूर्ण प्रभाव दिखाई देता है। उसका स्वतंत्र रूप, अस्तित्व स्वीकृत किया गया। स्त्री अधिकार का आग्रह अधिक प्रबल हुआ, आठ मार्च 'महिला मुक्ति दिवस' से। "स्त्री विमर्श" एक ऐसा प्रयोग है जो साहित्य में स्त्री के स्थान, भूमिका, और अनुभव को जांचता है। यह साहित्यिक की विविध विधाओं में स्त्री के चरित्र और समस्याओं को विश्लेषित करता है। स्त्री विमर्श के माध्यम से लेखक और कलाकार स्त्री के जीवन के विभिन्न पहलुओं को समझने का प्रयास करते हैं, जैसे कि उनकी स्थिति, सामाजिक प्रतिबद्धता, स्वतंत्रता, संघर्ष, और समाज में उनके स्थान की मान्यता। इसके अलावा, वे स्त्री के संबंध में सामाजिक और सांस्कृतिक धार्मिकताओं को भी छेदते हैं। स्त्री विमर्श के माध्यम से कई प्रमुख समाजिक मुद्दे उठाए जाते हैं, जैसे कि स्त्री का अधिकार, स्त्री का सम्मान, और स्त्री का स्थान समाज में। यह कथाएँ और रचनाएं दर्शाती हैं कि स्त्री के जीवन में किस प्रकार की सांस्कृतिक, सामाजिक, और राजनीतिक बाधाएं होती हैं और उन्हें कैसे पार किया जा सकता है। स्त्री विमर्श की कहानियाँ और रचनाएँ आमतौर पर उस समय के सामाजिक संदेश, आदिकालीन मूल्यों, और स्त्री के समाज में स्थान को बोध कराने के उद्देश्य से लिखी जाती हैं। ये कहानियाँ और रचनाएँ समाज को स्त्री के संघर्षों और संघर्षों को समझने के लिए प्रेरित करती हैं, जिससे समाज में स्त्री के स्थान को समझा जा सके और समाज में समानता को प्रोत्साहित किया जा सके। कई शताब्दियों से गुजरते हुए मानव सभ्यता आज विकास के एक उँचे स्तर पर पहुँची है। अनेक संघर्षों के अनुभवों को लेकर मानव समाज आगे बढ़ा है, आज ज्ञान-विज्ञान का विकास हुआ है। पुरातन पंथी धर्मान्धता के कुसंस्कार कदम-कदम पर बुद्धिवाद और वैज्ञानिक विश्लेषण के सामने धराशाही हो रहे हैं, लोगों के बीच वर्ग-विभेद और नारी-पुरूष के बीच भेदभाव विधि का कोई शाश्वत विधान नहीं है ।

मृदुला गर्ग जीवन परिचय -

मृदुला गर्ग जी का जन्म 25 अक्टूबर 1938 में कलकत्ता में हुआ। पिता का जगह जगह स्थानांतरण होने के कारण लगभग तीन वर्ष की आयु में वे दिल्ली आ गयीं । मृदुला जी को बचपन में अनेक शारीरिक पीड़ाओं का समाना करना पड़ा। जिसके कारण वे कई वर्षों तक स्कूल भी नहीं जा पायीं थी। घर में ही उनकी शिक्षा की व्यवस्था की गयी। उन्होंने दिल्ली स्कूल ऑफ़ इकोनॉमिक्स से एम्.ए. किया । पढाई के बाद सन १९६० से १९६३ तक वे दिल्ली के इन्द्रप्रस्थ कॉलेज और जानकी देवी कॉलेज में प्राध्यापिका के पद पर कार्यरत रहीं। मृदुला गर्ग का बचपन उन्हें व्यक्तित्व निर्माण में सहायक रहा है। बचपन का परिवेश और २८० जीवन व्यक्ति के कलेवर को आगे बढ़ाता है। लेकिन उस समय माँ से अधिक पिता ने लाड-प्यार किया, फिर भी लेखिका माता-पिता के प्रति

अत्यंत संवेदनशील है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में, उसके उन्नत होने में किसी- -न-किसी की प्रेरणा आवश्यक होती है, अर्थात् मृदुला गर्ग के व्यक्तित्व निर्माण में सबसे अधिक प्रेरक तत्व तथा प्रेरणास्थान उनके अपने पिताजी रहे हैं। पिता ने अपने जीवन के हर अनुभव को अपने परिवार के साथ बाँटा है और हर समय शाबाशी देकर कार्य प्रवृत्त किया है। किसी भी काम को अंजाम देने के लिए प्रोत्साहन की अत्यंत आवश्यता होती है, लेखिका अपने सफलतम व्यक्तित्व का श्रेय पिताजी को ही देती है। उनका वैवाहिक जीवन अत्यंत समाधानजनक रहा है।

प्रारम्भिक दौर में मृदुला जी ने अंग्रेजी में कहानियाँ तथा कविताएँ लिखी । अंग्रेजी भाषा पर उनकी पकड़ बहुत ही अच्छी है । परंतु स्वाभाविक रूप से प्रभावी ढंग से व्यक्त करने के लिए मातृभाषा की अधिक सुविधाजनक होती है। इसलिए उन्होंने हिंदी में लिखना आरंभ किया । मृदुलाजी की पहली कहानी 'रूकावट'सन १९७१ में कमलेश्वर के संपादन में 'सारिका'में प्रकाशित हुयी। इसके बाद 'हरी बिंदी, 'लिली आफ दी वैली, 'दूसरा चमत्कार' कहानियाँ 'सारिका'में प्रकाशित हुयी। १९७२ में प्रकाशित कहानी 'कितनी कैदें' को 'कहानी' पत्रिका द्वारा प्रथम पुरस्कार दिया गया ।

मृदुला गर्ग की कहानियों में स्त्री विमर्श के विविध आयाम

हिंदी कथा-साहित्य में महिला लेखिकाओं में मृदुला गर्ग का नाम विशेष उल्लेखनीय है। आठवे दशक के आरंभ में अपने सशक्त रचनाधर्मिता का अभूतपूर्व परिचय देकर हिंदी साहित्य जगत में अपना स्थान निश्चित करने में लेखिका कामयाब हुई है। मृदुला गर्ग ने अपने संपन्न प्रतिभा का दर्शन अपने लेखन द्वारा देकर सभी को अपनी ओर आकृष्ट किया। लेखिका स्वतंत्र विचारों की होने के कारण नारी को स्वतंत्र अस्तित्व में देखना चाहती है। मृदुला गर्ग ने बेबाक शैली का प्रयोग कर जीवन की हर संगति-विसंगति को पूरे प्रामाणिकता के साथ बयान किया है जिसमें सामाजिक चेतना, राजनीतिक अस्वस्थता, स्त्री-पुरुष संबंध, मूल्य संक्रमण, विघटन, सेक्स का खुला चित्रण, नारी को केंद्रित रखकर उसका जीने का नया अंदाज आदि से उनके लेखन में 'बोल्डनेस' आया है। किसी भी बात को कहने या प्रस्तुत करने में लेखिका कहीं भी संकोच न करते हुए प्रकट करती है, यही बात अन्य लेखक तथा आलोचकों को पूरी तरह स्वीकृत न होकर उन्हें विवादित, चर्चित बनाने का काम करती है। उनका व्यक्तित्व अत्यंत सरल है, विद्रोही स्वभाव के साथ घुमक्कडता, संवेदनशीलता का भी अपना महत्वपूर्ण स्थान है । अनुकूल पाठकीय प्रतिसाद होने से उन्हें किसी से कोई शिकायत नहीं है ।

मृदुला गर्ग ने निजी अनुभवों के आधार पर आधुनिक भारतीय नारी की सामाजिक स्थिति एवं उसकी मानसिकता को अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया है। इनके नारी पात्र आर्थिकस्वांतत्र्य के समर्थक एवं कार्यशील हैं, अतः इनमें अहं, स्वाभिमान, अधिकार विषयक चेतना अधिक है । इसके फलस्वरूप उनकी मानसिकता में अभूतपूर्व बदलाव आया है। प्रेम, सेक्स तथा विवाह जैसे विषयों पर स्वयं सोचकर निर्णय लेना इनकी विशेषता है। इसका विपरीत प्रभाव उनके दांपत्य जीवन पर भी दृष्टिगत होता है। विवाह विच्छेद जैसे विघटनकारी कदम उठाने में भी वह हिचकिचाती नहीं । विवाहपूर्व एवं विवाहेतर प्रेम एवं सेक्स में 'बोल्डनेस' दिखाने में वे बेजोड़ है। कहानीकार मृदुला गर्ग का व्यक्तित्व किसी विशिष्ट विचारधारा को ही लेकर आगे नहीं बढ़ता या यूँ कहिए कि वे स्वयं किसी विचारधारा में बंदिश नहीं रहना चाहती, पर फिर भी उनके

कहानीकार मृदुला गर्ग साठोत्तर हिंदी साहित्य में एक सशक्त साहित्यकार के रूप में अपना स्थान निर्माण कर परिचय दे चुकी है। उन्होंने जीवन के सभी पहलुओं पर अपनी रचानाधर्मिता का परिचय दिया है। अपनी लेखन प्रक्रिया को निरंतर प्रवाहित करते हुए उन्होंने स्त्री-पुरुष संबंध, प्यार, तलाक, दहेज, सेक्स आदि विषयों का खुला अंकन करके महिला लेखन को एक नया आयाम दिया है। नारी-पुरुष संबंधों के अलावा मृदुला गर्ग ने अनेक

सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा विविध संदर्भों की कहानियाँ लिखी हैं। आज नारियाँ भी साहित्यिक तेजस्विता की भागीदार तेजी से और बहुत तादाद में बन रही हैं। पुरूष लेखकों से कहीं अधिक जीवनानुभव उनकी झोली में हैं। जिस यथार्थ और कटु-मृदुल जीवन में वह जी रही वे हैं उन विसंगतियों का चित्रण वह समकालीन साहित्य में विविध विधाओं में कर रही है । आज ने वह जीवन के क्षेत्र की प्रत्येक विधा में पारंगत होने में जुट गई हैं, अपनी कोमलता, कठोरता और कर्मठता के साथ हर पेशे में उसने उपस्थिति दर्ज करवाई है। मृदुला गर्ग ने रूढ़ियों-परंपराओं को तोड़ा, उनका कथा- साहित्य नारी जीवन की त्रासद परिस्थितियों का एक ऐसा बयान है, जिसे शायद ही किसी साक्ष्य की जरूरत हो । मृदुला गर्ग की कहानियों का स्वरूप समझने के लिए बलराम जी का यह कथन उपयुक्त है, " मन्नू भंडारी के संग्रह की कहानियाँ एक ही बैठक मैं पढ़ पाना काफी मुश्कील है, उनकी तुलना में मृदुला गर्ग को पढ़ना आसान है लेकिन मंजुल भगत को पढ़ने में मृदुला गर्ग से भी अधिक आसानी होती है। मन्नू भंडारी कहीं-कहीं उपदेशक हो उठती है, खासकर ' स्त्री सुबोधनी कहानी में' तो मृदुला गर्ग का विचारक रूप पाठक को कहीं-कहीं उलझाने लगता है लेकिन मंजुल भगत ऐसा कुछ नहीं करती। कहानी में खुद बहती है और पाठक को भी अपने साथ बहा ले जाती हैं। इन तीनों लेखिकाओं की समान विशेषता यह है कि अपनी वर्गीय सीमाओं का अतिक्रमण कर ये निम्नवर्ग से अपनी कलम का रिश्ता जोड़कर हिंदी कथा संसार में अपना अहमियतपूर्ण स्थान ग्रहण करती हैं। "१ इस तरह तीनों कथाकारों के प्रति अपना विचार प्रस्तुत किया है।

मृदुला जी के नारी चरित्र स्वयं एक सबूत बनकर पाठक वर्ग के समक्ष आकर खड़े होते हैं। उनके कथा-साहित्य में वे निम्नवर्ग, मध्यवर्गीय व उच्चमध्यवर्गीय समाज की अपनी तमाम • कुंठाओं, अंतर्विरोधों व अंतर्द्वन्द्वों सहित मौजूद हैं और यही मौजूदगी हमें सोचने के लिए विवश कर जाती है। जो आत्मसजग है, अपने अस्मिता के लिए स्वयं निर्णय लेने में सक्षम हैं। मृदुला गर्ग पर यह आरोप लगाया जाता है कि उनके नारी पात्र पतित, भ्रष्ट, कुंठित, दिगभ्रांत, निरंकुश आदि है किंतु यह एकाकी विचार हैं। वस्तुतः उन्होने तटस्थता के साथ चित्रण किया है। कहानीकार मृदुला गर्ग ने जीवन के हर अंग को अपनी कहानियों द्वारा स्पष्ट किया है। योगेश गुप्त जी के अनुसार, "विषय वैभिन्य की दृष्टि से मृदुला जी ने दायरे के अनेक बिंदुओं को छुआ है । सामाजिक विडम्बनाओं पर खुलकर व्यंग्य किया तो एक मजदूर की व्यथा और उसके प्रति धनी की उपेक्षाभरी सहानुभूति पर भी चुटकी काटी है। उन्होने ढोंगी चरित्रों की बखियाँ उधेडी है, तो प्रेम के अनुभव को नई विश्वसनीयता भी दी है । विवाह संस्था की एकरसता को चुनौती दी है तो उसके बिना व्यक्ति के अधूरेपन को ही नहीं बक्शा है। "2 इस प्रकार जीवन की विविधता पर अनेक कहानियों का निर्माण कर रचानाधर्म को बरकरार रखा है। समाज व मनुष्य को इनके साहित्य से नई दिशा मिलती है।

नारी की हर सोच को, समझ को सुख-दुख को पूरी ईमानदारी के साथ उन्होंने अपने साहित्य में रखा है। घर और घर से बाहर नौकरी करते हुए 'स्व' अस्तित्व को बचाए रखने का संदेश उनके साहित्य से मिलता है। नारी की पीड़ा उनकी समस्याओं से रू-ब-रू होकर उनके द्वंद्व की यंत्रणा को समझकर उन्होंने अपनी लेखनी उठाई है । प्रस्तुत अध्याय के अंतर्गत मृदुला गर्ग की कहानियों में व्यक्त विविध आयामों को विश्लेषित कर उनका अध्ययन किया जा रहा है।

मृदुला गर्ग के कहानियों में सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति :

मृदुला गर्ग के कहानियों का अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि उनकी अनेक कहानियाँ सामाजिक चेतना को व्यक्त करती है। रचनाकार जिस परिवेश में रहता है उसकी संवेदना, अनुभूति और विचार साहित्य द्वारा

प्रकट होता है। इस संदर्भ में राजेंद्र यादव कहते हैं, "परिवेश को समय-बोध, काल-बोध कुछ भी कह लीजिए, "3 बात उसी संपूर्ण परिप्रेक्ष्य की है जो रचना को अपने साथ जोड़े रखता है या जिससे जुडी रहने को रचना मजबूर है।

परिवेश में सिर्फ स्थूल स्थितियाँ या भौतिक वातावरण ही नहीं आता बल्कि अनेक स्थूल-सूक्ष्म तत्त्व मिलकर परिवेश का निर्माण करते हैं। परिवेश वह सब है जिससे व्यक्ति घिरा रहता है ; जिससे वह वेष्टित है एवं जो उसे प्रभावित करता है। यह प्रभाव शारीरिक, मानसिक, आत्मिक किसी भी स्तर पर हो सकता है। हमारे आसपास का जीवन, विभिन्न सामाजिक राजनैतिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक स्थितियाँ, हमारे मूल्य, हमारे संस्कार सभी मिलकर परिवेश का निर्माण करते हैं। 'परिवेश' अनेक स्थूल-सूक्ष्म, प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष स्थितियों व शक्तियों का समूह है जो व्यक्ति को विभिन्न स्तरों पर प्रभावित करता है। परिवेश से जुडकर ही सच्चे साहित्य का निर्माण हो सकता है जो मृदुला गर्ग के कहानियों में पाया जाता है। परिवेश से कटकर कोई भी रचनाकार सच्चे व समर्थ साहित्य की रचना नहीं कर सकता।

साहित्य का संबंध मानवीय संवेदना से होता है और संवेदना युगीन परिस्थितियों, तथ्यों व घटनाओं से प्रभावित होती है। वर्तमान कहानी में बेरोजगारी, निर्धनता, नगरीय, महानगरीय तथा ग्रामीण जीवन की पीड़ा, रिश्वतखोरी, मानवीय संबंध, वृद्धों की समस्याएँ, जीवन मूल्य का बदलता स्तर, साम्प्रदायिकता आदि को लेकर सामाजिक विसंगतियों को भी अपनी कहानियों में मृदुला गर्ग ने स्थान दिया है। समाजशील प्रवृत्ति का परिचय अपने कहानियों द्वारा देकर सामाजिक चेतना का स्वर प्रस्फुटित किया है, जिसे संक्षित रूप से निम्नत: देखा जा सकता है – 'टुकड़ा-टुकड़ा आदमी' प्रस्तुत कहानी में एक उद्योगपति के 'डबल' पर प्रहार किया गया है। उद्योगपति सुबोधकुमार दोहरी नीति को अपनाकर अपना श्रेष्ठत्व दिखना चाहते हैं, एक ओर निम्नवर्गीय मजदूरों की चिंता और दूसरी ओर अपनी रखैल को खुश रखना। मृदुला गर्ग इस उद्योगपति के माध्यम से समाज में स्थित ऐसे कई लोगों का चित्रण करती है। सुबोधकुमार बेलापुर सीमेंट कंपनी के चेअरमन हैं। जो सीधा-साधा जीवन बिताने का स्वांग करते हैं और सामान्य लोगों से आत्मीयता पाने की इच्छा रखते हैं। मजदूरों से बनावटी अपनापन आखिर सामने आता है जब वे उनकी समस्याओं से बढ़कर अपनी रखैल प्रभादेवी के खुशी को प्रधानता देते हैं । बलिया और रामदीन इन दो गरीब मजदूरों के द्वारा दयनीयता तथा कष्ट का रूप प्रस्तुत किया है। एक ओर यह गरीब दूसरी ओर उच्चमध्यवर्ग की औपचारिक संस्कृति का खुला अंकन मृदुला गर्ग ने किया है।

मृदुला गर्ग ने इस कहानी के माध्यम से आर्थिक-विषमता, वर्ग-भेद के साथ सामाजिक विसंगती को भी दर्शाया है, 'उच्च मध्यवर्ग के लिए गरीब और मजदूर कीट-भृंगों से अधिक कीमत नहीं रखते, यह 'टुकड़ा-टुकड़ा आदमी' से भली भाँति ध्वनित है। "4'विनाशदूत' मृदुला गर्ग की यह कहानी सामाजिक चेतना की प्रतिनिधी कहानी है। सन् १९८४ में भोपाल के यूनियन कार्बाइड कारखाने से जहरीली गैस निकलने से तीन हजार लोगों की मृत्यु हुई। इस घटना को लेकर लेखिका का अंत:साहित्यकार जागृत होकर इस कहानी का निर्माण हुआ। यहाँ एक बात बहुत ही ध्यान देने की है कि इस दुर्घटना पर कवि, साहित्यकार तथा बुद्धिजीवियों ने कुछ भी सक्रियता नहीं दिखाई; सबका मौन रहा । साहित्यकार समाज का प्रवक्ता होता है यहाँ उनके निष्क्रियता पर सामाजिक चेतना और सामाजिक बोध के आधार पर मृदुला जी ने प्रहार किया है। यहाँ लेखिका ने प्रकृति के अपरिहार्य प्रतिशोध की क्रूरता का प्रस्तुतीकरण किया है। 'विनाशदूत' कहानी का आधार भोपाल गैस की त्रासदी है। कहानी में मेघ कहता है, "क्यों अब भी महसूस नहीं कर पा रहे उस अथाह शून्य को, जो तुम्हारे चारों तरफ फैल रहा है। कितना भयानक है ये शून्य, चीख, पुकार नहीं, शोरगुल नहीं, बस बेआवाज खांसी के दौरों का भूकंप और लाशें. जहर के प्रकोप से बच नहीं पाया कोई जीवाणु। "५ इस तरह मेघ कवि को एहसास कराता है। विनाशदूत' कहानी में मनुष्य की प्रकृति

पर विजय पाने की अनुचित आकांक्षा पर रोष व्यक्त हुआ है। कहानी में साहित्यकार के अंतरंग को झकझोर किया गया है, उसके धर्म और कर्म का ब्यौरा प्रस्तुत किया है। साहित्यकार में सदैव सामाजिक प्रतिबद्धता की जिम्मेदारी होनी चाहिए। इस कहानी की सार्थकता इस रूप में प्रकट होती है कि इसमें विश्व के शक्तिशाली देशों की स्वार्थमूलक संहारक प्रवृत्ति के सार्वजनीन मानवतावादी जीवन-मूल्य की प्रतिष्ठा का लेखकीय आग्रह मिलता है।

'पोंगलपोली' मृदुला गर्ग की यह कहानी सामाजिक विसंगति तथा सांस्कृतिक चेतना को प्रकाशित करती है। प्रस्तुत कहानी में ग्रामीण क्षेत्र में रहनेवाले लोगों की दयनीयता, साधनहीन तथा कष्टप्रद जिदंगी का चित्रण किया है। साथ ही उच्चभ्रु लोगों की जीवनशैली तथा ग्रामीण जीवन, गरीबों की हीन भावना आदि को स्पष्ट किया गया है। कहानी में महानगरीय शोधकर्ताओं को यक्ष-याक्षिणी की मूर्ति बहुत ही सुंदर और ऐतिहासिक लगती है, जो सोनम्मा के घर के पास है। सोनम्मा ने दोनों मूर्तियों का नाम खाद्य-पदार्थ के आधार पर 'पोंगल और पोली' रखा है। शोधार्थी सोनम्मा से मूर्तियों की माँग करते हैं पर सोनम्मा मूर्ति देने से इनकार करती है। कला और संस्कृति के अज्ञान के बारे में महानगरीय स्त्री कहती है, गरीब लोग हैं, इन बेचारों को कला का क्या ज्ञान ? मुझे तो सच बड़ा दुख होता है इनके लिए। यह सुनकर सोनम्मा का आत्मसम्मान जागृत होता है। उसे मूर्तियों में ऐतिहासिकता या कलात्मकता में बदलाव आ गया है। जिससे व्यक्ति व्यक्ति से दूर जाकर अकेलापन या पलायनवाद का शिकार हो रहा है। समकालीन कहानीकारों ने इस बदलाव को अपने साहित्य द्वारा प्रकट किया। जीवन-मूल्यों का विघटन होकर अनेक संबंधों में दरार उत्पन्न हुई -पुरानी पीढ़ी तथा नई पीढ़ी में अंतर बढता ही गया। जीवन की विसंगती अनेक चरित्रों के माध्यम से कहानीकार ने प्रस्तुत की है।

मृदुला गर्ग के कहानी साहित्य का अध्ययन करने से निम्न रूप से नारी का परिवर्तीत रूप तथा दृष्टिकोण प्रस्तुत होता है।

नारी की स्वतंत्र मनोवृत्ति को उभारने वाली कहानियाँ :

आज के युग में स्त्री भी हर क्षेत्र में पुरूषों के समान अपना व्यक्तित्व निर्माण करने में जुट गई है। अपने स्वंतत्र अस्तित्व के लिए अनेक परंपरागत मूल्यों का त्याग करना पड़ा, संघर्ष करना पडा। 'स्त्री अबला है', 'वह पुरूष के चरणों की दासी है' आदि परंपरागत धारणाओं को आधुनिक नारी ने नकारने की कोशिश की है। जिसमें पूर्णतः सफल नहीं हुई। उभरती हुई नारी चेतना को स्वर देने के प्रयास में जितनी भी कहानियाँ लिखी गई है,उनमें एक अन्वेषण की दृष्टि दिखाई पड़ती है। जीवन के बदलते मूल्यों के साथ संघर्ष करती हुई नारी सिर्फलेखिकाओं के लिए ही नहीं समस्त साहित्यकारों के लिए सबसे बड़ी चुनौती है। लेखिकाओं ने अपनी कहानियों में नारी जीवन के उन छोरों को पकड़ने की कोशिश की है। जो ग्रामीण अंचलों की झुग्गी-झोपडियों से लेकर शहर के व्यस्त नगर वीथियों तक फैला पड़ा है।

'एक और विवाह' मृदुला गर्ग की कहानी में 'कोमल' आधुनिक विचारों वाली अहंग्रस्त नौकरीपेशा नारी है जो भारतीय आदर्श एवं मान्यताओं को आधारहीन मानकर पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित होकर जीवन निर्वाह करती है। कोमल प्रेम के आधुनिक रूप पर विश्वास करती है। उसके अनुसार शारीरिक संबंध के लिए विवाह की जरूरत नहीं है। विवाह मात्र एक रिवाज है, विवाह से बढ़कर वह शारीरिक संबंध को महत्व देती है। कोमल के लिए विवाह जैसा पवित्र बंधन सेक्स और रोमान्स के सामने मूल्यशून्य है। कोमल अपनी इच्छा के अनुसार मदन से विवाह निश्चित कर लेती है। विवाह के बाद पहली रात को ही कोमल की स्वतंत्र मनोवृत्ती को देखकर पति दंग रह जाता है। मदन कहता है "वाह तुम तो अमेरीकन स्त्रियों को भी मात करती हो।' पति के इन शब्दों से कोमल को ठेस पहुँचती है उसे अपने प्रयोग में सफलता तो मिलती है लेकिन वह आत्मतुष्टी से वंचित हो जाती कोमल विवाह के

साथ-साथ नारी सुलभ लज्जा के संबंध में भी यह कहती है - "लज्जा ही स्त्रियों का आभुषण है। कोरी बकवास । सेक्स को इतना ढांप कर चलना है तो विवाह की इतनी चीख पुकार क्यों ?" 6 यही कारण है कि, "स्त्रियों की तरह कोमल को अपने मुख या देह के लावण्य पर गर्व नहीं था । शायद वह जानती भी नहीं थी, कि वह सुंदर है या नहीं। पर गर्व था आवश्य, अपनी स्पष्टवादिता पर, अपने विचारों की स्वंतत्रता पर, अपनी आडम्बरहीन आधुनिकता पर । जहाँ व्यक्तित्व विचारों द्वारा नियंत्रित होने लगता है वहाँ भावना का महत्व गौन हो जाता है। यही कारण है की कोमल अपने विचारों द्वारा अपने व्यक्तित्व को नियंत्रित रखती है। "7

'कितनी कैदें' कहानी की मीना आधुनिकता की होड में अपना कौमार्य नष्ट करती है । वह एक साधारण लड़की थी। किंतु माँ के उपदेश और फैसले की ओर बढ़ने का प्रोत्साहन उसके चरित्र को भ्रष्ट कर देता है। आधुनिकता के आड में मीना नशीले पदार्थों का सेवन कर लडकों के साथ खुले आम घूमती है। इस दरम्यान खेल-खेल में मीना की इज्जत लुट जाती है। उसकी जिदंगी एक नए मोड पर आकर खड़ी हो जाती है। वह माँ के अत्याचारों को सहकर घर की चार दीवारी में कैद हो जाती है। मीना शीलभंग होने के कारण विवाह करना नहीं चाहती लेकिन एक शुभ मुहूर्त पर मनोज के साथ विवाह हो जाता है। शादी के बाद मीना को जीवन के नए अनुभवों के प्रति कोई विशेष रूचि नहीं, क्योंकि विवाह के पूर्व ही वह सेक्स का आनंद ले चुकी है। एक दिन मनोज के सामने मीना अपना अतीत बयान करती है। मीना के किस्से सुनकर ा-बक्का रह जाता है। वह मनोज के लिए एक चुनौती बन जाती है, मनोज सोचता है "क्या वह मीना की पिछली जिंदगी के शिकंजे से बरी हो सकेगा। इस औरत के साथ सहज, स्वाभाविक जिदंगी जी सकेगा। "8 मीना न केवल अपने पति के लिए समस्या है अपितु बदलते समाज और उस समाज में जीने वाले समूचे नारी वर्ग के लिए भी एक पहेली है। मीना के साथ बलात्कार का हादसा हुआ, वह मुक्त विचारों से जीना चाहती है।

'हरी बिंदी' कहानी में मृदुला गर्ग ने नारी की स्वतंत्र मानसिकता को अभिव्यक्त किया है । कहानी की नायिका पति के सीमित दायरे में घुटकर जीना नहीं चाहती। वह आजादी चाहती है । जब राजन दौरे पर चला जाता है वह अपने आपको स्वतंत्र पाती है, बहुत खुश हो जाती है। वह सोचती है, "सुबह देर तक सोने में कितना आनंद आता है। राजन होता है से ही खटर पटना शुरू हो जाती है। चाय नाश्ते न जाने राजन को यह जल्दी उठने का क्या मर्ज तो सुबह की तैयारी है ? खैर आज वह स्वतंत्र है।" 9

मृदुला गर्ग ने कहानी के माध्यम से बताया है कि राजन के अनुपस्थिति में नायिका अपने सारे अरमानों की पूर्ति करती है। अत्यधिक खुशी के कारण वह बेतुके ढंग से शृंगार करती है। सजधज कर पिक्चर जाती है। बीच-बीच में जोर से हँसती है, काफी हाऊस जाकर एक साथ ठंडा -गर्म खाती है। नायिका के ऐसे विचित्र व्यवहार से स्पष्ट होता है वह पति राजन के क्रमबद्ध जीवन में अपने आपको रख नहीं पाती, वह अपनी ही मर्जी से जीना चाहती है।

नारी में व्यक्ति स्वातंत्र्य की चेतना :

शिक्षा ने नारी को अपनी अस्मिता का एहसास कराया है। साथ ही संविधान ने स्त्री- पुरूष समानता का अधिकार दिया है। आज नारी अपने बुद्धि, बल के आधार पर अनेक क्षेत्र में आगे बढ़ रही है। वह पुरूष से किसी भी हाल में पीछे नहीं है। नारी में चेतना का स्वर निर्माण हुआ है चाहे वह किसी भी वर्ग या स्तर की हो। मृदुला जी कहती हैं –जहाँ तक स्त्री का सवाल है उसके पास शिक्षा या समय भले न हो पर घर-बार चलाते- चलाते नौकरी या छिटपुट काम करके कमाई करने के साथ वह अन्न, पानी, इंधन, दवा-दारू का जुगाड भी कर लेती है तो सोच-विचार करने की क्षमता का अभाव उसमें कदापि नहीं हो सकता। " 10 लेखिका की दृष्टि से कोई भी स्त्री चाहे वह

शिक्षित हो या न हो नारी चेतना संपन्न है। अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व के कारण आज स्त्री जीवन का कोई भी निर्णय सक्षमता के साथ ले रही है, उसे परंपरागत मूल्य, परिवार या समाज की कोई पर्वा नहीं है। 'मेरा' कहानी में मृदुला गर्ग ने स्त्री-चेतना का स्वर दिखाया है। पत्नी माँ बनना चाहती है और पति महाशय पितृत्व टालना चाहते हैं। हर नारी में मातृत्व प्राप्ति की इच्छा होती है। प्रस्तुत कहानी में 'गर्भपात' को लेकर दोनों में टकराव उत्पन्न होता है । पति महेंद्र को विदेश जाना है, खूब पैसा कमाना है, बंगला, गाड़ी, नौकर आदि की मनीषा रखने वाला है इसलिए वह चाहता है कि इस समय बच्चा नहीं चाहिए महेंद्र अपनी असुविधा को टालने हेतु पत्नी मीता से गर्भपात करवाना चाहता है जबकि मीता यह कतई नहीं चाहती। " पति से पूछे बगैर गर्भ गिराया जा सकता है तो रखा भी जा सकता है।" 11 डॉक्टर के इस वाक्य से मीता फॉर्म फाड़ डालती है।"तमाम दबाव के बीच वह निर्णय लेती है कि वह माँ बनेगी और अपने तथा भावी संतान के भरण-पोषण के लिए अतिरिक्त समय काम करेगी, बेहतर नौकरी खोजेंगी, स्त्री की यह स्वाधीनता की और साहस इसलिए संभव हुआ है कि वह अब अपने जीवित रहने के लिए आर्थिक दृष्टि से स्वाधीन है, पुरूष पर आश्रित नहीं। "12 मीता अपना मातृत्व टालना नहीं चाहती जिसके लिए कोई भी कष्ट सहन करने की क्षमता रखती है।

निष्कर्ष -

उपर्युक्त विवेचन से हम कह सकते हैं कि मृदुला गर्ग साठोत्तरी हिंदी साहित्य की एक विशेष भारतीय साहित्यकार हैं, जिनकी रचनाएँ विभिन्न साहित्यिक प्रकारों में हैं। उनकी कहानियाँ, कविताएँ, निबंध और उपन्यास आमतौर पर मानवीय और सामाजिक मुद्दों पर आधारित होती हैं। मृदुला गर्ग का साहित्य अपने समाज की विभिन्न पहलुओं पर एक गहरा विचार करता है, जैसे कि महिला उत्थान, उनकी स्थिति, समस्याएँ और समाज में उनकी भूमिका। उनकी रचनाएँ महिला सशक्तिकरण, लैंगिक समानता, परिवार, संबंध, और समाज में विभिन्न प्रश्नों को उठाती हैं। उनकी कहानियाँ अक्सर स्त्रियों का जीवन संघर्ष, और स्त्री संवेदनाओं जैसे विषयों पर आधारित होती हैं। उनकी रचनाएँ स्वानुभूति तथा सहानुभूति पर आधारित होती हैं, जिससे पाठकों को उनकी समस्याओं और जीवन की चुनौतियों को समझने में मदद मिलती है। मृदुला गर्ग की रचनाओं में सामाजिक न्याय, लैंगिक समानता, और मानवीय संवेदनशीलता को प्रोत्साहित करने की भावना प्रभावशाली रूप से प्रकट होती है। उनकी कविताएँ और कहानियाँ सामाजिक और राजनीतिक उद्दीपन के साथ रूचि और सोच को जागृत करने का प्रयास करती हैं।

संदर्भ ग्रंथ :

1. 'समकालीन हिंदी कहानी का सफर': बलराम, पृ. १३२
2. 'डेफोडिल जल रहे हैं' (भूमिका) : योगेश गुप्त. पृ. ८-९
3. 'कहानी: स्वरूप और संवेदना' : राजेंद्र यादव पृ. ५३
4. 'समकालीन कहानी : रचना और दृष्टि': संपा. रामकिशोर सेठ, मेहरोत्रा, मिश्र, पृ. १५५
5. 'उर्फ सैम' : मृदुला गर्ग, पृ. १२३-१२४
6. 'कितनी कैदें' : मृदुला गर्ग,
7. - वही -पृ. ७६
8. - वही -पृ. ७६
9. हरिबिंदी पृष्ठ 90
10. साक्षात्कार - जुलाई- अगस्त १९९६ मृदुला गर्ग के लेख 'समकालीन संस्कृति और हिंदी साहित्य में स्त्री चेतना' से, पृ.९२
11. 'डैफोडिल जल रहे हैं' : मृदुला गर्ग, पृ.८७
12. कहानी- नवंबर १९७८, डॉ. हरदयाल के लेख 'भावुकता और रोमान्स से परे' से, पृ. ५३

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

ममता कालिया के साहित्य में नारी चेतना

कोमल बालकिशन तापडिया
शोधछात्र

डॉ. सुरेखा एस. लक्कस
शोधनिर्देशिका, हिंदी विभाग,
एम.जी.एम. विश्वविद्यालय
छत्रपति संभाजीनगर. महाराष्ट्र

प्रस्तावना

साहित्यकार समाज का एक अभिन्न अंग होता है। समाज को न केवल प्रेरित बल्कि उस में वक्त बुराइयों का निराकरण साहित्य के द्वारा करना उसका कार्य होता है। ममता कालिया भी ऐसी संवेदनशील हिंदी की सुप्रसिद्ध लेखिका है। हिंदी कहानी के परिदृश्य पर ममता कालिया की उपस्थिति सातवें दशक से लगातार बनी हुई है। ममता कालिया जी ने कहानियां, उपन्यासों, कविताएं तथा नाटकों की रचना की है। साथ ही बाल साहित्य की दुनिया में भी उनका सक्रिय हस्तक्षेप रहा है। समाज की विभिन्न अंगों को अपने साहित्य में उन्होंने उच्च स्तर पर रखा है। एक सच्चा साहित्यकार वही होता है जो समाज में व्याप्त विसंगतियों को चित्रित करते हुए, अपने साहित्य के द्वारा उसका रोग निदान प्रस्तुत करें। ममता कालियाजी भी ऐसी रचनाकार है जो गहरी आत्मीयता आवेद और उमेश के साथ लेखन करती है। इनके लेखन में अनुभूति की उष्मा, अनुभव की ऊर्जा है ।एक संस्कारशिल पतिपरायण नारी होने के कारण ममता जी की कहानियां नाटक ऐसी दिखाई देते हैं। जो विवाह को एक संस्कार मानती है उनके रचनाओं में यथार्थ के सौंदर्य बोध के साथ नारी अस्मिता और संघर्ष भी वक्त हुआ है १९६० से लेकर आज तक वे लेखन कार्य कर रही है। उनके साहित्य में नारी हाशिए पर ना होकर केंद्र में दिखाई देती है। ममता जी शब्दों की पारखी है उनका भाषा ज्ञान अनंत उच्चकोटि का है साधारण शब्दों में भी अपने प्रयोग से जादुई प्रभाव उत्पन्न कर देती है। अभिव्यक्ति की सरलता एवं सुबोधता उसे विशेष रुप में मर्म स्पर्शी बना देती है।

ममता कालिया के साहित्य में नारी चेतना

ममता कालिया जी का नाम 60 के दशक की लेखिकाओं के बीच आता है| इन्होंने अपना लेखन कार्य 1960 से आरंभ किया है|इस समय उन्होंने सर्वप्रथम कविताएं लिखने से शुरुआत की लेकिन यह प्रभाव स्थायी सिद्ध नहीं हुए।फिर उनका रुख कहानी लेखन की तरफ परिवर्तित हुआ।

ममता कालिया एक अच्छी कहानीकार होने के साथ-साथ एक उपन्यासकार भी है।उन्होंने अपने उपन्यासों में नारी, समाज, परिवार,दांपत्य से जुडी हर घटना का यथार्थ चित्रण किया है । प्रारंभिक उपन्यासों का और आधुनिक उपन्यासों का भेद बताते हुए प्रताप नारायण टंडन कहते हैं "प्रारंभिक उपन्यासों के सीमित परिवेश को परिभाषा करना फिर भी उतना कठिन नहीं था ,लेकिन आज के उपन्यास इतने जटिल और विस्तृत अनुभव क्षेत्र का आत्मसात किए हुए हैं उसके स्वरूप का स्पष्टीकरण बहुत निश्चित अर्थों में कर सकना सरल नहीं।"(१)

हिंदी के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद ने उपन्यास को परिभाषित करते हुए लिखा है कि मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र मानता हूं।मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्य को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।"(२)

ममता कालिया जी ने नारी को अपने लिखने में केंद्र बिंदु माना है ।नारी से जुड़े हर पहलू ममता कालिया जी के साहित्य में चित्रित होते हैं नारी से जुड़ी यौन शोषण, विवाह समस्या, दांपत्य जीवन .....आदि पर उन्होंने प्रकाश डाला है। डॉ. लहूरामराव के अनुसार स्त्री चाहे जितनी सुशिक्षित क्यू ना हो उसके प्रती देखने की दृष्टि इस पुरुष प्रधान संस्कृत में अच्छी नहीं है ।उसकी शिक्षा को कोई महत्व नहीं दिया जाता है ।अगर यही स्त्री पुरुष से ज्यादा पढ़ी लिखी हो तब तो उसकी प्रतिभा को मात देने की घर की चार दिवारी में कैद करने की प्रवृत्ति पुरुषों की होती है ।ऐसी कई समस्याएं सुशिक्षित नारियों की होती है।(३)

नारी समस्याएं

बेघर उपन्यास में चित्रित संजीवनी और परमजीत एक दूसरे के प्रेम संबंध में जुड़ जाते हैं | संजीवनी अपने घर की समस्याओं से लेकर परेशान रहती है| इस वजह से परमजीत पर वह भरोसा कर बैठती है| उसके साथ शारीरिक संबंध बनाकर भी परमजीत खुश नहीं होता और उस पर शक करता है और उसे छोड़ देता है| संजीवनी बहुत उग्र मन:स्थिति में थी "उसका मन हुआ शरीर पर पड़ा कंबल दातों से कांट चिंदी चिंदी कर दे और सड़क पर त्याऊ त्याऊ करते पिल्ले की गर्दन दबा डाले |"(४) आग्रह,गुस्सा,न बोलने की धमकी देकर वह उसको मना लेता और संजीवनी प्यार पर भरोसा रखकर मान भी जाती है ।परंतु पहला न होने का मतलब "संजीवनी की उससे अलग एक व्यक्तिगत दुनिया रही होगी जिसका भागीदार कोई और रहा होगा|"(५)

हमारे समाज में पुरुष अपनी पत्नी को व्यक्तिगत संपत्ति मानता है| मनुष्य को तीव्र इच्छा होती है कि जो कुछ उसका अपना है वह कभी भी किसी दूसरे का ना बना हो| ऐसी विजय को वह महत्वपूर्ण मानता है "अनेक को वे प्रदेश आकर्षित करते हैं जहां पहले कोई गया ना है|"(६) पर यही सब नियम स्त्री के लिए ही होते हैं| पुरुष के लिए कुछ नहीं जहां स्त्री नियम का उल्लंघन करती है वहां फौरन उसे घर से 'बेघर' कर दिया जाता है।कुल्टा, वेश्या जैसे नाम देकर उन्हें सांझी संपत्ति या उपयोग की वस्तु बना दिया जाता है ।(७)

इसी कारण स्त्री जन्म पर आज भी नाखुशी दिखाई देती है।नारी की अपनी स्वतंत्रता पुरुषों पर हावी होती है।इससे पुरुष नाराज दिखाई देते हैं।

'नरक दर नरक' की उषा भी पुरुषों की अशिष्टता का शिकार होती है। जब उसके सहपाठी तुरखिया ने उसे फिल्म देखने का आमंत्रण दिया । सहज स्वभाव वाली उषा जब तैयार होकर एक्सेल्सियर पर जाती है तब उसके सहपाठियों ने उसे उल्लू बनाया था। उषा बार-बार फाटक की ओर देख रही थी।जैसे-जैसे वक्त बीत रहा था उसका अटपटापन बढ़ता जा रहा था उसे अपने ऊपर गुस्सा आ रहा था।" क्या जरूरत थी एक ही बार में मान जाने की कितना नर्दादापन दिखाया उसने।"(८) इस तरह समाज में पुरुष वर्ग स्त्री को हमेशा नीचा दिखाने की कोशिश करता है।

'प्रेम कहानी'उपन्यास में जया के माध्यम से पुरुष नारी पर किस तरह बुरी नजर रखते हैं इसका यथार्थ चित्रण किया गया है। जया गहरी नींद में थी इसलिए बड़े झटके से नींद टूटी । दरअसल "नींद में यकायक लगा जैसे कोई सारे बदन की माप ले रहा हो। आभास नींद के समुद्र में डूबा उतराया फिर ऊपर आ गया लगा में दर्जी की दुकान में हूं। लेकिन वह कूल्हे और जांग के दरम्यान कैसी माप?..... अचकचा कर बैठी हो गई।"(९)

प्रेमविवाह

ममता कालिया जी ने नारी के अलग-अलग अंगों को अपने लिखने में दर्शाया है। प्रेम विवाह पर ममता कालिया जी लिखती है प्राचीन काल में जीवनसाथी माता-पिता चुनते थे लेकिन आज के समय में लड़का–लड़की

अपना जीवन साथी खुद चूनते हैं अब विवाह दो परिवारों का न होकर दो व्यक्तियों का मामला बन गया है। इसलिए समाज में प्रेम विवाह की समस्या बढ़ रही है। लेकिन यह प्रेम विवाह सफल भी हो सकते हैं और असफल भी। ममताजी के अधिकांश साहित्य में प्रेम विवाह जैसी समस्या को चित्रित किया गया है। प्रेम संबंध से लेकर जैनेंद्र जी का कथन है "विवाह कितना ही प्रेम विवाह है पत्नी यथार्थ पर आकर निरस्त्री होने पर देवता पन से नीचे आता है और मनुष्य बनता है"(१०)

'नरक दर नरक'उपन्यास के अंतर्गत उषा और जगन के माध्यम से इस समस्या को चित्रित किया गया है। इस उपन्यास का नायक जोगेंद्र उर्फ जगन साहनी केडिया कॉलेज में लेक्चर है। उषा और जगन की प्रेम कहानी लिफ्ट में चुंबन के साथ शुरू होती है लेखिका के अनुसार वे जीवन में काफी चौकन्ने रहे थे फिर भी पता नहीं कैसे बड़ी जल्दी प्रेम उन दोनों के बीच घुसपैठ कर गया।(११) उषा प्रेम विवाह करती है लेकिन उसके परिवार वाले उसका विरोध करते हैं।

'प्रेम कहानी' उपन्यास में जया गिनेस के साथ प्रेम विवाह करती है वह अपने माता-पिता की इकलौती लड़की थी। गिनेस के विषय में जब जया अपने माता-पिता को कहती है तो वह इनकार कर देते हैं। उसके बावजूद भी वह गिनेस से प्रेम करती है ।वह उसे कहता है" लो, तुम इसके लिए आतुर थी और मैं तुम्हारे लिए" आखिर परिवार वालो के खिलाफ वह रजिस्टर्ड मैरिज विवाह करते हैं। गिनेस के प्यार ने मेरा संसार बदल डाला कहने वाली जया उसे तंग आकर शिकायत करती है "प्रेम भी कर लिया, शादी भी कर ली, पर एक भी बार ना ताजमहल गए, ना कश्मीर, ना कोई फोटो खिंचाई ना,जेवर बनवाए।"(१२) जय का प्रेम और विवाह से मन उठ जाता है।

'एक पत्नी के नोट्स' उपन्यास में ममता जी लिखती है जिन लोगों के जीवन में प्रेम और विवाह आकस्मत अनायास आते हैं उन्हें उसके निर्वाह में उतनी ही सायास मेहनत करनी पड़ती है जितनी उन लोगों को जिनके विवाह अखबारों के इश्तिहार तय करते हैं अथवा रिश्तेदार।(१३) यह बात जितनी नायिका कविता के लिए सच थी उतनी ही नायक संदीप के लिए थी। जब वह कविता को पत्नी के रूप में पा लेता है तो कविता के प्रति उसका प्रेम कम होने लगता है। वह उसे हर जगह अपमानित करता है अखिल भार्गव मित्रों के घर में जाने के बाद वह कविता से 'कॉमन बात' के बारे में कहता है कि "हमारे आपके बीच सबसे कॉमन बात यह है कि हम लोगों के एक ही आधार पर विवाद किया है प्रेम।आप दोनों ने भी प्रेम विवाह किया है? किंतु संदीप इस बात पर कहता है अब तो सिर्फ विवाह बच्चा है।"(१४) इस प्रकार कविता अपनी जिंदगी से उब जाती है अंत में उसे लगता है एक विकृत आदमी से मोहब्बत करके मैंने अपने खुशी के पल गवा दिए।"

'बेघर'नामक उपन्यास की नायिका संजीवनी और नायक परमजीत एक दूसरे से प्रेम करते थे आम प्रेमी युगल की तरह वह परमजीत से मिलने की कोशिश करती लेकिन एक संभावित दुर्घटना का अनुभव भी संजीवनी को होता है परमजीत उससे शारीरिक संबंध बनाने का आग्रह करता है गुस्सा किया और कभी ना बोलने का डर दिया था। संजीवनी ने बहुत मन किया कई तरह के डर दिखाएं कितने ही बहाने बनाए फिर वह नर्वस होकर काप गई।(१५)

एक और अन्याय जो संजीवनी को खा रहा था वह यह कि उसने उस समय महसूस किया कि परमजीत को भी उतना ही अच्छा लगा जितना उसे। पर अलग होते ही परमजीत ने उसे इस स्मृति को बिल्कुल ही मिटा दिया था वह परमजीत से एक लंबी बहस करना चाह रही थी।(१६) बिना मौका दिए परमजीत रमा से शादी कर लेता है। परमजीत और संजीवनी का प्रेम विवाह होने से पूर्व ही टूट जाता है। 'पीली लड़की' कहानी की नायिका ' सोना'का भी प्रेम विवाह हुआ है । पुरुष के स्वभाव के बनावटी पन का अनुभव उसे भी होता है। यही कारण है

कि विवाह उपरांत सोना दिन-ब-दिन अंतर्मुखी होती जाती है। प्रेम में जान कुर्बान कर देने वाला प्रोफेसर प्रेमी सामाजिक संपर्क बढ़ाने के चक्कर में सोना को समय नहीं दे पता है और वह अकेलेपन का शिकार हो जाती है।वह उदासी के क्षणों में सोचती है पहले तो ऐसा नहीं था उन दिनों में अगर सात बजे मिलने को कहती तो वह छः बजे ही बस स्टॉप पर आ जाता। कभी मैं कहती हम लोग एक दूसरे से बोर हो गए तो? तो कहता, कोई बात नहीं बोर होंगे भी तो साथ-साथ।(१७) 'लगभग प्रेमिका'कहानी की नायिका नौकरी के कारण पति से अलग हॉस्टल में रहती है । वह अपने अकेलेपन को दूर करने के लिए अपने पति के मित्र कृष्णा कक्कड़ से प्रेम करने का प्रयास करती है। वह उसके साथ घूमने जाती है वह कहती है सामने से एक बेहद जवान लड़की मिनी ड्रेस में आ रही थी।कृष्णा उसे ध्यान से देख रहा था। मुझे लगा मैं साथ ना होती तो वह जरूर सीटी बजाता ..... मैंने विदा लेली।(१८)

'प्रेम कहानी' उपन्यास की जया को गिनेस से प्यार होता है ।वह रजिस्टर्ड मैरिज करते हैं । गिनेस रेजिडेंट डॉक्टर की हैसियत से अस्पताल में नौकरी करने लगता है जिसके कारण जया को वह समय नहीं दे पाता वह गिनेज से शिकायत करती है इस पर वह कहता है "प्रेम और प्रेमी इतने पीटे हुए शब्द है कि इनका कोई अर्थ नहीं बचा है ।हम एक दूसरे के लिए जरूरी है क्या यह काफी नहीं है।"(१९)

'छुटकारा' कहानी की नायिका अपने प्रेमी की बुद्धिवादी सोच के कारण प्रेम संबंधों को उचित अंजाम न दे सकने से कुंठित हो जाती है । उसे विवाह पूर्व प्रेम संबंधों की सच्चाई का बोध हो चुका है। इस संदर्भ में वह सोचती है मैं चुप हो गई। मैं घर जाना चाहती थी असल में मैं आना ही नहीं चाहती थी। चलते हुए मुझे लगा जैसे मैं शून्य में शून्य से समय नियत कर रही हूं।(२०) इस प्रकार यह नायिका अकेलेपन से त्रस्त हो जाती है उसकी मनोदशा का वर्णन इस प्रकार किया गया है 'पहले तो वह होता था और बेशुमार सबर, अफवाहें,लतीफे वाक्यांश हंसी और तेवर ।'(२१)

अनमेल विवाह

भारतीय समाज में विवाह को अधिक महत्व दिया जाता है। विवाह के कारण परिवार का वंश बढ़ता है। अनमेल विवाह में कहीं उम्र का फर्क होता है, तो कहीं विचारों का फर्क होता है।पति-पत्नी में वैचारिक मतभेद के कारण उनका जीवन दुखमई बन जाता है। वर्तमान दौर में पति-पत्नी में अनेक मतभेद होने के कारण यह समस्या उभर कर सामने आ गई है। अनमेल विवाह होने के कारण दोनों की जिंदगी नरक से भी बत्तर हो जाती है। इसे ममता कालिया ने अपने साहित्य में यथार्थ रूप में चित्रित किया है जो इस प्रकार है–

ममता जी का 'बेघर'उपन्यास अनमेल विवाह की दृष्टि से महत्वपूर्ण है इस उपन्यास के केंद्र में परमजीत और रमा है। परमजीत स्वतंत्र विचारों वाला व्यक्ति है लेकिन पत्नी कंजूस, अंधविश्वासी है रमा सबके साथ दुर्व्यवहार करती है। जब परमजीत अपने ब्याह की पार्टी का निमंत्रण देने केकी अंकलेसरिया के पास जाता है तो रमा बिना सोचे समझे कहती है– " अरे पारसिन है। इन लोगों में शादी होना ही मुश्किल है। अलग-अलग आदमियों में खाती पीती है। इसलिए इतनी जल्दी बूढी हो जाती है.....तुमसे अस्पताल अस्पताल क्या कहा रही थी। इसने तुम्हें रख था तुम इसे रख रहे थे? क्यों गई थी वह अस्पताल?"(२२)परमजीत का धैर्य टूटने लगता है। अनमेल विवाह के कारण उसका सुखी जीवन दुखी होने लगता है।

लड़कियां नामक उपन्यास में अनमेल विवाह से बचने की कोशिश नायिक 'लल्ली' करती है वह अविवाहित है उसके लिए रिश्ते आते हैं। वह फैसला नहीं कर पाती। क्योंकि हर अखबार बहू प्रताइना की खबरों से भरे होते हैं। इससे उसक मन उठ जाता है। एक लड़के के प्रस्ताव के बारे में लल्ली कहती है "वह स्थानीय बैंक में एजेंट था

और उसकी पहली पत्नी एक सड़क दुर्घटना का शिकार हो गई थी वह मेरे साथ अपने विदुर जीवन को मधुर बनाना चाहता था।"(२३)इसे हम अनमेल विवाह ही कह सकते हैं।

पति-पत्नी की वैचारिक टकराहट को हम 'एक पत्नी के नोट्स' उपन्यास में देख सकते हैं संदीप और कविता प्रेम विवाह करते हैं । आत्मनिर्भर होने के कारण दोनों के बीच 'अहम' टकराता है । दोनों के विचारों में मतभेद होने के कारण उनका जीवन तनाव ग्रस्त होता है। इस संदर्भ में लेखिका का कहना है कि "ऐसे तनाव ज्यादा नागवार इसलिए थे क्योंकि इनकी जड़ में कोई सच्चाई नहीं थी।.....वह अभी भी पति-पत्नी कम और प्रेमी ज्यादा थे लेकिन सबसे अधिक संताप भी वही झेलते।"(२४) वैचारिक भिन्नता के कारण उनका विवाह अनमेल बन जाता है।

'रायवाली' नामक कहानी में एक स्त्री का चित्रण किया है जो 'राए'की होने के कारण उसका नाम रायवाली पड़ गया। वह बहुत ही पढ़ी लिखी थी। उसकी शादी उसकी मर्जी के खिलाफ की जाती है। उसका पति अनपढ़ है। वह कोई काम नहीं करता है बल्कि उसे पर रोब झाड़ता रहता है। कुछ कारणवश उसे वैश्या बनना पड़ता है लेकिन उसके परिवार वालों को लगता है की 'राय की छोरी काम को कोरी।' हर वक्त उसका पति मोहन उस पर चिल्लाता रहता है "जुबान लड़ाती है बदजात कहीं की। मेरी मां को कुछ कहा तो जीभ काट कर धर् दूंगा।"(२५) शादी के बाद उन दोनों के विचार ना मिल पाने के कारण उनकी जिंदगी तहस-नहस हो जाती है।

'मंदिरा' नामक कहानी की नायिका मंदिरा अपने नाम के समान ही बहुत सारी उमंगों को लेकर अपने पारिवारिक जीवन में रोमांच का अनुभव करना चाहती है।लेकिन उसका पति जो शादी को बिल्कुल भी महत्व नहीं देता । नीरस स्वभाव वाले पति 'वाजपेयी' को पाकर उसकी जिंदगी उमंग तीतर भीतर हो जाती है। उसे लगने लगा कि उसका शादीशुदा जीवन किसी काम का नहीं है। उस पर यह विवाह थोप दिया गया है।अपने पति के बारे में सोचते सोचते उसे लगा "यह कैसा पति है ना दुख में विचलित होता है, न सुख में परम आल्हाद के क्षण भी उसके ऊपर से ऐसे गुजर जाते हैं जैसे रेलगाड़ी के ऊपर से पंछी।"(२६)

ममता कालियाजी की 'दर्पण' नामक कहानी में , नायिका (बानी) का शादी से पूर्ण जो जीवन था वह अलग था वह हस्ती खेलती पढ़ी-लिखी होती है। लेकिन बिना जांच परख के उसके परिवार वाले उसकी शादी कर देते हैं। शादी के तुरंत बाद उसे अपना जीवन व्यर्थ महसूस होने लगता है। बानी को यह लगता था कि उसकी देह में सरगम का सा उतार चढ़ाव है। उसके शरीर का एक-एक अवयव अलग-अलग अस्तित्व जताता था। "उसने कई बार सोचा की शादी के बाद वह सबसे पहले जो चीज खरीदेगी वह होगा दर्पण।" शादी के बाद उन दोनों में अनबन होने लगी उनके विचार मोल नहीं खाते एवं उसका पति अपने प्रभुत्व का कुछ इस तरह इस्तेमाल करने लगा था कि हर बात में उसकी अनुमति अनिवार्य थी।

इस प्रकार ममता कालिया ने आज के समाज में अनमेल विवाह से संबंधित कुछ स्थितियां इन कहानियों के माध्यम से उजागर की है।

अंतर्जातीय एवं अंतर्राष्ट्रीय विवाह

स्त्री एवं पुरुष स्वाधीनता से उत्पन्न होने वाला विवाह अंतरजातीय विवाह है।जब एक जाति की लड़की दूसरे जाति के लड़के के साथ विवाह करती है उसे अंतरजाती विवाह कहां जाता है। नगरीकरण और औद्योगीकरण के बढ़ने के कारण इस तरह के विवाह हो रहे हैं। ममता जी ने अपने साहित्य में अंतरजातीय विवाह जैसी समस्या का चित्रण किया है

'दौंड' उपन्यास में पवन और स्टेला का विवाह अंतर्जातीय होते हुए भी अंतरराष्ट्रीय विवाह रहा। पवन भारतीय है और स्टेला विदेशी शिकागो है इस बात की खबर स्टेला अपने माता-पिता को ईमेल द्वारा भेजती है। इससे उनके माता-पिता खुश होकर उसे शुभकामनाएं भेजते हैं। लेकिन पांडे परिवार पवन की खबर पर हदबुद्धि रह गया। ना उन्होंने लड़की देखी थी ना उसका कारोबार। आकस्मिकता के प्रति उनके मन में शंका पैदा हुई राकेश ने पत्नी से कहा "पुन्नू के दिमाग में हर बात फितूर की तरह उठाती है। ऐसा करो तुम एक हफ्ते की छुट्टी लेकर राजकोट हो आओ।लड़की भी देख लेना उनको भी टटोल लेना। शादी कोई चार दिन का खेल नहीं हमेशा का रिश्ता है। इंटर से लेकर अब तक दर्जनों दोस्त रही है पुन्नू की ऐसा चटपट फ़ैसला तो उसने कभी नहीं किया।"(२८)

आधुनिक युग में जीने वाले पवन जैसे पात्र अपनी शादी के संबंध में अपने माता-पिता की राय जानना उचित नहीं समझ रहे हैं। यह बात सभी सही भी है क्योंकि ऐसे विवाह में रुढ़ी परंपराएं ,मान्यता, जाती आदि का महत्व तो नहीं रहता।लेकिन लड़का और लड़की के मन की सहमति ही अहम हैं। वैश्वीकरण के युग में तो यह होना निश्चित है पवन की मां रेखा इस विवाह का विरोध करती है। लेकिन रेखा और राकेश ने भी अंतरजातीय विवाह किया था पवन स्टेला के ब्याह के बारे मे राकेश का कथन है कि सब यही करते हैं। क्या हमने ऐसा नहीं किया मेरी मां को भी ऐसा ही दुख हुआ था।(२९)

'प्रेम कहानी' में गिनेज़ और जया अंतर्राष्ट्रीय एवं अंतरजातीय प्रेम विवाह करते हैं।जबकि गिनेज मॉरीशस देश का रहने वाला है और जय भारतीय है। लेकिन जया के घर वाले उसे अस्वीकार करते हैं। वहीं दूसरी और यशा शिकागो के मोहम्मद नामक मुसलमान युवक से मोहब्बत करती है।प्रेम पत्र के द्वारा उसके घर वालों को पता चलता है ।इसलिए पिता सजातीय युवक से उसकी शादी करना चाहते हैं ।निश्चित रूप से उनके बीच जाती धर्म की दीवारें खड़ी हो जाती है यशा के अनुसार" मैं मुसलमान हो जाऊं, तो बनिया जाती का पतन हो जाए "।(३०)उसके परिवार के सदस्य उसके जाती के लड़के से उसकी शादी करवाते हैं क्योंकि अपनी जाति में तथा समाज में उनकी बदनामी ना हो।

ममता कालिया का 'नरक दर नरक' उपन्यास का नायक जगन उषा के साथ विवाह करता है। जगन पंजाब राज्य के चंडीगढ से था। तो उषा मथुरा ,उत्तर प्रदेश के आर्य समाजी समाज से जुड़ी थी। उनके विवाह के बीच भी जाती परंपरा जैसा प्रश्न खड़ा होता है। इन सब बाधाओं के बारे में ममता जी लिखती है "अपनी अपनी जरुरतों के आगे उन्होंने घुटने टीका दिए।घुटने उन्होंने माउंटमेरी चर्च में टिकाए थे, लेकिन फादर डिसूज़ा के यह कहने पर की बिना धर्म परिवर्तन के वे इसाई पद्धति से विवाह नहीं कर सकते।"(३१)

ऐसे जड़ एवं परंपरागत विचारों वाले लोग मौजूद रहेंगे तब तक जाति व्यवस्था बनी रहेगी। इस प्रकार यह कहां जा सकता है की जाति व्यवस्था को खत्म करने का यह विवाह एक माध्यम है। जो समाज एवं राष्ट्र को जागृत करने के लिए महत्वपूर्ण है।सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि ममता कालिया ने इसका समर्थन किया है।

दहेज़

दहेज का अर्थ होता है वह धन या सामान जो विवाह के समय कन्या पक्ष की ओर से वर पक्ष को दिया जाता है। 21वी सदी तक आते-आते दहेज की मांग बढ़ती जा रही है।यह दहेज की वजह से लड़की की शिक्षा, नौकरी आदि को अनदेखा करते हैं।जनसंवेदना से जुड़ी हुई लेखिका होने के कारण ममता कालिया ने अपने साहित्य में इस समस्या का हृदय स्पर्शी अंकन किया है। अपने 'बेघर' उपन्यास में दहेज की कुप्रथा का मार्मिक चित्रण किया गया है। कथा नायक परमजीत के ब्याह के लिए एक से एक बढ़कर एक रिश्ता आता है वह सभी अपना

धूमधाम से विवाह करना चाहते हैं। लेकिन दहेज नहीं देना चाहते इस संबंध से परमजीत की मां के विचार है हमें धूमधाम से या शान से क्या लेना देना जिसमें दहेज ना हो? ऐसी ही एक पढ़ी-लिखी लड़की का रिश्ता आता है लड़की के पिता का कहना था कि" देने लेने में कोई कसर नहीं रखेंगे फोटो भेज रहा हूं तुम्हें पसंद हो तो बात आगे बढ़ाएं।"(३२)

जब परमजीत की शादी तय हो जाती है उसकी मां दहेज के रूप में चारहजार नगद 15 तोला सोना तथा दो सूट लड़के के लिए और एक सूट पिता के लिए का मांगती है। परमजीत को पत्र द्वारा सूचित किया जाता है "वह चार हजार नगद देंगे और 15 तोला सोना। उसकी मां पहाड़गंज जाकर लड़की देखे हैं। उसे लड़की पसंद है। वह कह आई है कि वह लोग 200 आदमियों की बारात लाएंगे और दावत में देसी घी लगाना पड़ेगा दो सूट लड़के के और एक सूट बाप का तो जरूर ही होगा।"(३३)

विवाह में दहेज मिलने के बाद परमजीत के माता-पिता की मानसिकता के बारे में कहा गया है की "सबसे पहले थूक लगाकर दो बार चार हजार के नोट गिन लिए जो उसे नगद मिले थे। उसकी मां ने लड़की के जेवरों को आंखों ही आंखों में तोल लिया कि वह 15 तोल से ज्यादा ही के है कम नहीं।"(३४)

यह सिर्फ परमजीत के परिवार में घटित घटना नहीं है बल्कि वर्तमान समाज में ऐसी घटनाएं हो रही है। ममता जी के 'नरक दर नरक' उपन्यास में दहेज की समस्या का बहुत ही कम विचार किया गया है। जगन के दोस्त बैद्यनाथ की छोटी बहन बहुत ही कुरूप थी । उसके चेहरे पर चेचक के दाग थे। इसी कारण वह परेशान हो रहा था। क्योंकि, दहेज की अतिरिक्त राशि जमा करनी पड़ती थी। उसके अनुसार "दहेज में दस हजार का अतिरिक्त धक्का।"(३५)

आधुनिक युग में कुछ माता-पिता ऐसे भी होते हैं, दहेज से छुटकारा पाने के लिए बेटी की इच्छा के खिलाफ उसकी शादी कर देते हैं। 'प्रेम कहानी' उपन्यास की नायिका 'यशा' पढ़ी लिखी है फिर भी वह इसका शिकार हो जाती है। उसकी चार बहने हैं एक-एक बेटी के ब्याह करने के बाद वह राहत महसूस करते हैं। एक मजबूर पिता की व्यथा , यशा अपनी सहेली जया से व्यक्त करती है "तू अपने घर की इकलौती औलाद है जया तुझे क्या पता, चार लड़कियों के बाप को अपनी बेटियां ब्याहने की कैसी उतावली रहती है। वह रिश्ता ढूंढते समय यह नहीं देखते कि रिश्ता लड़की के लायक है या नहीं, वह तो गिनती पूरी करते हैं मेरी दोनों दीदी के एक-एक कर ब्याह हुए तो पिताजी ने हर बार हाथ झाड़कर कहा यह भी गई अब बची तीन।"(३६)

ममता कालिया के अनुसार आई.ए.एस. दामाद पाने के लिए लोग कितने उतावले होते हैं इसका चित्रण 'एक पत्नी के नोट्स' में किया है। संदीप जब आय.ए.एस बनता है तो उसके लिए अनेक संपन्न परिवारों से रिश्ते आते हैं। क्योंकि, उनकी बेटी जीवन भर खुश रहेगी। इसी कारण से आज समाज में दहेज की समस्या उभर कर आई है। लेखिका के अनुसार "घर पर संदीप के लिए एक से एक समृद्ध परिवारों की लड़कियों के रिश्ते आ रहे थे। सभी लड़कियां घोषित रूप से सुंदर, सुशील, सुशिक्षित और गृह कार्य में दक्ष सभी के पिता संपन्न थे और आय.ए.एस. दामाद खरीदने की हैसियत रखते थे।"(३७) इस तरह के परिवारों की संख्या आजकल बढ़ती जा रही हैं।

ममता जी के 'बिटिया' नामक कहानी में दहेज प्रथा का स्पष्ट रूप है। कहानी की नायिका 'मधुरिमा' को इसका ज्ञान है कि उसके पिता शादी में कितना खर्चा उठा सकते हैं। वरपक्ष जब लिस्ट भेजते हैं, तो वह अपने परिवार को चिंता ग्रस्त देखती है।नायिका की "मां शारदा रूवासी हो गई, कहां तो सोच रहे थे खींचतान कर दस

हजार की पड़ेगी।" (३८)मां का दिमाग सारा दिन कतरब्योत में लगा रहा। बस ले देकर उसके ब्याह का सेट है उसी पर नजर लगी रहती है, "मैं तो नहीं देने की, कर ले जो मर्जी।"(३९)

उसने मन ही मन यह दृढ़ निश्चय किया। अंत में विवाह से पहले ही मधुरिमा की एक सड़क दुर्घटना में मृत्यु हो जाती है। उसकी मृत्यु से परिजनों को दुख होता है साथ ही संतोष भी कि उन्हें अब दहेज नहीं एकत्रित करना पड़ेगा।

'रिश्तो की बुनियाद' नामक कहानी में 'प्रीति' के पास दहेज के लिए न पैसा है ना देने वाला पिता ही है उसकी भाभी उसे कटु शब्द सुनाती है 4 साल पहले जब उसकी मां का देहांत हुआ तब उसकी जिम्मेदारी भाभी पर आ गई। बात-बात में भाभी कहती है "औरों के सास ससुर मरते हैं, तो भरा घर छोड़ जाते हैं। यहां हमारे माथे छोड़ गए हैं यह पचास हजार की बिल्टी।"(४०) "मां तो भाई के आसरे रहती पुराना मकान बेचकर 10 हजार भैया को दफ्तर में तरक्की दिलाने में बतौर घुस दे दिए गए,पुराने पीतल के बर्तन बेचकर भाभी नए स्टील के बर्तन ले आई..... एक सिर्फ प्रीति बची थी, जिसकी उलट-पलट नहीं की जा सकी।"(४१)

ममता जी की 'अकेलीया दुकेलिया' नामक कहानी की नायिका जब अपने विवाह के बारे में सोचती दिमाग में भक–भक् एक लाल रोशनी जलती और वह ठंडी पड़ जाती। शायद अख़बारों ने उसकी मानसिकता को चौपट कर डाला था। वह विवाह एवं दहेज के कारण होने वाले अत्याचारों पर सोचती है एवं घबराती है "कोई ऐसा दिन न था जब विवाहित नवयुतियों को मार डाले जाने के सचित्र समाचार न छपे हो।अच्छे पढ़े लिखे बेरोजगार लड़के एक आद स्कूटर, फ्रिज या टी.वी के लिए अपनी पत्नी को जला मारने में कोई संकोच न करते।"(४२)इस डर का परिणाम यह हुआ कि वह शादी की तरफ बिल्कुल विमुख हो गई थी।

ममता जी की 'खिड़की' नामक कहानी में भी स्वयंवर को पुनर्जीवित किया है एवं दहेज प्रथा जैसी सामाजिक कुरीति के भय को भी दिखाया गया है। यह हमें शिवचरण बाबू के इस वाक्य से पता चलता है ।उनकी तीन लड़कियां है जो पढी लिखी है– "आज जब समाज में दहेज दिन दूनी,रात चौगुनी छटा दिखा रही थी, शिवचरण बाबू को स्वयंवर जैसी प्रथा के बारे में सोचना अच्छा लग रहा था। कभी-कभी वह कहते भी, तो अपनी बेटियों को फूलों के गहनों में विदा करूंगा ।इन्हें मैंने पढ़ा लिखा दिया अब जो उनकी कदर करे वह मेरे सामने याचना कर इन्हें ले जाए।"(४३) इस प्रकार ममता कालिया ने अपनी साहित्य में दहेज प्रथा के प्रति विरोधी मानसिक आक्रोश को प्रदर्शित करना चाहती है।

निष्कर्ष

लेखिका ममता कालिया ने अपने समय और समाज को पुनः परिभाषित करने जोखिम साहित्य में उठाया है। कभी वह परिवेश में नई स्त्री की अस्मिता और संघर्ष को शब्द देती है,तो कभी रूढ़ि ग्रस्त परंपराओं की खाई से स्त्री को बाहर निकलती है,तो अगले ही पल स्त्री को अपने दायित्व और अधिकारों के प्रति सचेत करते हुए समय सामाजिक सरकारों से जोड़ती दिखाई पड़ती है। लेखिका का मत है स्त्री को संकल्प और विकल्प की स्वाधीनता होनी चाहिए क्योंकि इसके बिना उसका जीवन, उसकी शिक्षा, नौकरी यानी उसका संपूर्ण जीवन एक कारावास होता है तथा परिवार में स्त्री को विचारगत स्वतंत्रता होनी चाहिए जिससे वह अपनी गोन भूमिका एवं परंपरागत रूढ़ छवियों अथवा परिवार व समाज में अपनी स्थिति पर संवाद स्थापित कर सके और संविधान द्वारा किए गए अधिकार, व्यावहारिक आधार पर उन्हें उपलब्ध हो। परिवार के सदस्य उसे सेंसर की निगाहों से ना देखें और उस पर संदेह कर उसका आचरण कुंठित ना करें। स्त्री अपने मन से जिए, सोचे,लिखे तथा जीवन साथी चुनने की

स्वतंत्रता हो। यही स्त्री स्वाधीनता है। लेखिका ने समाज में व्याप्त दहेज़ जैसी बुराई को भी साहित्य में व्यक्त किया है।

संदर्भ

१) डॉ.फैमिदा बिजापुरे: ममता कालिया का व्यक्तित्व एवं कृतित्व पृ ९७
२) डॉ. फैमिदा बिजापुरे: ममता कालिया का व्यक्तित्व एवं कृतित्व पृ ९८
३) डॉ.लहूरामराव: ममता कालिया के उपन्यासों में चित्रित
४) ममता कालिया: बेघर पृ९८
५) ममता कालिया: बेघर पृ ९८
६) ममता कालिया: बेघर पृ ९३
७) प्रभा खेतान: स्त्री उपेक्षित पृ ७९
८) ममता कालिया: नरक दर नरक पृ २२
९) ममता कालिया: तीन लघु उपन्यास (प्रेम कहानी) पृ १२१
१०) ममता कालिया: नरक दर नरक पृ ७
११) विजय पडोडे: जैनेंद्र के उपन्यास साहित्य में स्त्री पुरुष संबंध पृ १७१
१२) ममता कालिया: तीन लघु उपन्यास (प्रेम कहानी) पृ १६५
१३) ममता कालिया: एक पत्नी के नोट्स पृ ५
१४) ममता कालिया: एक पत्नी के नोट्स पृ ५१
१५) ममता कालिया: बेघर पृ ९२
१६) ममता कालिया: बेघर पृ ९२
१७) ममता कालिया: ममता कालिया की कहानियां खंड१ पृ १६९
१८) ममता कालिया: ममता कालिया की कहानियां खंड१ पृ ३३
१९) ममता कालिया: तीन लघु उपन्यास (प्रेम कहानी) पृ १६५
२०) ममता कालिया: छुटकारा (कहानी संग्रह) पृ ५४